'तन्त्रवाद्यों के घरानों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक कलाकार'

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी.फिल (संगीत) उपाधि
हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
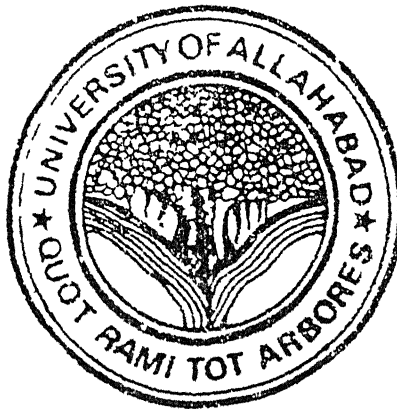
शोध निदेशक
डॉ० साहित्य कुमार नाहर
प्राध्यापक, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोध कर्त्री
कु० प्रमिति चौधरी

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

डॉ० साहित्य कुमार नाहर
Dr. Sahitya Kumar Nahar
B Sc , M A , L LB , D Phil, D Litt
Sangeet Praveen (Sitar & Vocal), Gold Medalist
'SUR-MANI' DHARM VISHARAD
'A' Grade A I R Doordarshan Artist

READER
DEPARTMENT OF
MUSIC AND PERFORMING ARTS
UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD- 211 002 (U P)

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु० प्रमिति चौधरी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से डी.फिल (संगीत) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कार्य "तन्त्रवाद्यों के घरानों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक कलाकार" मेरे निर्देशन में स्वयं सम्पन्न किया है। प्रस्तुत शोध सामग्री पूर्णत· मौलिक एवं शोधपरक है। साथ ही, इन्होंने विश्वविद्यालय के नियमानुसार निर्धारित उपस्थिति भी पूर्ण की है।

अत: मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षण हेतु अग्रेषित करने की संस्तुति करता हूँ।

सा. कु. नाहर
26.9.02

स्थान : इलाहाबाद

दिनांक : 26.9.2002

शोध निदेशक
(डॉ० साहित्य कुमार नाहर)
रीडर, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

RESIDENCE 522/13E/1, NEW BELI COLONY, STANLEY ROAD, ALLAHABAD - 211 002 (U P) INDIA
PHONE 0532- 644128

विषय अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

सगीत कला में गायन, वादन तथा नृत्य - तीनों का सामन्जस्य माना जाता है और भारतीय संगीत की शास्त्रोक्त परम्परानुसार वाद्यों को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। जिनमें तन्त्रीवाद्यों या तन्त्रवाद्यों का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। यूँ तो आदिकाल से सगीत में सुषिर, अवनद्ध और घन वाद्यों के प्रचुर प्रयोग का भी उल्लेख प्राप्त होता है तथापि तन्त्रीवाद्यों में संगीत के कला और भावपक्ष को अभिव्यक्त करने हेतु कुछ विशिष्ट गुण विद्यमान है तभी माँ सरस्वती के हाथों में वीणा की उपस्थिति दर्शायी जाती है।

भारतीय संगीत में तन्त्रीवाद्यो का प्रयोग वैदिक काल से किया जा रहा है और काल दर काल तन्त्रीवाद्य, अपने विविध रूप एव वादन सामग्री के माध्यम से प्रचलित रहे हैं जिनमें मुख्य रूप से वीणा का प्रयोग उल्लेखनीय है। वीणा के कई प्रकार का वर्णन हमें संगीत ग्रन्थों में प्राप्त होता है और ऐसा कहा जाता है कि प्रारम्भ में संगीत गायन के साथ अनुकरण करने के निमित्त वीणाओं का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक विभिन्न युगों में, शासन काल में वीणाओं के विविध प्रयोग का ऐसा ही विवरण प्राप्त होता है और निश्चय ही गायन के साथ निकटता से जुड़ाव के कारण परम्परा और घराने के परिप्रेक्ष्य में मध्य काल (मुगल काल) तक तन्त्रवाद्यों के अलग परम्परा का विकास नहीं हो पाया था।

मध्यकाल के संगीत के स्वर्णिम युग के बाद जब धीरे-धीरे संगीत में परम्पराओं ने घरानों का स्थान लेना प्रारम्भ किया, उसी काल से तन्त्रीवाद्यों में भी घरानों के पृथक अस्तित्व की भूमिका बननी शुरू हुई। तन्त्रवाद्यों में स्वतन्त्र घरानों का विकास सेनिया घराने से प्रारम्भ होती है अर्थात् अधिक से अधिक २००-३०० वर्षों तक पुराना ही माना जाता है। जिस प्रकार गायन शैली में घरानों की पृथकता से उनकी तालीम प्रदर्शन और अनेक विशिष्टताएँ स्थापित

होती है। जिस आधार पर एक-दूसरे से पृथक भी होती है, उन्हीं परिप्रेक्ष्य में तन्त्रीवाद्यों में भी घरानो का आधार बनना प्रारम्भ हो गया। यद्यपि गायन के घरानों की तरह तन्त्रीवाद्यों में घरानों की विविधता व्यापक रूप में हमें प्राप्त नहीं होती तथापि सेनिया घराने से लेकर आधुनिक समय तक, तन्त्रीवाद्यों के परिप्रेक्ष्य में एक ओर तो कुछ घरानों का आविर्भावन हुआ जैसे मैहर घराना, गौरीपुर घराना, इटावा घराना इत्यादि तो दूसरी ओर तन्त्रीवाद्यों में कई बात भी सामने आए जिसके आधार पर वादन शैली एव सामग्री की विविधता देखने को मिली। इन घरानों और बाजों के परिप्रेक्ष्य में सेनिया से लेकर आधुनिक समय तक तन्त्रीवाद्यों, विशेषकर सितार, सरोद की बनावट और वादन सामग्री तथा वादन शैली में काफी कुछ परिवर्तन काल दर काल देखने सुनने को मिला जिस सन्दर्भ में गहनता और सूक्ष्मता से अध्ययन करना प्रस्तुत शोधकार्य का मुख्य प्रयोजन है और इसके पीछे प्रेरणा का स्रोत है छात्रजीवन से सितार शिक्षण के विविध रूपो का अवलोकन, क्योंकि स्कूली शिक्षा से ही विभिन्न गुरूजनों से समय-समय पर सितार के प्रशिक्षण के दौरान तथा समय-समय पर विभिन्न कलाकारों के सितारवादन शैली को सुनने के उपरान्त, प्रशिक्षण और वादन शैली की विविधता के सन्दर्भो में यह जिज्ञासा रही कि इन विविधताओं के पीछे क्या कारण और आधार हो सकते हैं? साथ ही यह भी तथ्य महत्वपूर्ण माना जा सकता है कि तन्त्रीवाद्यों में घरानों और बाज के सन्दर्भ में वादन शैली और वादन सामग्री की विविधता के बावजूद भी आधुनिक विद्वान्जन और कलाकार परम्परा और आधुनिकता दोनों को किस रूप में देखते हैं, अनुसरण करते है और तन्त्रीवाद्यों, विशेषकर सितार, सरोद के सन्दर्भ में भविष्योन्नयन के लिए क्या सोचते हैं इन्हीं तथ्यों से गहनता की खोज हेतु प्रस्तुत शीर्षक से शोधकार्य करने की ओर उन्मुख हुई जिसके प्रेरणास्रोत समस्त गुरूजन और गुणीजन हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तन्त्रीवाद्यों के सन्दर्भ में केवल सितार पर ही परिचर्चा की गई है।

प्रस्तुत शोध कार्य को सम्पूर्ण करते हुए शोध प्रबन्ध की स्थिति तक आने में प्रथमतः माँ सरस्वती की असीम कृपा के प्रति मै नतमस्तक हूँ जिन्होंने सृष्टि की अमूल्य देन भारतीय संगीत के प्रति किचित ज्ञान कणों को प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया है।

मै अपने परमादरणीय गुरू एवं निर्देशक डॉ० एस०के० नाहर की चिरऋणी हूँ जिनसे मुझे हर प्रकार का अमूल्य मार्गदर्शन, प्रोत्साहन एव नैतिक बल प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप यह शोधकार्य सम्भव हो सका है।

मै अपने माता-पिता के प्रति हृदय से ऋणी हूँ जिनके सर्वांगीण सहयोग एव प्रेरणा के बिना यह कार्य असम्भव ही था।

मै अपने गुरूतुल्य प० रामाश्रय झा (भूतपूर्व अध्यक्ष सगीत एवं ललित कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) एवं डॉ० गीता बैनर्जी (भूतपूर्व विभागाध्यक्षा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय संगीत एवं ललित कला विभाग) एवं विभाग के समस्त गुरूजनों को विनत प्रणाम करती हूँ जिनका प्रस्तुत शोध कार्य में आशीर्वाद मुझे सदैव प्रेरणा देता रहा।

मै सगीत एवं सितार वादन के क्षेत्र में निम्नांकित विद्वानजनो के प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिन्होंने साक्षात्कार के माध्यम से अपने अमूल्य ज्ञान एवं विचारों से मुझे लाभान्वित किया है, कई तथ्य भी उपलब्ध कराए हैं जिनका शोध प्रबन्ध में उल्लेख है, आप विद्वानजन है :

- डॉ० एस०के० बैनर्जी, अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, संगीत विभाग, ए०पी०एस० विश्वविद्यालय.
- डॉ० राजभान सिंह, अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, संगीत विभाग, बी०एच०यू०, वाराणसी.
- डॉ० वीरेन्द्र कुमार, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, गुरूनानक देव विश्वविद्यालय.
- डॉ० रामजी हर्षे, संगीत विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर.

- श्री सुरेन्द्र मोहन मिश्रा, संगीत विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय.
- श्री बी०के० मिश्रा, कानपुर
- डॉ० पंकजमाला शर्मा, विभागाध्यक्ष, सगीत विभाग, पजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ.

साथ ही नगर के वरिष्ठतम सगीतज्ञ एव सितार वादक डॉ० बनवारी लाल जी, रजिस्ट्रार, प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद एवं देश के सुविख्यात सगीतज्ञ प० मणिलाल नाग जी के प्रति भी विशेष आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होने अपने व्यस्त क्षणों में से समय निकालकर शोध कार्य सम्बन्धी मेरी जिज्ञासाओ को अपने ज्ञान एवं अनुभवों से परिपूरित किया।

मै नगर के वरिष्ठ संगीतज्ञ एवं सगीत सदन के श्री हरीशचन्द्र श्रीवास्तव जी का एवं उन समस्त पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति हृदय से आभार ज्ञापित करती हूँ जिनका प्रस्तुत शोध कार्य में सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा।

मैं अपने अग्रज श्री पारिजात चौधरी एवं अग्रजतुल्य श्री दिगम्बर गोखले जी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर कम्प्यूटर द्वारा इस शोध कार्य का स्वच्छ और सुन्दर टकण किया।

अन्ततः मैं अपने सभी परिवारजनों, सहयोगियों तथा शुभचिन्तकों को, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरी सहायता की है, उन सभी को हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

प्रमिति चौधरी

दिनांक : 3-10-02

प्रमिति चौधरी

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

भारतीय सगीत - एक परिचय

सगीत को हमारे देश मे प्रारम्भ से ही भारतीय सस्कृति की गौरवशाली परम्परा के रूप मे माना जाता रहा है। सृष्टि के उद्भव काल से यह सम्पूर्ण विश्व की प्राय. प्रत्येक सजीव गतिविधि में सन्निहित है। साथ ही धर्म से भी इसका सम्बन्ध अक्षुण्ण माना जाता रहा है। अतएव, यह कहा जाता है कि सगीत हमारे आध्यात्मिक, सामाजिक एव भावात्मक जीवन का अभिन्न अग है। अखिल सृष्टि के साथ इसकी सम्बद्धता को देखते हुए इसे ईश्वरीय वाणी भी कहा जाता है, और इसे ब्रह्म स्वरूप माना गया है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में उल्लेख प्राप्त होता है कि सगीत का प्राणतत्व ॐ - ओ३म् (प्रणव) यह ब्रह्म स्वरूप है और इसी ओ३म् से साम गायक गायन प्रारम्भ करते है। ओ३म् का प्रथम उच्चारण करके ही वेद पाठ या गान का प्रारम्भ किया जाता है। 'ॐ' एक अक्षर होते हुए भी साक्षात् ब्रह्म है और यही शब्द और स्वर (साहित्य और संगीत) का आदि समन्वित रूप है। अव्यक्त निराकार ब्रह्म का अनुभव सर्वप्रथम सांगीतिक ओ३म् स्वर से ही हुआ है।[1]

संगीत को अनेक रूप में परिभाषित किया गया है, तथापि इन सबका आधार नाद है जिसे नाद ब्रह्म कहा गया है। संगीत कला का सम्पूर्ण ज्ञान नाद पर आधारित है - जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आन्तरिक शक्ति है। चूँकि संगीत की उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई है और मनीषियों के अनुसार सृष्टि के क्रम में सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का प्रस्फुटन हुआ। इस प्रकार, इस पंच-भौतिक जगत् में

---

[1] भारतीय संगीत शास्त्र - श्री तुलसीराम देवागन, पृष्ठ-4

आकाश सर्वप्रधान है और आकाश का प्राण नाद है – इसी कारण जगत् को नादात्मक भी कहते है। हमारे वेदो का प्रादुर्भाव भी इसी नाद से मान्य है जिसे वेद, उपनिषद एव संगीत में अनादि, अनन्त और अविनाशी कहा गया है। तात्पर्य यह है कि सगीत को एक अन्विति के रूप में व्यक्त करते है जिसमे गीत, वाद्य एव नृत्य तीनों का समावेश होता है।

सगीत देव भाषा है; देव वाणी है, इसलिए मानव मात्र की क्या कहें स्वय परमृपिता परमेश्वर भी इससे आबद्ध है एव गुणगान करते रहते है। सगीत के सम्बन्ध मे स्वय भगवान विष्णु ने कहा है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदय न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारदः ॥

सगीत मानव आत्मा को प्रकाशित करता है, मानव बुद्धिमत्ता को विस्तृत करता है और ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति मे सहयोग करता है। यह अखिल विश्व मे सर्वमान्य है तथा मानव के अन्तरमनोभावों को सचारित करने के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है। विद्वानों का विचार है कि मनोभाव चाहे सुखद हो या दुःखद, सगीत को सृष्टि के आदिकाल से ही मनोभावों को अभिव्यक्त करने के सरल नैसर्गिक माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। क्योंकि प्रारम्भ से ही मानव अपने शौर्योत्साह, हर्षोल्लास और शोकोत्ताप को इनके द्वारा मूर्तरूप प्रदान करता रहा है, मानव ही क्या जड कही जाने वाली प्रकृति और मूर्च्छितावमूर्च्छित चेतना वाले पशु–पक्षी तक अपने भावोद्रेग को प्रकट करने के लिए इनका सहारा लेते है। क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड का स्वरूप ही नादमय माना जाता है। पवन के प्रवाह, प्रपात के अवतरण, सरित् के अभिसरण, पक्षियों के गुंजन, पशुओं के उन्मदन और शिशुओं के रोदन में भी नाद के तीव्र, मध्य और मन्द्र रूप स्वरों के आरोह–अवरोह और लय में गति, यति स्पष्ट सुनी और समझी जा सकती है।

निष्कर्ष यह है कि भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक परम्परा में ही संगीत का समावेश है।

संगीत की उत्पत्ति :

सगीत के जन्म के सम्बन्ध में अधिकतर अभिमत धार्मिक किवदन्तियों पर आधारित है। वे ऐतिहासिक कसौटी पर पूरी तरह खरे नही उतरते। सगीत के जन्म के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त तो नही है और जो कुछ भी है वे पूर्ण प्रामाणिक नही है। तथापि जो विभिन्न ग्रन्थों में संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कथात्मक विवरण प्राप्त होते है – उनमें कुछ महत्वपूर्ण तथ्यो के हृदयगत भावों को प्रकाशित करने के लिए मनुष्य जिन अव्यक्त नादो का आश्रय लेता आया है, वे सार्वभौम और सनातन है। रोदन, चीत्कार, हॅसना, कराहना इत्यादि क्रियाएॅ जिन ध्वनियों को जन्म देती है उनका प्रयोग सदा से एक सा रहा है। विभिन्न भावों को प्रकाशित करने वाली ये ध्वनियॉ ही सगीत के स्वरो की जननी हैं। वास्तव में स्वर ही सगीत है, चाहे उसकी जो भी अवस्था हो।

जैकोबिल ने अपनी पुस्तक "The Stages of Music" में लिखा है :– "मानव को सगीत का प्रथम ज्ञान कैसे हुआ ये विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि जब उसको भूख और प्यास महसूस हुई होगी, तभी स्वर एवं भावों के माध्यम से उसने अपने मनोभाव प्रकट किए होंगे" अतः हम कह सकते हैं कि मानव की सृष्टि के साथ ही सगीत का जन्म हो गया।

प्राचीन भारतीय प्रबुद्ध ऋषियों, मनीषियों एव द्रष्टाओं ने सृष्टि की उत्पत्ति ही नाद से मानी थी ब्रह्माण्ड की प्रत्येक चराचर वस्तु में नाद व्याप्त है।

आध्यात्मवादियों के अनुसार जिस प्रकार ब्रह्म से परे सृष्टि की कल्पना, उसी प्रकार वैज्ञानिकों के अनुसार भी नाद रहित सृष्टि भी कल्पना से परे है, इसी प्रकार प्रकृति और चराचर जगत् के प्रत्येक तत्व एवं वस्तु के आन्तरिक अवयवों में संगीत की सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अक्षुण्ण और अखण्डधारा सदियों से वर्तमान तक प्रतिक्षण पल-पल समाहित और प्रवाहित है और अनन्त काल तक रहेगी, इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् ही अदृश्य रूप से संगीतमय है। सम्पूर्ण वायुमण्डल ही संगीत की स्वर-लहरियों से अदृष्टतः अव्यक्त रूप से तरंगित है।

सभ्यता के सभी चरणों मे सगीत की यह स्वरलहरी किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही है जिससे इसकी प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है।

वैसे सगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियो में एक है जिसे सुप्रसिद्ध इतिहासकार बण्टोडल ने अपनी पुस्तक "The Universal Music" मे लिखा है "एक बार ईसा मसीह घूम-घाम कर आ रहे थे, वह रास्ते में थक गए। उन्हें एक पेड की शीतल छाया दीख पडी। उस वृक्ष का सुन्दर वातावरण देखकर ईसा मसीह बहुत प्रसन्न हुए और वह उसी की शीतल छाया में विश्राम करने लगे। कुछ देर के बाद उनकी ऑख लग गयी, जब वह सो कर उठे तो उन्होंने एक ऐसा मधुर स्वर सुना जो कि इससे पूर्व उन्हें कभी सुनायी नही दिया था। वह चारों तरफ देखने लगे, किन्तु उन्हे स्वर का उद्‌गम नही दिखाई पडा। इसी बीच वह यह सोचने लगे कि क्या स्वर इतना मीठा इतना आकर्षक हो सकता है? क्या स्वर को इतने उतार-चढाव में मोडा जा सकता है? लेकिन वह किसी विशेष निष्कर्ष पर नही पहुॅच सके। इसी दरम्यान फिर उन्हे वही मधुर स्वर सुनायी पडा, वह मधुर स्वर इतना मन्त्रमुग्धक था कि ईसा मसीह के कदम भी अपने आप थिरकने लगे और वह झूम-झूमकर उस पीयुष भरे स्वर का आनन्द लेने लगे। थिरकते-थिरकते उनकी दृष्टि वृक्ष पर जा पडी, उन्होंने देखा कि हरे-हरे पल्लवों से एवं रंगीन पुष्पों के बीच एक खूबसूरत चिडिया स्वर आलाप रही है। ईसामसीह ने उस स्वर का पूर्ण अनुकरण कर लिया। जिस पेड़ के नीचे ईसामसीह बैठे - उसका नाम 'एलकोजा' है; और जिस चिडिया से उन्होंने मधुर स्वर सुना वह 'लिण्डा' है। इसलिए 'एलकोजा' को संगीत का कल्पवृक्ष मान लिया गया और 'लिण्डा' को संगीत की जन्मदात्री मान लिया और ईसामसीह की थिरकन को नृत्य का रूप दे दिया गया। इस प्रकार ईसामसीह ने ही सर्वप्रथम विश्व को संगीत का ज्ञान कराया। ईसामसीह से पूर्व विश्व संगीत ज्ञान से अनभिज्ञ था। बाद में ईसामसीह के स्वरों का विकास होता गया और वे देश-देशान्तरों में पहुॅचकर विभिन्न सॉचों में ढल गया - विभिन्न रूप में आबद्ध हो गए। वास्तव में ईसा मसीह के पूर्व कोई सृष्टि न थी और न ही कोई संगीत।

यदि वह विश्व को सगीत से भेंट न कराते तो आज विश्व में कही भी आपको सगीत न सुनायी पडता।"

गीत का उद्‌गम स्थल पृथ्वी नहीं स्वर्ग है। जापानी विद्वान शिकोवा हुची ने अपनी पुस्तक "सगीत का नव इतिहास" में लिखा है :-

"जब सृष्टि का निर्माण हुआ तो पृथ्वी पर पुरूष और नारी आये। वे अपने साथ सगीत को भी लेते आये। उन्होने पृथ्वी पर आकर किसी से सगीत सीखी नही – उनको यह सगीत का अलभ्य उपहार ईश्वरीय मिला हुआ था लेकिन पृथ्वी पर आकर उन्होंने अपने सगीत का विकास किया। संगीत का जन्म और विराम पृथ्वी पर नही बल्कि स्वर्ग में है। इसलिए सगीत को ईश्वर का रूप माना गया है। इसके द्वारा मानव ईश्वर तक पहुॅच सकता है। क्या आप कल्पना कर सकते है कि संगीत सृष्टि के जन्म काल में कैसा रहा होगा? वास्तव में उस वक्त के स्वरों को ही सगीत की संज्ञा दी गयी है। ईट से ईट मारने से जो स्वर निकलता है, डाल से डाल लडने से जो स्वर प्रस्फुटित होता है, लहरों के किनारे से टकराने पर जो स्वर गुजित होता है या इसान के बोलने से जो स्वर निकलता है – उन्ही सब ने सगीत का रूप निर्मित किया। आगे चलकर इन्ही स्वरों का विकास होता गया। इन स्वरों की साधना की गयी और साधना के द्वारा इंसान ने स्वरों के गर्भ से अनमोल रत्न निकाल लिए। लेकिन यह निश्चित् है कि पहले स्वरों को ही संगीत कहा जाता था और स्वर को इन्सान अपने साथ ही लाया है; स्वर उसे किसी से सीखना नही पड़ा। हॉ, स्वर के विभिन्न विकास स्तरों को सीखना पड़ा। यदि हम स्वर को ही संगीत मानें तो संगीत अनादि है। लेकिन स्वर को ही संगीत इसलिए मानना पडेगा क्योंकि स्वर ही संगीत का अन्तर एवं बाह्य आलोक है। लेकिन हॉ, मानव ने अपने स्वर को प्रथम भले ही संगीत की संज्ञा न दी हो, किन्तु बाद में ज्यों-ज्यों सभ्यता और संस्कृति का उदय होता गया त्यों-त्यों मानव स्वर की सूक्ष्मताओं को समझता गया। स्वर की शिल्पज्ञता से अवगत होता गया और तभी उसने स्वर को संगीत का रूप दिया होगा। किन्तु यह निश्चित् है कि सृष्टि के आरम्भ में मानव ने स्वर से ही अठखेलियाँ की

होंगी और उन सुन्दर अठखेलियों से ही उसने आनन्द लिया होगा। वे ही अठखेलियॉ आगे चलकर परिष्कृत होती गई होंगी और उन परिष्कृत अठखेलियो का नाम सगीत पडा।"

सगीत की उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण कारण ईश्वरीय उपासना भी माना गया। जब मानव पृथ्वी पर आया तो वह अपने कार्य में सलग्न हो गया। जीवन को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए उसके सामने अनेक महान कार्य थे। उन कार्यो का जन्म भी समय-समय पर आवश्यकतानुसार होता गया। चूॅकि मानव को ईश्वर ने पैदा किया था, इसलिए उसकी ईश्वर के प्रति असीम आदर एव श्रद्धा की भावना जागृत हो गई। हालांकि उसने ईश्वर को अपने इर्द-गिर्द देखा नही होगा किन्तु उसने अनुमान लगा लिया कि हमें अवश्य किसी न किसी शक्ति ने पृथ्वी पर पैदा किया है, और फिर इतनी सुन्दर पृथ्वी, आकाश, चॉद, सूर्य किसने बनाए है? अवश्य ही कोई अपूर्व एव दिव्य शक्ति है जो कि हम सबसे अद्वितीय है - महान है। बस उसी शक्ति को उन्होंने ईश्वर मान लिया होगा। उस सर्वशक्तिमान की उपासना करने के लिए उन्हें सगीत की आवश्यकता पड़ी क्योंकि बिना प्रार्थनाओं के आराधना कैसे हो सकती है? इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम संगीत को सीखा। ईश्वर उपासना जीवन निर्माण की मुख्य वस्तु थी बिना उपासना के जीवन में सुख-शान्ति का प्रादुर्भाव नही हो पाता है। संगीत का धार्मिक रूप इसीलिए हुआ। वास्तव में संगीत का जन्म धर्म की पावनता की विशाल पृष्ठभूमि पर हुआ। भारतीय संगीत के जन्म की यही मुख्य विशेषता है। भारतीय संगीत के गर्भ में विलासिता के लिए कोई स्थान नहीं। भारतीय संगीत को पूर्ण रूप से ईश्वरीय रूप प्रदान किया गया। सगीत ईश्वर-प्राप्ति एवं मोक्ष का प्रमुख सम्बल बन गया।

इसीलिए यह स्पष्ट है कि आज़ संगीत के सम्बन्ध में धार्मिक भावनाएँ एवं धार्मिक तथ्य अधिक पाये जाते हैं। मानव अपने ईश्वर को, अपने देवी-देवताओं को नाच-गा कर प्रसन्न करता था। जब उन्हें ईश्वर से कोई वरदान लेना होता

तो वे संगीत का ही सहारा लेते। बस, इस महत्वपूर्ण कारण ने सगीत को जन्म दिया।

अब, यदि हम धार्मिक दृष्टिकोण से देखें, तो हिन्दु धर्म के अनुसार संगीत एव नृत्य के जन्मदाता - भगवान शकर है। जिन्होने सर्वप्रथम पृथ्वी पर ताण्डव नृत्य किया था और इसी ताण्डव नृत्य से सम्पूर्ण नृत्य निकले। पृथ्वी पर सगीत प्रचारक नारदजी को ही माना जाता है। सगीत और सहित्य की अधिष्ठात्री देवी मॉ सरस्वती को माना गया। ब्रह्मा, विष्णु और महेश - तीनो ही सगीत के महान पण्डित थे। भगवान विष्णु ने सागर मथन के समय शख बजाकर संगीत का प्रथम नाद उत्पन्न किया था। कण्ठ-स्वर के विकास के साथ-साथ अन्य स्वरो की उत्पत्ति हुई, और तब सात-स्वरों का सप्तक बना।

जब हम संगीत के धार्मिक पहलू पर विचार करते है तो उसमें अनेक तथ्य ऐसे है जो इतिहास की कसौटी पर ठीक नही उतरते। इसीलिए इतिहासकार सगीत के धार्मिक रूप की सत्यता को मान्यता प्रदान नही करते।

विख्यात इतिहासकार जाइफो ऑस्टिन ने अपनी पुस्तक "The Background of Music" में लिखा है :- “इतिहास की किरणे अभी उस युग तक नही पहुँच पायी जिसमें कि सृष्टि का जन्म हुआ था, जिसमें कि मानव ने सर्वप्रथम पृथ्वी और आकाश के सुरम्य दर्शन किए थे। इतिहासकार उस युग को अन्धकार युग के नाम से सम्बोधित करते हैं क्योंकि उस युग के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव है। उस अन्धकार पूर्ण युग में सगीत और भाषा का अस्तित्व रहा होगा या नहीं - जब हम इस बात पर विचार करते है, तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा मनुष्य को सभ्य एवं सुसस्कृत बनाती है, भाषा अन्धकार के आवरण को नष्ट करती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में भाषा का अस्तित्व नहीं रहा होगा। यदि भाषा का अस्तित्व ही रहा होता तो फिर उस युग के बारे में सबकुछ प्रकाशपूर्ण होता। लेकिन ऐसा नही है। किन्तु जब संगीत के बारे में विचार करते हैं कि उस युग में संगीत की स्थिति क्या थी तो

इस निर्णय पर पहुँचते है कि धूल मे लिपटे हुए हीरो के समान अवश्य ही संगीत उस युग मे रहा होगा। उस सगीत पर कलात्मक आभा देदीप्यमान न होगी बल्कि वह उस अग्नि के समान होगा जो कि घनी राख में दबी रहती है। जिसका अस्तित्व बाहर से देखने से नही मालूम पड़ता। इस दृष्टिकोण से हमें कहना पडता है कि सगीत का जन्म भाषा से पूर्व ही उस अन्धकार युग में हो चुका था। चाहे भले ही आज का मानव उस अन्धकार युग के सगीत को संगीत न मानें लेकिन इससे उस युग की सागीतिक लकीरें मिट नही सकती। बिना उन सागीतिक लकीरों के मूल्याकन किए हम सगीत का इतिहास पूर्ण रूप से नही समझ सकते। जो अन्धकार युग इतिहासकारों के सामने प्रस्तुत है, उस अन्धकार युग के पीछे एक युग ऐसा रहा होगा जिसके सम्बन्ध में हमें कुछ भी पता नही; लेकिन जब हम उस युग के सम्बन्ध मे भी कल्पना करते है तो हमारी दृष्टिपथ पर ठीक वैसा ही चित्र बनता है, जैसा कि अन्धकार युग का बना। बस फर्क इतना ही रहता है कि अन्धकार युग के चित्र में सगीत स्वर के रूप मे विद्यमान था, किन्तु अन्धकार युग के पीछे वाले युग के चित्र मे सगीत का कोई स्वर नही था। मानव एकदम मूक था, सबकुछ मूकावस्था में था, लेकिन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार संगीत मूकावस्था में भी विद्यमान रहता है। उस मूक सगीत को हर कोई नही समझ सकता।"

दरअसल, सगीत इतना व्यापक है कि जिसकी हम कल्पना भी नही कर सकते। उसकी यही व्यापकता उसे अन्य कलाओं से उत्कृष्ट बनाती है। आकाश और पृथ्वी के समान संगीत भी व्यापक है। प्राणीमात्र में अप्रत्यक्ष संगीत व्याप्त है। भाषा से पूर्व जो संगीत आविर्भूत हुआ, वह अवश्य प्रसुप्त अवस्था में ही रहा होगा। प्रसुप्त संगीत से हमारा मतलब उस संगीत से है जिसमें स्वरों का विकास शिल्पज्ञता की पृष्ठभूमि पर नही किया गया हो। संगीत में शिल्पज्ञता का आविर्भाव भाषा के जन्म के उपरान्त ही हुआ। यही प्रसुप्त संगीत विकसित होकर लोक-संगीत बना। क्रमशः इन लोक-संगीत में अनेक परिवर्तन-परिवर्द्धन हुए; वर्तमान लोकसंगीत एवं प्राचीन लोक-संगीत में काफी लम्बा व्यवधान है। पर

यह तो निश्चित् है कि वर्तमान लोक-सगीत प्रसुप्त सगीत के गर्भ से ही पैदा हुआ। कालान्तर में इसी प्रसुप्त सगीत के गर्भ से शास्त्रीय-संगीत का जन्म हुआ। लोकमानस को प्रवाहित प्रसुप्त सगीत ने ही किया। शास्त्रीय सगीत ने मानव के उच्चवर्गीय स्वर को प्रवाहित किया, लोकसगीत में भी संगीत के सम्पूर्ण तथ्यों की रक्षा की गई। अन्धकार युग का प्रतिनिधित्व यही संगीत ही करता है।

वैज्ञानिक आधार :-

वैज्ञानिक दृष्टि से संगीत की सृष्टि ध्वनि आन्दोलनों का परिणाम है। जब कभी दो वस्तुएँ आपस में टकराती है या रगड जाने पर अपने पास की वायु को आन्दोलित करती है तथा जलतरंग की भांति वह वायु वातावरण में ये कम्पन उत्पन्न करती हुई हमारे कर्णरन्ध्रों में प्रवेश कर प्रकृति प्रदत्त कर्णयन्त्र को स्पन्दित करती है, जिससे हमारी चेतना को ध्वनि का अनुभव होता है। यद्यपि विश्व नाद से भरपूर है किन्तु हम अपने कर्णयन्त्रों की सीमित शक्ति के कारण उन सभी नादों का श्रवण नही कर पाते।

प्रत्येक कला और शास्त्र का उत्पत्ति काल बहुत ही सामान्य और धुँधला होता है। भाषा शास्त्र के पण्डितों का मत है कि संगीत की उत्पत्ति भाषा से पहले हुई। डॉ० बर्ने का कथन है कि संगीत की प्राचीनता को देखते हुए ऐसा लगता है कि मानव और संगीत एक साथ पैदा हुए है। मनुष्य के लिए संगीत कला इतनी स्वाभाविक है कि जहॉ भी वर्णोच्चार होता है – संगीतमय हो जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि संगीत की उत्पत्ति के विषय में अनेक किवदन्तियॉ तथा तथ्य होते हुए भी संगीत की उत्पत्ति के समय को ज्ञात कर पाना लगभग असम्भव है। अतः हम अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर ही संगीत के उत्पत्ति के समय का पता लगा पाते हैं।

संगीत – पारिभाषिक अभिव्यक्ति :-

'सम्यक प्रकारेण यद्गीयते तत् सगीतम्'

सम्यक प्रकार से अर्थात् स्वर, ताल, शुद्ध आचरण, हाव–भाव और शुद्ध मुद्रा सहित जो गाया जाए, वही संगीत कहलाता है।

वस्तुत. संगीत एक कला भी है और शास्त्र भी। कला के मुख्यत. दो रूप होते है . अभिजात (Classıcal) तथा तद्विपरित अर्थात् 'सुगम सगीत' Lıght Musıc

भारतीय परम्परानुसार सगीत का सम्बन्ध वेदो से मान्य है तथा वेदो का बीज–मन्त्र ओ३म् है। सगीत के सात स्वर षड्ज, ऋषभ आदि ओकार के ही अन्तर्विभाग है। शब्द तथा स्वर की उत्पत्ति ओ३म से हुई है। समस्त कलाएँ ओ३म् में ही निहित है। पहले स्वर की उत्पत्ति हुई फिर शब्द की – मुँह से उच्चारित शब्द ही सगीत में नाद के रूप में स्वीकृत है फलस्वरूप सगीत की सृष्टि नाद से हुई, यह एक ऐसी ललित कला है जो अपने आप में ही पूर्ण है। गायन, वादन तथा नृत्य – ये ही सगीत की तीन शाखाएँ है। शास्त्रकारो ने इन कलाओं को परस्परावलम्बी माना है।

'नृत्य वाद्यानुंग प्रोक्त वाद्य गीतानुवर्ती च' ।

आगे चलकर संगीत कला दो रूपों में प्रवाहमान हो गयी – मार्गी तथा देशी।

मार्ग संगीत में देशी नियमों के परिपालन के द्वारा कला के परिष्कृत एवं अभिजात रूप पर विशेष बल दिया जाता है तथा देशी संगीत में लोकरूचि ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। परन्तु जहाँ तक कला सौन्दर्य की बात है वह दोनों में ही विद्यमान रहता है।

प्रादुर्भाव :-

संगीत का इस जगत् मे आगमन कब हुआ यह अनिश्चित ही है। सम्भवत. मानव के जन्म के साथ ही सगीत का जन्म हो चुका था। फलस्वरूप जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया संगीत का भी विकास होता गया। और धीरे-धीरे सगीत ने मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक तथा विभिन्न क्रियाकलापो मे अपना स्थान बना लिया है। वस्तुतः सगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न आधार माने जा सकते है - धार्मिक, प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक आधार।

प्राकृतिक आधार :-

प्रकृति के विविध उपादानों से ही मानव को संगीत की प्रेरणा मिली है। प्रकृति में विभिन्न ध्वनियॉ उत्पन्न होती है जैसे बिजली के चमकने में, वर्षा की बूदो में, इनमें वृक्षों का हवाओं के साथ हिलने मे एक विशेष संगीतात्मक ध्वनि एव लय होती है। धीरे-धीरे मनुष्य इन ध्वनियों को सुनकर आनन्द की अनुभूति करने लगा। फलस्वरूप उसने इन ध्वनियों को और अधिक मधुर सगीतमय बनाने के लिए स्वरों का विचार किया, वस्तुत· इतना अवश्य निश्चित होता है कि सगीतात्मक ध्वनि का आधार प्राकृतिक ध्वनियॉ ही रही हैं।

यदि दृढता से विचार करें तो सगीत की उत्पत्ति का मूलाधार ईश्वर द्वारा रचित प्रकृति ही है क्योंकि नाद और गति ये दोनों ही तत्व हमें प्रकृति के विविध उपादानों से प्राप्त होते हैं। मानव ने इसी 'नाद' और 'गति' को अपनी बुद्धि के द्वारा संशोधित तथा परिमार्जित किया। वही 'नाद' और 'गति' के ही परिष्कृत रूप 'स्वर' और 'लय' के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इन्ही 'स्वर' और 'लय' को व्यवस्थित करने पर जो रूप सामने आता है वह 'संगीत' है।

प्राचीन भारतीय प्रबुद्ध ऋषियो, मनीषियों एव द्रष्टाओ ने सृष्टि की उत्पत्ति ही नाद से मानी है। पृथ्वी की प्रत्येक चराचर वस्तु में नाद व्याप्त है।

आध्यात्मवादियों के अनुसार जिस प्रकार ब्रह्म से परे सृष्टि की कल्पना असम्भव है, उसी प्रकार वैज्ञानिकों के अनुसार भी नाद रहित सृष्टि भी कल्पना से परे है। इस प्रकार प्रकृति और चराचर जगत् के प्रत्येक तत्व एव वस्तु के आन्तरिक अवयवों में सगीत की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अक्षुण्ण और अखण्ड धारा सदियों से वर्तमान तक प्रतिक्षण पल-पल समाहित और प्रवाहित है और अनन्त काल तक रहेगी। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् ही अदृश्य रूप में संगीतमय है। सम्पूर्ण वायुमण्डल ही संगीत की स्वर-लहरियो से अदृष्टतः अव्यक्त रूप से तरंगित है।

संगीत एवं कला :-

सगीत एक ललित कला है। कला में लालित्य-गुण होने के कारण कला को ललित-कला के सयुक्त नाम से सम्बोधित करते है। ललित कला हमारी कोमल अनुभूतियों का प्रतीक स्वरूप है, जिसे हमारे आचार्यो ने पॉच कलाओं में बॉटा है। इन कलाओं का प्रत्येक भाग अपने विशेष गुणों के द्वारा मानव हृदय की कल्पना धारा को बहाता हुआ ससार को आनन्दमय बनाता है। ललित-कला के अन्तर्गत काव्य कला, संगीत-कला, चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला - यह पाचॅ कलाएं मानव-कल्पना की पॉच प्रगतियों के नाम हैं।

कला शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शंखायन ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक प्रभृति वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। भरत्मुनि ने 'ललित-कला' अर्थ में जिस कला शब्द का प्रयोग किया है उस अर्थ के लिए प्राचीन ग्रन्थों में 'शिल्प' शब्द का प्रयुक्त है। कला के अर्थ में 'शिल्प' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण ग्रन्थों तथा संहिताओं में किया गया है। कलाओं का अनेकविध विभाजन सम्भव है। उपयोगी तथा ललित दोनों प्रकार की कलाओं के लिए पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी' तथा बौद्ध ग्रन्थों में 'शिल्प' शब्द प्रयुक्त है।

अष्टाध्यायी मे प्रयुक्त 'शिल्पी', 'कारूशिल्पी', एवं 'चारूशिल्पी' पद उपयोगी तथा ललित उभयविध कलाओं से सम्पन्न महानुभावों के सूचक है। कौषितकी ब्राह्मण में गीत और नृत्य शिल्प रूप में उल्लिखित है। कालिदास ने भी इस अर्थ मे 'शिल्प' शब्द का प्रयोग किया है।

मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्षाधिगम है। कलाएं मुख्यत· दो प्रकार की है, उपयोगी एव ललित। जीवन के सफलतापूर्वक यापन के लिए जो आवश्यक है वे उपयोगी कलाएं है तथा जीवन के सरसतापूर्वक एव आनन्दपूर्वक यापन के लिए जो उपादेय हैं, ये पॉच ललित कलाएॅ हैं – काव्यकला (साहित्यकला), संगीतकला, चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला।

किसी भी कला का पहले देशीरूप ही होता है क्योकि वह जनरूचि पर आधारित होता है तथा उसका प्रवाह सहज होता है। बाद में जब उसके नियम बन जाते है, तब वह कला मार्ग रूप धारण कर लेती है। हृदयगत भावो के उद्घाटन के सफल साधक के रूप में सगीत की कल्पना की गयी है।

ललित कलाओं में साहित्य एवं संगीतकला को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। कला हृदय की वस्तु है, वह हृदय से ही उत्पन्न होती है और वह हृदय को ही प्रसन्न करती है।

कला के उद्भव के सम्बन्ध में यह विचारणीय प्रश्न है कि मानव आदिम अवस्था में साधनों के अभाव में सौन्दर्य को कैसे अभिव्यक्त करता रहा होगा। सम्भव है, भाषा के अभाव में प्रथमतः तो वह तृप्त एवं हर्षोल्लासित नेत्रों तथा मुग्ध मनःस्थिति के द्वारा ही भावों का रसास्वादन करता रहा हो। इसके उपरान्त अनेकानेक स्थूल उपायों एवं माध्यमों के द्वारा भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया हो, जिसके फलस्वरूप अभिव्यंजना शक्ति का विकास हुआ हो। कालान्तर में धीरे-धीरे शारीरिक अंगो से प्रस्फुटित होने वाली लयात्मक गति ने नृत्य को पल्लवित, पुष्पित किये हों, इन कलाओं की प्राचीनता वेदों, प्राचीन ग्रन्थों

तथा उपनिषदो के विविध उल्लेखों से प्रमाणित होती है। इन्ही ग्रन्थो में ललित कलाओ का सुन्दर वर्णन मिलता है। यजुर्वेद में -

"नम. कुलालेभ्य: कर्मारभ्यश्च ।"

कहकर कुभकार और बढई की वन्दना की गयी है। वैदिक काल में ही विविध कलाओ के स्पष्ट उल्लेख है। 'वृहदारण्यक' के अनुसार समस्त कलाएँ देव-शिल्पियों की अनुकृति मात्र है। ऋग्वेद के अनुसार हमें कला के मूलस्रोत विविध पथों से प्रवाहित होते हुए मिलते है। ऋग्वेद में ही वर्णलिपि और चित्रलिपि के स्पष्ट प्रमाण मिलते है। जिस प्रकार यज्ञों के द्वारा वर्णलिपि का प्रादुर्भाव हुआ है, उसी प्रकार अन्य कलाओ के साथ स्वर सगीत का भी उद्‌भव हुआ है।

'कला' शब्द अपने आप मे इतना सारगर्भित है कि इसका विवेचन, इसकी व्याख्या, इतनी विराट् विरासत के बावजूद भी पूर्ण सम्भव नही है।

'कला' शब्द सस्कृत भाषा का शब्द है। वैसे भाषाविज्ञान वेत्ताओं ने इसकी व्युत्पत्ति में किंचित संदेह भी प्रकट किया है। आचार्यो ने इसकी व्युत्पत्ति 'कल', 'कड' और 'कम्' धातु से माना है, जिसका अर्थ होता है प्रसन्न करना, मत्त करना।

"शिवसूत्र विमर्शिनी" में क्षेमराज ने कला की परिभाषा करते हुए कहा है -

"कलयति स्वस्वरूपावेशेन तत्तदवस्तुपरिच्छनत्ति इति कला व्यापार"

अर्थात् जो नव-नव स्वरूपसंवित् वस्तुओं में या प्रमाता के 'स्व' को, आत्मा को परिमित करती है, इसी क्रम का नाम कला है।

"वस्तु को रूप देने वाली शक्ति का नाम कला है।"

"कम आनन्दं लाति इति कला" - अर्थात् आनन्द लाने का नाम ही कला है।

इसी प्रकार सस्कृत के ग्रन्थों में 'कला' शब्द का प्रयोग लगभग बीस अर्थों मे हुआ है। 'कला' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है[1] –

"यथा कला यथा शपन्मथ ऋण स न्यामसि ।।"

– ऋग्वेद, 8 47 16

जबकि आचार्य भरत् ने सबसे पहले कला एव शिल्प का साथ–साथ प्रामाणिक उल्लेख किया है –

"न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला।।"

ऐसा कोई ज्ञान नही, शिल्प नही, कोई विद्या नही, कोई कला नही। इस परिभाषा में कला से अलग ज्ञान, विद्या और शिल्प का आशय यद्यपि स्पष्ट नही है, अतएव आचार्य अभिनव गुप्त ने "कला गीत वाद्यायिका" लिखकर इसकी व्याख्या की है।

प० बलदेव उपाध्याय ने इसी सन्दर्भ में कला को गीत, वाद्य, नृत्य आदि का वाचक माना है।

वेद, उपनिषद्, पुराण. इतिहास, काव्य, विज्ञान, चित्र, संगीत, शिल्प, स्थापत्य आदि सभी कला के अंग है। धरती पर नही, पर्वत, वृक्ष, लताएँ आदि – जो भी दृश्यमान है, वह सब कलाभिभूत है, उन्हें कला द्वारा संजोया, संवारा जाता है। कला व्यापक है, विराट् है।

तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार यही परमानन्द की मीमांसा है –

रसौ वै सः।
"रसं ह्येवायं लब्धवानंवी भवति ।।"

– तैत्तिरीय उपनिषद्, 2 7

---

[1] भारतीय शास्त्रीय संगीत और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : शोध प्रबन्ध – डॉ० एस०के० नाहर

अर्थात् – वह रसरूप है, इसलिए रस को पाकर जहाँ कही रस मिलता है, उसे प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है। कला एक दैविक गुण है, मानवता के लिए वरदान है । कला ही मानव समाज में नैतिकता एवं सौन्दर्यदृष्टि की दात्री है। सुन्दर सस्कृति व सम्यता के मूल मे कला का ही हाथ है।

“कला मनुष्य की, सम्पूर्ण मानवता को दिया हुआ एक अर्घ्य है।”

– भरत् नाट्यशास्त्र, 1 113

"Art ıs an attrıbute to Man's own humanıty"

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार –

"Art ıs a spontaneous overflow of the ınnermost good feelıngs of Man's heart "

इन्ही ही शब्दों में –

"The art ıs all medıa of artıstic self-expressıon through the language of words, sound, lınes and colours "

कला सौन्दर्य की प्रतीक एवं आत्मा की सच्ची पुकार है। कला आत्माभिव्यक्ति है –

"Art ıs an expressıon "

कला अन्त·प्रेरणा है –

"Art ıs an ınner motıvatıon or an ıntuition "

जिस अभिव्यंजना में आन्तरिक भावों का प्रकाशन तथा कल्पना का योग रहता है, वह कला है। आधुनिक दृष्टि से कला को हम ऐसी क्रिया मान सकते हैं जिसकी कल्पना द्वारा सृजन होता है और जिसके द्वारा आन्तरिक अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से होती है।

कला मन को प्रसन्न करने की शक्ति है। किसी भी देश की कला उस देश के विकास एव सभ्यता का चित्रण करती है। कला ससार मे प्रेम और सौन्दर्य की सृष्टि करती है। कला मे एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जो हृदय तन्त्री को झकृत करती है।

कला, सृजन का एक सीमित किन्तु दैवी-प्रेरणा से युक्त प्रयास है, जिसमे कलाकार (ईश्वर की तरह) सर्वकर्ता न भी होकर विराट् और शाश्वत वस्तुओं के ही सीमित या लघुरूप रचता है, जो मुख्यत भौतिक है। कला द्वारा हम पूर्णानन्द प्राप्त कर सकते है और लौकिक तथा वैयक्तिक जड-बन्धनो से मुक्त होकर पूर्ण-मनु या पूर्ण-काम हो जाते है। कला मे चेतना और शक्ति एक अविभाज्य इकाई है।

कला मानव सस्कृति की उपज है। प्रकृति से सघर्ष करते हुए मानव ने श्रेष्ठ सस्कार के रूप में जो सौन्दर्यबोध प्राप्त किया है, कला में उसी का आविर्भाव है।

सभी कलाओं के दो पक्ष होते हैं। पहला भावपक्ष या विचार जगत् से सम्बद्ध है - जिसे ज्ञानात्मक कहा जा सकता है। दूसरा पक्ष कलाओं के भौतिक कलेवर एव तकनीक से सम्बन्धित है, जिसे क्रियात्मक कहा जा सकता है। इस आधार पर समस्त कलाओं को विद्या भी कहा जाता है और उपविद्या भी।

कला की प्रकृति सामाजिक है। कला एक प्रकार का सामाजिक स्वप्न है, जिसके द्रष्टा समाज के अनेक व्यक्ति हो सकते हैं। कला के द्वारा भावों का सम्प्रेषण किया जाता है। हमारा भारतवर्ष कला, धर्म और दर्शन में सदैव अग्रणी रहा है। हर युग में भारतीय कला ने, चाहे वह चित्र हो या संगीत - उच्च आयाम स्थापित किए हैं, और आगे भी करती रहेगी।

कला शब्द मानव की भावनाओं के लालित्य का प्रतीक है। आनन्द की अनुभूति ही कला का वास्तविक रूप है। मानव भावनाओं एवं विचारों का एक

पुज है। अपने को अभिव्यक्त करना प्रारम्भ से ही मानव-स्वभाव की विशेषता रही है, तभी तो किसी विद्वान ने लिखा है -

"अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है - अर्थात् मानव-मन मे अकित भावनाओं की अभिव्यक्ति की विविध विधियो का नाम ही कला है।"

यूनानी तत्व चिन्तन में भी कला को ज्ञानदेव 'अपोलो' और वाग्देवियों (Muses) तथा सोमदेव (Dioneseus) से सम्बन्धित किया गया है।

कला के निरूपण मे 'प्लेटो' तथा भरत्मुनि से लेकर आधुनिक युग में यूरोप में 'क्रोचे', 'बिटगेस्टाइन', 'अर्नेस्ट', 'कैसिरर' आदि तथा हिन्दी मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एव आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि तक ने अपना योगदान किया है -

'प्लेटो' के कला-दर्शन के अनुसार कला मे प्रत्ययों (Ideas) की अनुकृति की अनुकृति है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार -

"जो सत् है, सुन्दर है, वही कला है।"

पाश्चात्य विद्वान 'क्रोचे' ने अभिव्यक्ति को ही कला माना है।

हर्बर्ट स्पेन्सर के अनुसार -

"कला अतिरिक्त शक्ति अथवा फालतू उमगो के प्रसार और खेल प्रवृत्ति का परिणाम है।"

प्रारम्भ में कला निःसर्ग का अनुकरण, मात्र ही समझी जाती थी।

कला, कलाकार की भावनाओं का सुव्यवस्थित और विकसित रूप है। "Art is an emotion cultivating in good form "

कलाओं का मूल स्रोत है – कल्पना। कल्पना का आधार जितना सजीव होगा, कला उतनी ही सजीव होगी। भाषा और स्वर जीवन है, इसलिए कविता और सगीत अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। अगर इसे प्रभावशाली साधना मिले तो कला और भी अधिक सजीव एव प्रभावशाली बन जायेगी। कला में वैसे पहली समस्या प्रक्रिया और उपज की आवश्यकता है। एक पक्ष द्वारा कलाकृति की रचना पर जोर दिया जाता है और दूसरे प्रकार की सृजन–प्रक्रियाओं से उसका अन्तर स्पष्ट किया जाता है। दूसरे पक्ष द्वारा उपज पर ही बल दिया जाता है। अतः पहला (प्रक्रिया) "कलात्मक सृजन" और दूसरा (उपज) कला या कलाकृति के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

कला के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा व्यक्त विवेचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कला उन समस्त क्रियाओं को कहते है, जिनमें तनिक भी बुद्धिमत्ता की आवश्यकता हो। हमारे यहॉ कला में उपयोगी और ललित – दोनों प्रकार की कलाएॅ प्रयोग में आती रही है।

ललित–कला में काव्य, संगीत, चित्र, मूर्ति एव वास्तु – पॉच कलाएॅ आती है। भारतीय दृष्टि से इनमें तीनों कलाओं – संगीत, काव्य एव चित्र की आत्मा एक मानी जाती है; और इन कलाओं का लक्ष्य परमतत्व की प्राप्ति ही है, क्योंकि भारतीय कलाकारों, कवियों एव चिन्तकों की यह मान्यता रही है कि जिस कला की विश्रान्ति भोग में है, वह कला नही बन्धन है। किन्तु जिसका लक्ष्य और संकेत परमतत्व की ओर है – वही कला, कला है।

"शिवसूत्रविमर्शिनी" में क्षेमराज ने परमानन्द में लीन होने में सहायक कला को ही सर्वोत्तम माना है।

विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मत।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला ।।

– भारतीय कला के पदचिन्ह . डॉ० जगदीश गुप्त, पृष्ठ १२६

आचार्य भरत् से पूर्व 'ललित कला' शब्द प्रचलित नही था। इसे व्यक्त करने के लिए 'शिल्प' अथवा 'सिप', बौद्ध साहित्य एव संहिताओ में प्रयुक्त होता था। पाणिनी ने अष्टाध्यायी और बौद्ध साहित्य मे 'सिव्य' शब्द ललित और उपयोगी, दोनों प्रकार की कलाओं हेतु प्रयुक्त किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में समस्त कलाएँ 'शिल्प' के अन्तर्गत आती थी। इस सन्दर्भ में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है -

"जीवन से सम्बन्धित कोई उपयोगी व्यापार ऐसा न था, जिसकी शिल्प मे गणना न हो।"[1]

अष्टाध्यायी में चारूशिल्पी और कारूशिल्पी के उल्लेख मिलते है। नर्तन-गायन-वादन भी शिल्प के अन्तर्गत थे। कौषीतकि ब्राह्मण मे नृत्य और गीत को शिल्प माना गया है।

उपनिषदों में शिल्पी को आत्मा का सस्कार करने वाला माना गया है[2] -

"आत्मसंस्कृतिर्वै शिल्पाणि" - गो०उ० 6 271

भारतीय दार्शनिकों ने कला का अन्तिम लक्ष्य, भौतिक ससार से ऊपर उठकर ऐसी अवस्था को प्राप्त करना माना है, जिससे भौतिक द्वन्दो की सत्ता ही विनष्ट हो जाए। मानव जीवन का चरम् उद्देश्य आत्मलाभ है - "आत्मलाभान्नं परं विद्यते।।" मानवजीवन की सार्थकता इसी आत्मोपलब्धि में है।

भारतीय संगीत का जहॉ तक प्रश्न है, इसके आध्यात्मिक पक्ष से अलग विद्वान्जन इसे कला की संज्ञा देते है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार कला वह है, जो मोक्ष के लिए उपकारक है। क्योंकि संगीत कला हृदयगत भावों के उद्घाटन का एक सबल साधन है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन माना गया है। आचार्य शारंगदेव ने कहा है -

---

[1] पाणिनीकालीन भारतवर्ष : डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ-223

[2] भारतीय कला के पदचिह्न : डॉ० जगदीश गुप्त, पृष्ठ-79

तस्यगीतस्थमाहात्मय के प्रशसितुमीशते।

धर्मार्थकाममोक्षाणभिदमेवै क सानधनम्।।३०।।

– सगीत रत्नाकर, प्रथम स्वराध्याय

अर्थात् उसके (प्रभु) गीत में जो महात्म्य है, उसकी कौन प्रशसा कर सकता है क्योकि वह तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सबल साधन है।

संगीत एवं ललित कला

आनन्द की अनुभूति सृष्टि का परम् लक्ष्य है और इस अनुभूति की सम्पूर्णता के लिए ईश्वर ने जिन उपादानों को प्रदान किया है उनमे संगीत और साहित्य का अप्रतिम स्थान है जो कला के रूप मे भी माने जाते है। विद्वानों ने यह भी कहा है कि सुखानुभूति के दो अपरिहार्य अंग है संगीत और साहित्य। और इन्हें कला के अन्तर्गत रखा गया है क्योंकि कला मानव मन एवं विचारों से उत्पन्न होती है और बहुत अश तक संस्कृति और प्रकृति के श्रेष्ठ संस्कारों से उत्पन्न सौन्दर्य बोध से परिपूरित होती है। कला शब्द मानव की भावनाओ से लालित्य का प्रतीक है। इस हेतु संगीत को कला के रूप में मान्यता प्राप्त है।

संगीत ललित कला है और ललित कलाऍ हमारी कोमल अनुभूतियों के प्रतीक स्वरूप है। विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि जिस अभिव्यंजना में आन्तरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता है – वह कला है।

ललित कला में काव्य, सगीत, चित्र, मूर्ति एव वास्तु, यह पॉच कलाऍ आती हैं और भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत, काव्य तथा चित्र कलाओं की आत्मा एक मानी जाती है, क्योंकि इन कलाओं का लक्ष्य परम्तत्व की प्राप्ति है।

पंच ललित कलाओं में संगीतं का यूॅ तो दूसरा स्थान है किन्तु कला में प्रयुक्त साधनों की सूक्ष्मता के आधार पर संगीत कला को किंचित सर्वश्रेष्ठ मानने

की भी परम्परा है। क्योंकि सगीत का साधन तो नाद ब्रह्म है जो ईश्वर स्वरूप है। इसी सूक्ष्मता के कारण सगीत की उत्कृष्टता स्पष्ट हो जाती है।

कला, ललित कला तथा सगीत कला के सामाजिक तथा सांस्कृतिक, भावाभिव्यक्ति के सन्दर्भ मे भारतीय और पाश्चात्य विद्वानो के मतों का निष्कर्ष यही है कि कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति है जो सत्य, शिव और सुन्दर की रसात्मकता से आबद्ध है। और यह संगीत जैसी ललित कला में पूर्णतः स्पष्ट होती है। क्योंकि सगीत मानव मन की अन्तर्अनुभूतियों के प्रकटीकरण में सर्वथा सक्षम है।

ललित कलाओं में संगीत का स्थान :-

ललित कलाओं में साहित्य एव सगीतकला को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। प्रत्येक वस्तु जो हृदय से सम्बद्ध है, वह कला है। भारतीय संगीत के दो अग हैं – एक वाह्य जो नेत्रो तथा ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा अनुभव किया जाता है; और दूसरा है अन्तरंग। सगीत मानव-समाज की आत्मा का ऐसा भोजन है जिसके अभाव में मानवोचित गुण फूल-फल नही सकते, जिसे मानवता के विकास की उत्कट इच्छा है; उसे कोई भी महात्मा या योगी चित्त की स्थिरता के लिए संगीत का आश्रय लेने का ही आदेश देता है।

इस प्रकार मानव-जीवन के सर्वाधिक विकास के लिए साहित्य और संगीत कला विशेष उपादेय है। चित्र, मूर्ति एवं वास्तु – यह ललितकलाएँ भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु साहित्य एव संगीतकला का महत्व इनसे बढकर है क्योंकि साहित्य एवं संगीत में अपेक्षाकृत कम उपादानों की आवश्यकता होती है तथा इन दोनो का आनन्द कही भी चित्र, मूर्ति एवं वास्तुकला की तुलना में अधिक सुविधापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। लोकप्रियता की दृष्टि से भी साहित्य एवं संगीतकला को चित्र मूर्ति एवं वास्तु – इन ललितकलाओं से अधिक महत्व प्राप्त है। क्योंकि संगीत में अपेक्षाकृत कम उपादानों की आवश्यकता होती है तथा इन दोनों का

आनन्द कही भी चित्र, मूर्ति एव वास्तुकला की तुलना में अधिक सुविधापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। लोकप्रियता की दृष्टि से भी इसे अन्य ललित कलाओं से अधिक महत्व प्राप्त है।

डार्विन ने कहा है :-

"यदि मुझे यह जीवन दुबारा जीवित रहने को मिलता, तो मैं कम से कम सप्ताह में एक बार कुछ कविता पढने और सगीत सुनने का एक नियम बना लेता। यह इसलिए कि शायद मेरे मस्तिष्क के हिस्से जो अब स्फूर्तिशून्य है, काम में लाते रहने से स्फूर्तिमय रखे जा सकते थे। इन इच्छाओं का अभाव सुखी जीवन को हानि पहुँचाता है और यह बुद्धि को भी चोट पहुँचा सकता है और इससे भी अधिक हमारी भावुक प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट कर, हमारे आदर्श चरित्र को भी हानि पहुँचा सकता है।"

संगीत का इतिहास :

भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से वैदिक-युग ही प्राचीनतम युग है। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ भारतीय सगीत का विकास भी शनैः-शनैः वैदिक युग में ही होने लगा था। जहॉ तक अन्य देशों के सगीत की बात है विश्व के समस्त देशों में भारतीय सगीत ही सर्वाधिक प्राचीन है। आर्यो के आगमन के साथ ही वैदिक युग का आरम्भ माना जाता है। इस काल में सगीत का उत्कृष्ट स्थान था; इस युग में संगीत का प्रचार बाहर की अपेक्षा घरों में अधिक होता था। लगभग सभी घरों में सुबह-शाम संगीतमय ईश्वर-आराधना होती थी।

- कालिदास : साहित्य एवं सगीत कला - डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ
- भारतीय शास्त्रीय संगीत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन . शोध प्रबन्ध डॉ० साहित्य कुमार नाहर

भारत मे समय-समय पर विदेशियो का आवागमन होता रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी हमारी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हुए और उनकी सस्कृति का भारतवासियों पर प्रभाव पडा। ईरान का सगीत विदेशियो के द्वारा ही हमारे देश में आया। यहाँ तक कि भारत के ही विभिन्न प्रातो से भिन्न-भिन्न संगीत दिखायी देता है।

उत्तर भारत में उत्तरी सगीत, दक्षिणी भारत में दक्षिणी संगीत जिसे कर्नाटक संगीत भी कहा जाता है एव वैदिक कालों में ही चतुर्वेदों की रचना तथा उसके विविध अंगो का विस्तार हो चुका था।

वैदिक काल तक आर्य लोग खानाबदोश कबीलों की अवस्था छोडकर एक जगह बस गए थे तथा कृषि करने लगे। इस समय संगीत की मुख्य बागडोर ब्राह्मणों के हाथों में थी। स्त्रियों द्वारा वीणा-वादन इस युग की एक विशेषता थी। आर्यो ने सगीत मे पवित्रता लाने के लिए इसे धर्म के आवरण मे लपेट दिया था।

इस काल में बाण, मृदग, दुन्दुभि, बॉसुरी का भी उल्लेख मिलता है। तूर्य, पटह, गोमुख आदि वाद्ययन्त्र थे। इस युग में "समन" नामक नृत्य गीतात्मक उत्सव था। जो सूर्यास्त से लेकर प्रातःकाल तक चलता था। इस सार्वजनिक उत्सव से तत्कालीन समाज की विभिन्न रूचियों एवं परम्पराओं का पता चलता है।

ऋग्वेद काल में गायन-वादन तथा नृत्य तीनों का प्रचलन था। स्वर और वाद्य, दोनों एक दूसरे के साथ शोभा पाते थे। ऋग्वेद में निम्न वाद्यों के उल्लेख पाए जाते हैं - यथा, दुन्दुभि, बाण, नाडी, वेणु, कर्करि, गर्गर, गोधा, पिंग तथा आघाटी। दुन्दुभि तथा भूमि दुन्दुभि उस समय के प्रमुख अवनद्ध वाद्य थे।

तत् वाद्यों के अन्तर्गत कर्करि, गर्गर आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। शाट्यायन ब्राह्मण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि उस समय प्रातः में मंगलवाद्य के रूप में वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था। उस समय

प्रचलित पिगा, धनुष के आकार का तत् वाद्य है तथा रावणास्त्र अर्थात् आधुनिक वायलिन नामक वाद्य से मिलता–जुलता है। ऋग्वेद में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रागण मे तथा उन्मुक्त वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था, जिसमें नर–नारी दोनों ही भाग लेते थे।

यजुर्वेद मे सामगायक का सर्वप्रधान स्थान है यजुर्वेद मे विभिन्न सांगीतिक वाद्यों – वीणा, वाण, तूणव, दुन्दुभि, शख आदि का वर्णन मिलता है।

यजुः सहिता में वीणा के महत्व को भी बताया गया है। अश्वमेध आदि यज्ञों में मनोरजन के लिए गाया गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन किया जाता था। वीणा तन्तुवाद्य के लिए उसका विशाल स्वरूप "वाण" कहलाता था।

इसी के अन्तर्गत आघाटी, घाटलिक, काण्डवीणा, पिच्छौला, ताल्लुकवीणा, गोधावीणा, आलाबु, कपिशीर्षवीणा, कर्कटी इत्यादि विशिष्ट प्रकारो का विकास सूत्रकाल तक पाया जाता है।

गाथा, नाराशंसी आदि लौकिक गीतों का ज्ञान, विवाहादि प्रसंगों पर किया जाता था। गीत, वाद्य तथा नृत्य की सामूहिक ध्वनि का संकेत निम्न में हुआ है :–

यष्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या श्यैल वाः ।
युध्यन्ते यत्सयामा क्रन्द्रों यस्मा वदति दुन्दुभिः ।।[1]

सामगान गन्धर्व काल मे समृध्दि को पहुँच चुका था। विविध क्रियाकलापों में उसका स्थान था। पितरों की इष्टपूर्ति में सामगान का गायन होता था।

सामवेद का प्राचीन संगीत की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। गीता में श्री कृष्ण ने यह कहकर कि "वेदानां सामवेदोऽस्मि" सामवेद के महत्व को स्पष्ट किया है। सामवेद के द्वारा संगीत को नियम और विधान से आबद्ध कर दिया

---

[1] निबन्धसंगीत – लक्ष्मीनारायण गर्ग

गया। पहले सामगान में केवल तीन स्वर – उदात्त, अनुदात्त और स्वरित् प्रयुक्त होते थे। धीरे-धीरे इनका विकास होता गया और अन्य स्वरों की स्थापना होती गई और वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों का होने लगा। "साम" शब्द का मूलार्थ "गान" अर्थात् गेय वस्तु रहा है। इसके दो प्रधान भाग हैं :- (1) आर्चिक (2) गान या गाथिक।

सामवेद प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सगीत से पूर्ण है। सामगान में वीणा, भूमि-दुन्दुभि आदि वाद्यो का प्रयोग किया जाता था। सामवेद में संगीत का विकसित रूप देखने को मिलता है।

वैदिक काल मे चतुर्विध वाद्यों का विकास हुआ था। सामगान मे ताल की सगति के लिए प्रारम्भ में भूमि दुन्दुभि नामक चर्मवाद्य का प्रयोग होता था। यज्ञ मण्डप में भूमि खोदकर तथा उसके ऊपर बैल के चमडे को मढा करते थे तथा बैल की पूॅछ से ही प्रहार करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य चर्मवाद्यों मे दुन्दुभि, द्रव्य, केतुमत, विश्वगोत्रय के नाम आये हैं।

वैदिक युग के तन्तु वाद्यों के नाम हिरण्यकेशीसूत्र में प्राप्त होते है, जिसके आधार पर ताल्लुकवीणा, काण्डवीणा, पिच्छौरा, आलाबुवीणा, कपिशीर्षवीणा आदि इन सभी वाद्यों को अधारी कहा गया है।[1]

वाण नामक शततन्त्री वाद्य था जिसमें 100 तार, दूब या मूंज के लगाए जाते थे। इसके अतिरिक्त कर्करी, गर्गर, बकुर, आडम्बर आदि तन्तु वाद्यों के नामों का भी उल्लेख मिलता है।

वैदिक युग में वीणा वाद्य का विशेष महत्व था। इसके अनेक प्रकार प्रचलित थे जिनमें है महती पिनाकी, कात्यायनी, रावणी, मत, घोषवती, कच्छपी, कुन्जिका आदि। वीणा के अनेक प्रकार भी थे जैसे गज से बजने वाली वीणा, पीनाकी नेतर के दण्ड से बजने की वीणा।

[1] भारतीय संगीत वाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र . ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

इस प्रकार वैदिक काल में संगीत का सर्वतोन्मुखी विकास हो चुका था। इस युग मे कलाकारों और कलाओं का एक निश्चित् स्थान भी बन चुका था। उस समय कला न केवल सासारिक जीवन में मनोरजन तक ही सीमित थी, अपितु उसे धर्म, आध्यात्म, सस्कृति और परमार्थ प्राप्ति का साधन भी माना जाने लगा था। साथ ही कलाओं की जो धारा वेदों के स्रोत से बही थी, वह अबाध गति से आगे बढती रही और समाज के सभी वर्गो तथा आने वाले सभी युगों में लोकप्रिय बनी रही। इससे यह भी सिद्ध होता है कि आर्यो का जीवन नीरस न होकर आमोदप्रिय था।

प्राचीन काल :-

वैदिक काल में विकसित भारतीय सगीत का प्रचार-प्रसार इस काल मे भी रहा। ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल मे सगीत की विशेष उन्नति दिखायी देती है। इस काल में वीणा में अनेक परिवर्तन हुए। इस समय नृत्य के साथ भी वीणा-वादन होता था। इस काल मे मूंज या दूर्बा के स्थान पर धातु-निर्मित तन्त्रियों का प्रयोग होने लगा था।

प्राचीन काल में संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष का अधिक विकास हुआ तथा रास आदि नृत्य की नवीन शैलियों का भी विकास हुआ। पुराणों में विभिन्न वाद्यों के भी उल्लेख मिलते है। तन्त्री वर्ग के वाद्यों के अन्तर्गत वीणा; सुषिर वर्ग में वेणु, शंख; अवनद्ध वर्ग में मृदंग, दुर्दुर, पणव, परक, दुन्दुभि तथा घन वर्ग में घण्टा आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था।

पुराण काल के ग्रन्थों में रामायण तथा महाभारत का विशेष स्थान है। जिस प्रकार वैदिक काल में संगीत का पर्याप्त विकास हुआ था, उसी प्रकार रामायण जैसे महाकाव्य में भी विभिन्न स्थानों पर संगीत का प्रयोग देखने पर प्रतीत होता है कि इस समय भी संगीत विकास की ओर था। संगीत के लिए रामायण में गान्धर्व संज्ञा उपलब्ध होती है। वाल्मीकि रामायण में विपंची जैसे

प्राचीनतम् वीणा की चर्चा है परन्तु किन्नरी जैसी सारिका युक्त परिवर्ती वीणा की चर्चा नही है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय तक सारिकायुक्त वीणाओं का जन्म नही हुआ था। उस समय पुरूष और नारी, धनी और निर्धन – सभी के लिए सगीत अनुशीलन का विषय था।

वाल्मीकि रामायण तथा उसके परवर्ती ग्रन्थो में सामाजिक जीवन के साथ जिस सगीत का सम्बन्ध दिखाया गया है वह गान्धर्व संगीत ही है।

रामायण में संगीत के लिए गान्धर्व सज्ञा के साथ-साथ सगीत ज्ञाता के लिए "हत्वज" शब्द भी प्राप्त होता है। गान किस प्रकार हो, इस विषय पर रामायण में उल्लेख प्राप्त होता है :-

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाण स्त्रिभिरान्वितम् ।
जातिभिः सप्तभिर्बद्ध तत्रीलय समन्वितम् ।।
रसै. श्रृगार करूण हास्य रौद्र भयानकैः ।
वीरादिभिश्च सयुक्त काव्यभेतद् गायताम् ।।[1]

रामायण काल में सगीत पावनता को पहुँच गया था। प्रातःकाल सगीत के माध्यम से प्रत्येक गृह में ईश्वरोपासना होने लगी थी। प्रत्येक घर में संगीत का वातावरण था।

नृत्य में घुँघरू, वीणा, मृदंग, दुन्दुभि इत्यादि बजने का वर्णन है।

रावण द्वारा गज वाले वाद्य – रावणहत्था का आविष्कार हुआ। आधुनिक वायलिन इसी का रूप है। इस प्रकार रामायण-काल में संगीत के तीनों अंगो – गायन, वादन एवं नृत्य सभी का पर्याप्त विकास हुआ और प्रचलन रहा।

इस समय के सभी राजा-महाराजाओं को संगीत प्रिय था। महलों में सगीतमय वातावरण बना रहता था। उस समय का सर्वप्रमुख वाद्य दुन्दुभि था।

---

[1] वाल्मीकि रामायण

महाभारत का काल – रामायण के पश्चात् आता है। इस कारण इस काल तक संगीत अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया था। महाभारत काल में सगीत नर–नारियों में विख्यात था।

महाभारत काल में साम एव गान्धर्व दोनों का प्रचार था। गीत, नाटक, नृत्य आदि का प्रयोग समय–समय पर विभिन्न अवसरों पर किया जाता था। भगवान श्री कृष्ण वशी–वादन में तो प्रवीण थे ही, साथ–साथ गायन, वादन तथा नृत्य में भी पारंगत थे।

अर्जुन उस युग के सुप्रसिद्ध वीणा–वादक थे। विराट पर्व मे अर्जुन ने अज्ञातवास के समय "वृहन्नला" के रूप में राजा विराट् के अन्त.पुर मे सगीत–शिक्षण का कार्य किया :–

गीतं नृत्तं विचित्र च वादित्तं विविध तथा ।
शिक्षयिष्याभ्यह राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ।।[1]

इस काल में धर्म और संगीत का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। महापुरूषों के आगमन के समय भी सगीत का आयोजन होता था तथा उनके नगर छोडने मे भी सगीतपूर्ण विदाई का आयोजन होता था। देवराज इन्द्र की सभा में अर्जुन का गीत–वाद्य–नृत्य से स्वागत किया गया था जिसमें तुम्बरू आदि गन्धर्वो ने वीणादि वाद्यों के साथ गान किया था तथा अप्सराओं ने नृत्य किया। वीणा सर्वाधिक प्रचार में थी; इसके अतिरिक्त, इस काल में भेरी, मृदंग, मुरज, पख़, पटह आदि वाद्यों का विशेष प्रचलन था। शंख सर्वप्रमुख वाद्य था जो युद्धादि अवसर पर बजाया जाता था।

उस काल में जनसाधारण के लिए भी संगीत शिक्षा की व्यवस्था थी। इसी काल में "नाट्यशास्त्र" (भरत) आदि संगीतग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है। इसमें बहु–विचित्र वाद्य यन्त्रादि की निर्माण–प्रणाली का परिचय दिया गया है।

---

[1] भारतीय संगीत वाद्य – डॉ० लालमणि मिश्र : पृष्ठ–24

"वृहद्देशी" नाट्यशास्त्र के समान एक विशाल ग्रन्थ है। "मतंग" भरत् के अनुगामी शास्त्री थे, वे विचित्र वीणा वादक एव किन्नरी वीणा के आविष्कारक भी थे। उन्होने ही सर्वप्रथम वीणा में सारिका प्रयुक्त की थी। अतएव महाभारत काल मे सगीत का अत्यधिक प्रचार हुआ। महाभारत में तत्-वितत्, घन एवं सुषिर वाद्यो का उल्लेख भी मिलता है। यज्ञ के समय वीणा का वादन भी होता था।

महाभारत काल मे सामगान के साथ-साथ उसके वाद्यक्षेत्र में गान्धर्व-सगीत का प्रचलन था। इसमे गायन, वादन - दोनों का अन्तर्भाव था। संगीत के कलापक्ष के साथ-साथ शास्त्र पक्ष का भी विकास हुआ।

जैन काल में सगीत का उन्मुक्त विकास हुआ। जो संगीत पहले ब्राह्मण वर्ग तक सीमित था, इस समय जनसाधारण के हाथों में आ गया। राजा-महाराजा भी सगीतप्रिय होते थे। समय-समय पर संगीत प्रतियोगिताओ का आयोजन हुआ करता था। इस काल मे भॉति-भॉति के संगीत-वाद्य प्रचार में थे, जैसे विपची, महती, वल्लकी, शख, वेणु, मृदग, पणव, भेरी, दुन्दुभि इत्यादि। वीणा वाद्य का इस समय विशेष उल्लेख मिलता है।

बौद्ध काल में संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश अधिक हो गया। इस काल में संगीत तथा नृत्य-नाटक आदि को राजाश्रय प्राप्त था। इस युग में शास्त्रीय संगीत अपने पूर्ण यौवन पर था। गायन का आधार वीणा थी। भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों को गीतों का रूप देकर बौद्ध-भिक्षुओं ने जगह-जगह पर प्रचार कर वहॉ की जनता को जागृत किया।

बौद्ध काल में तत्, वितत्, घन तथा सुषिर - इन चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। तत् वाद्यों में थे वीणा परिवादिनी, विपंची, वल्लकी, महती, नकुली, कच्छपि तथा तुम्ब-वीणा। वीणा उस समय का सर्वप्रिय वाद्य था। महात्मा बुद्ध को भी इस वाद्य ने प्रभावित किया। इस काल में वीणाओं की

प्रतियोगिताएँ आयोजित होती थी; और इस काल में संगीत सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे गए है।

मौर्य काल में सगीत के क्षेत्र में विशेष उन्नति नही हुई। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य स्वय सगीत प्रेमी थे और सगीत को राजाश्रय भी प्रदान किया। कलाकारों को भी समय-समय पर पुरस्कृत किया किन्तु फिर भी संगीत की उन्नति बौद्ध काल के समान नही हुई। इस समय सगीत केवल मनोरजन का साधन मात्र था।

इस युग में किसी नवीन वाद्य का विकास नही हुआ था। वीणा, मृदग, मजीरा, ढोल, वशी, दुन्दुभि, ढफ आदि वाद्य प्रचार मे थे।

गुप्त काल भारतीय इतिहास में ललित कलाओं - संगीत, साहित्य आदि के विकास की दृष्टि से स्वर्ण-युग रहा है। इस युग के राजाओं में संगीत के प्रति विशेष प्रेम था, तथा उन्होंने भारतीय सगीत के विकास के लिए प्रयत्न भी किये। गायन, वादन तथा नृत्य - इन तीनो कलाओं के साथ सगीत उच्च स्तर पर पहुँच चुकी थी। संगीत के शास्त्रीय तथा लौकिक, दोनों पक्षो का विकास इस काल में हुआ। भारत तथा चीन के मध्य अनेक वाद्य-यन्त्रों का भी आदान-प्रदान हुआ। भरत् पुत्र दत्तिल ने दत्तिलम् की रचना इसी काल मे की। यह ग्रन्थ भी नाट्यशास्त्र के समान भारतीय संगीत की गौरवशाली रचना है।

गुप्त काल के समान हर्षवर्द्धन काल में भी संगीत का विकास क्रम चलता रहा। राजा हर्ष स्वयं संगीतप्रिय था, उसका सगीत सम्बन्धी ग्रन्थ उच्चकोटि का था। उसने स्वयं कई नाटक तथा कविताएँ लिखी थी। हर्ष काल में महान संगीतज्ञ मतंग द्वारा वृहद्देशी नामक ग्रन्थ की रचना की गयी। इसमें उन्होंने जाति गायन के स्थान पर "राग गायन" का उल्लेख किया है जो सगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी में वर्णित है। "राग" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इसी में किया गया है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भारत छोटे-छोटे राजपूत राज्यों में बँट गया। जो राजपूत-काल के नाम से जाना जाता है। इसी युग में घराने की नींव पडी। इसी समय नारद ने नारदीय शिक्षा की रचना की।

इस प्रकार प्राचीन काल संगीत के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा। अनेक नवीन वाद्यों का आविष्कार हुआ। सगीत राजा-महाराजाओं से लेकर सर्वसाधारण मे भी विद्यमान था, संगीत मनोरजन का मुख्य साधन था। तात्पर्य यह है कि संगीत के शास्त्रीय पक्ष तथा लौकिक पक्ष - दोनों पक्षों का विकास इस काल में हुआ।

मध्य-काल :-

प्राचीन काल के समान मध्यकाल मे भी संगीत की उन्नति व विकास का क्रम अवरूद्ध न होकर चलता रहा। मध्यकाल का प्रारम्भ लगभग 11वी शताब्दी से प्रारम्भ होकर 18वी शती तक रहा है। इसी काल में संगीत एवं संगीतज्ञों को रियासतों में संरक्षण एवं आश्रय प्रदान किया गया। 18वी शताब्दी के प्रारम्भ से भारतीय संगीत मुगल शासको के प्रभाव से मुक्त होकर नवीन रूप से विकसित होने लगा और इसी समय भारतीय संगीत दो शाखाओं मे विभक्त हो गया - उत्तर-भारतीय सगीत और दक्षिणी संगीत।

दक्षिण भारतीय सगीत मुस्लिम प्रभाव से मुक्त स्वच्छन्द रूप से अपनी प्राचीनता को सजोए हुए विकसित हुआ। इसके विपरीत उत्तर-भारतीय संगीत मुस्लिम सम्पर्क से प्रभावित हुए बिना न रह सका। प्राचीन काल में अति पवित्र ईश्वर की आराधना का मुख्य साधन समझा जाने वाला संगीत का आध्यात्मिक रूप नष्ट होने लगा तथा विलासितापूर्ण होने लगा।

पूर्व मध्यकाल में प्रबन्ध-गायन विशेष रूप से प्रचलित था। इसी कारण इसे प्रबन्ध-काल के नाम से जाना जाता रहा है। इसके अतिरिक्त इस काल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की भी रचना हुई।

सगीत जगत् के श्रेष्ठतम् संगीतज्ञों के द्वारा नवीन रचनाएँ सामने आयी। 13वी-14वी शताब्दी संगीत का विकास-काल माना जाता है। यह अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल माना जाता है। इस काल में संगीत का पुनः उत्कर्ष

हुआ। इनके दरबार मे अमीर खुसरो को उच्च स्थान प्राप्त था। इन्होंने अनेक राग, वाद्य और तालों की रचना की। यह ही वह प्रथम तुर्क थे जिन्होंने अपने देश के रागो को भारतीय सगीत में मिलाकर एक नवीनता पैदा की। दक्षिण मे इसी समय सबसे बडे विद्वान शारगदेव का आविर्भाव हुआ, जिन्होने "सगीत रत्नाकर" की रचना की। यह छह सौ वर्षो से सगीत का आधार-ग्रन्थ रहा है।

15वी शताब्दी में लोचन ने 'राग तरगिणी' लिखा। इन्होंने प्राचीन राग-रागिनी पद्धति को छोड़कर थाट-पद्धति अपनायी। कुल बारह थाट मानकर उनसे अनेक राग उत्पन्न किये। अपना शुद्ध थाट इन्होंने वर्तमान 'काफी' थाट के समान माना है।

15वी शताब्दी में जौनपुर के बादशाह - सुल्तान हुसैन शर्की, संगीत कला के अत्यन्त प्रेमी थे। इन्होने खयाल गायकी का आविष्कार किया एव अनेक नवीन रागों की रचना की जैसे जौनपुरी, तोडी, सिन्धु-भैरवी, बारह प्रकार के श्याम, सिन्दूरा, रसूली-तोडी इत्यादि।

मध्यकाल में ही अनेक सगीत ग्रन्थों की रचना की गयी जिसमें "मानसोल्लास", रामामात्य ने "स्वरमेल कलानिधि" तथा "संगीत-दर्पण" की रचना दामोदर पण्डित ने की। पुण्डरीक विट्ठल ने "सद्राग चन्द्रोदय", "राग मंजरी", "राग माला" एव "नर्तन निर्णय" तथा लोचन ने "रागतरंगिणी" व "राग सर्वसंग्रह" नामक ग्रन्थों की रचना की।

मुग़ल सम्राट अकबर के शासनकाल में भारतीय संगीत का बहुत विकास हुआ। अक़बर का काल संगीत की दृष्टि से स्वर्णयुग है, क्योंकि इसी युग में अनेक भक्त कवियों जैसे मीरा, सूर, तुलसी, कबीर, परमानन्द दास, कुंभनदास, चैतन्य महाप्रभु आदि के नाम आते है। इनकी वाणी ने संगीत को और अधिक निखारा तथा उसके आध्यात्मिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को अधिक दृढता प्रदान की। इस समय एक तो शास्त्रीय संगीत का स्वरूप मुस्लिम दरबारों में संवरा, तो दूसरी ओर भक्त कवियों ने अपने काव्य या पदों से भक्तिमय संगीत का आवरण

तैयार किया। इसी कारण भारतीय सगीत की दृष्टि से यह युग स्वर्णयुग कहलाता है।

इसी समय सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ तानसेन, हरिदास, बैजू बावरा आदि ने अनेक शैलियों का आविष्कार किया। इस काल मे अनेक संगीत वाद्यो का जन्म हुआ। इस प्रकार इस काल में सगीत का बहुमुखी विकास हुआ।

अकबर के उपरान्त जहागीर गद्दी पर बैठा। वह स्वय सगीत का प्रेमी था। अकबर के शासनकाल में उत्तर-भारतीय संगीत में ईरानी और अरबी संगीत के मिश्रण से जो अद्भुत् निखार प्रतिभासित होने लगा था वह अब पूर्णरूप से विकसित हो गया था। इस काल में भारतीय संगीत के मौलिक सिद्धान्तों की पूरी तरह से रक्षा की गयी। इनकी संगीतप्रियता के कारण ही जहागीर के दरबार मे छत्तर खॉ, परवेजदाद, खुर्रमदाद, मक्खू खॉ और हमजान जैसे अनेक दरबारी संगीतज्ञ थे।

सगीत के विकास की यह गति मुगल सम्राट औरंगज़ेब के शासनकाल मे अवरूद्ध हो गया। हालांकि औरगजेब संगीत का कट्टर विरोधी था परन्तु फिर भी सगीत का महत्वपूर्ण ग्रन्थ "सगीत पारिजात" इसी समय लिखा गया।

औरंगज़ेब के पश्चात् मुग़ल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले और बहादुरशाह ज़फर के शासन काल में भी संगीत की प्रगति पुनः प्रारम्भ हो गयी। मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में "सदारग", "अदारंग" और "महारंग" उत्तम संगीतज्ञ थे। इसी काल में टप्पे के साथ ठुमरी का भी प्रचलन बहुतायत से हो गया था। खयाल गायकी का विकास भी इसी काल में हुआ। इसके अतिरिक्त त्रिवट, तराना आदि का प्रचलन भी इसी काल में हुआ। भारत व फारस के संगीत का मिश्रण इस काल की सबसे प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार मध्यकाल में संगीत का बहुमुखी विकास एवं उन्नति हुई। संगीत के क्षेत्र में अनेक नवीन परिवर्तन आये। विभिन्न शैलियों का जन्म हुआ। ख़याल, टप्पा, तराना, ग़ज़ल, कव्वाली आदि गीत के प्रकार, प्रचार में आये; साथ ही, अनेक नवीन वाद्यों का भी विकास

हुआ जिनमे सितार एव तबला मुख्य है। इस काल में भी संगीत का प्रचार भक्ति की ओर बढा।

इस प्रकार मध्यकाल भारतीय सगीत के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस युग में सगीत के महान सगीतशास्त्रियों ने भी विभिन्न ग्रन्थों की रचना की थी।

इस काल मे सगीत के क्षेत्र में बहुत से परिवर्तन हुए। अनेक राग-रागिनियो का जन्म हुआ तथा विभिन्न ताल व वाद्यों का जन्म हुआ। विभिन्न गायकियों का प्रादुर्भाव इस काल मे हुआ। बाबर, हुमायूँ के शासनकाल में कव्वाली, गज़ल आदि गायन-शैलियों का प्रचार था। साथ ही साथ शास्त्रीय सगीत का भी विकास होता रहा। इनके शासनकाल के पश्चात् ग्वालियर के राजा मानसिह तोमर ने ध्रुपद शैली का विकास किया और सर्वप्रथम ग्वालियर घराने की नीव डाली। इस प्रकार मध्य-युग में लगभग सभी शासकों द्वारा सगीत की बहुत उन्नति की गयी।

आधुनिक काल :-

18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का समय आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है। इस काल में भारत पर अग्रेजों का आधिपत्य हो चुका था। फलस्वरूप भारतीय संगीत तथा सभ्यता पर अग्रेजी प्रभाव पडा, जिससे भारतीय संगीत को गहरी क्षति हुई। सगीत को व्यावसायिक रूप प्रदान कर जीविकोपार्जन का साधन बनाना पडा जिससे संगीत अशिक्षित वर्ग के हाथों तक पहुँच गया। उसका लक्ष्य मात्र क्षणिक सुख ही रह गया। परन्तु इसी समय कुछ अंग्रेजी विद्वानों द्वारा संगीत की खोई हुई ख्याति को पुनर्जागृत करने का प्रयास किया गया।

संगीत पर अनेक पुस्तकें लिखी गयीं, जिसका प्रभाव समाज के सभ्य वर्ग पर पड़ा। संगीत को आदर भाव से देखा जाने लगा। इसी समय कुछ महत्वपूर्ण

ग्रन्थो की रचना हुयी जिसमें "सगीत सार", "राग कल्पद्रुम", "Universal History of Music" आदि। इस समय संगीत को पुनः सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ।

खयाल गायकी का प्रचार काफी बढा था। तन्त्रीवाद्यों के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। वीणा के स्थान पर सितार का प्रचार आरम्भ हो चुका था और सगति के लिए तबले का प्रवेश हुआ। तन्त्रीवाद्यों मे लखनऊ के गुलाम रजा खॉ साहब ने रजाखानी तथा मसीत खॉ ने मसीतखानी गतों का आविष्कार किया तथा सितार पर इनके वादन का प्रचार किया।

इसी समय शास्त्रीय सगीत की रक्षा तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए दो महान सगीतकारों ने जन्म लिया। पं० विष्णु नारायण भातखण्डे तथा विष्णु दिगम्बर पलुस्कर - इन्होंने संगीत के प्रचारार्थ अपने देश के साथ-साथ विदेशो में भी भ्रमण किया और जगह-जगह सगीत प्रशिक्षण के लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना भी की। 1901 में प० विष्णु दिगम्बर जी ने लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की।

प्राचीन समय में संगीत का रूप अव्यवस्थित था। किसी भी राग को गायक भिन्न-भिन्न रूप से गाया करते थे। इसी को सरल रीति से गाने के लिए भातखण्डे जी ने अपने अनुभवों के आधार पर सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया जो आजकाल काफी लोकप्रिय है। आपने अनेक संगीत ग्रन्थों की भी रचना की। इन सब का प्रभाव यह हुआ कि आज संगीत घर-घर में व्याप्त है। सरल स्वरलिपि पद्धति के द्वारा संगीत का ज्ञान सर्व-सुलभ हो गया। इसी कारण से लोगों में संगीत सीखने तथा इसको जानने की इच्छा जागृत हो गयी।

आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत को पाठ्यक्रम के रूप में लागू किया गया और आज स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक संगीत की शिक्षा दी जा रही है। इसी कारण से भातखण्डे जी ने अनेक विद्यालयों की स्थापना की।[1]

---

[1] भारतीय सगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण : डॉ० स्वतन्त्र शर्मा

इसी के अन्तर्गत 1918 मे ग्वालियर में माधव सगीत महाविद्यालय की स्थापना की गई। 1926 मे लखनऊ मे मैरिस कॉलेज की स्थापना की।

प० विष्णु दिगम्बर जी ने भी संगीत के प्रचारार्थ बम्बई में 'गान्धर्व महाविद्यालय' की स्थापना की। इस प्रकार स्वतन्त्र भारतवर्ष मे भारतीय शास्त्रीय सगीत का प्रचार तीव्र गति से होने लगा। सरकार के द्वारा भी सगीत के विकास और प्रचार की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। सगीत कला को प्रोत्साहन देने हेतु कुशल सगीतज्ञों को राष्ट्रपति पदक प्रदान किए जाने लगे तथा आकाशवाणी केन्द्रों की स्थापना की गयीं। दूरदर्शन केन्द्रों की स्थापना के कारण विभिन्न संगीत समारोहों के आयोजन द्वारा गायकों, वादको को प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

आधुनिक काल में तानसेन वश के बहादुर सेन रबाब, सुरसिगार व वीणा के अद्वितीय साधक थे। इनके शिष्यों में वजीर खॉ, इनायत खॉ (सितार); अली हुसैन (वीणा); बुनियाद हुसैन (ध्रुपद, ख़याल); गुलाम नबी मजरू खॉ (सरोद); पन्नालाल वाजपेयी (सितार); मुहम्मद हुसैन (वीणा) आदि प्रथम श्रेणी के सगीत शिल्पी थे। इनके अतिरिक्त अन्य सगीत शिल्पियों में संगीताचार्य सोमेन्द्र मोहन गोस्वामी द्वारा रचित 'कण्ठ-कौमुदी' और 'सगीत-सार' प्रमुख है।

बंगाल के लक्ष्मी नारायण बाबाजी अत्यन्त गुणी गायक-कलाकार एव तबला, पखावज, वीणा, सितार आदि के दक्ष वादक थे।

कलकत्ता के राजा सौरीन्द्र मोहन ठाकुर का बंगाल तथा समग्र भारतवर्ष में संगीत प्रचार के क्षेत्र में अमूल्य सहयोग अतुलनीय है। विश्वविख्यात उस्ताद अलाउद्दीन खॉ किसी भी वाद्य-यन्त्र को निपुणता से बजा सकते थे।

उस्तार दबीर खॉ ध्रुपद के प्रसिद्ध गायक एवं अतुलनीय वीणा वादक थे। विश्वविख्यात सितार वादक पं० रविशंकर का विदेशों में भी संगीत प्रचार का प्रयास अतुलनीय है।

इन्दौर के सुप्रसिद्ध सितार-वादक अब्दुल हलीम जाफर खॉ ने विदेशों में सगीत का प्रसार किया। आपको 'पद्मश्री' उपाधि से भी सम्मानित किया गया है। बगाल के निखिल बैनर्जी ने भी सितार के क्षेत्र मे 'पद्मभूषण' की उपाधि अर्जित की है। विश्वविख्यात सरोद वादक उस्ताद अमजद अली खॉ ने अत्यन्त अल्पायु में ही ख्याति प्राप्त कर ली है।

इसके अतिरिक्त भी कई सगीतज्ञ आधुनिक काल मे भारतीय संगीत की सेवा में लगे है। एक समय जब सगीत तथाकथित निम्नवर्ग के हाथों में था, सगीत को लोग बुरी नजर से देखते थे। उच्चवर्ग के लोग सगीत से दूर ही रहते थे। लेकिन उस भ्रान्त धारणा को दूर कर सगीत को आम लोगो तक पहुॅचाने का श्रेय बगाल के राजा सौरीन्द्र मोहन ठाकुर को जाता है।

इस प्रकार आधुनिक काल में संगीत की स्थिति यह है कि आज गजल, भजन, लोक-सगीत तथा फिल्मी सगीत की तरह शास्त्रीय सगीत के प्रति भी आम जनता में रूचि जागृत हुई है। आधुनिक काल में जनरूचि को ध्यान में रखते हुए कलाकारों ने सगीत में कुछ परिवर्तन किया है। गायन के क्षेत्र में तानों पर तन्त्रीवाद्यों के क्षेत्र में झालों पर तथा सगत में सवाल-जवाब की सगत पर अधिक बल देने लगे है। आज सगीत का मुख्य लक्ष्य श्रोताओं को आनन्द प्रदान करना है।

1813 में पटना के मुहम्मद रजा ने सर्वप्रथम बिलावल को शुद्ध थाट मानकर 'नगमाते आसफ़ी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने पूर्व प्रचलित राग-रागिनी पद्धति की असंगतियों पर प्रकाश डाला और उनका नये ढंग से विभाजन किया। इसी काल में सगीत मे नीवन प्रयोग द्वारा एक विशेषता पैदा करने का श्रेय विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है। इन्होंने प्राचीन राग-रागिनियों के आकर्षक स्वर-समुदाय को लेकर तथा अन्य कलात्मक प्रयोगों के द्वारा 'रवीन्द्र-संगीत' के रूप में एक नयी चीज़ संगीत प्रेमियों को दी।

उत्तरी भारत में इस समय राग-वर्गीकरण की नयी पद्धति बनाने की योजना चल रही थी और दक्षिण में तंजौर दक्षिणी संगीत का विशाल केन्द्र बन गया था जहॉ अनेक प्रसिद्ध विद्वान - त्यागराज, श्यामाशास्त्री, सुब्बाराम दीक्षित आदि सगीत कला का प्रचार कर रहे थे। इन्हीं आधारों पर स्वतन्त्र भारत का सगीत विद्यमान है।

*** *** ***

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

वाद्यों का क्रमिक विकास

वैदिक काल से लेकर भरत् के पूर्व समय तक वाद्यो का कोई निश्चित वर्गीकरण प्राप्त नहीं होता है; किन्तु भरत् व अन्य आचार्यों ने जिन चार प्रकार के वाद्यो का वर्णन किया है, उनका उल्लेख अवश्य मिलता है। सर्वप्रथम भरत् ने ही चार प्रकार के वाद्यो का उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' मे वर्गीकरण के रूप मे प्रस्तुत किया –

तत चैवावनद्ध घनं सुषिरमेव च ।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्य लक्षणान्वितम् ।।

इस प्रकार तत्, अवनद्ध, घन एव सुषिर वाद्यो का वर्गीकरण बताया है। इन वाद्यों की विशेषता निम्न पक्तियो मे स्पष्ट है –

ततं तत्रीकृत ज्ञेयमवनद्ध पौष्करम्।
घन तालुस्य विज्ञेय. सुषिरो वश उच्यते।।

अर्थात् तत् को तन्त्रीवाद्य; अवनद्ध को पुष्कर वाद्य; घन को ताल वाद्य एवं सुषिर को वशी वाद्य बताया है। भरत् के पश्चात् के प्रायः सभी ग्रंथकारों ने वाद्यों का वर्गीकरण किया है। वाद्यों के सन्दर्भ में ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे प्रचीन वाद्य बॉसुरी को माना गया है इस वाद्य के सरल बनावट को देखकर भी इस बात की पुष्टि होती है कि यह वाद्य आदिम मनुष्य की खोज है। जब मनुष्य का जीवन प्रकृति पर ही निर्भर था प्रकृति के साहचर्य में रहकर उसने हवा के द्वारा वृक्षों पर विभिन्न प्रकार की ध्वनि को उत्पन्न होते हुए देखा। इस प्रकार की चीजों से प्रभावित होकर अपनी सांगीतिक चेतना तथा बुद्धि से उसने उसी आधार पर विभिन्न वाद्य बनाए तथा कालान्तर में वह विकसित होता गया।

जैसे बॉसुरी, जो आदिम मनुष्य की खोज है, जब उसे जगलों में बॉस के रन्ध्र में प्रवेश कर निकलती हुई वायु से उत्पन्न उस नाद को सुना था जो बॉसुरी को मुँह से फूँकने पर उत्पन्न होता है, इससे शिक्षा लेकर उसने बॉसुरी जैसे वाद्य का निर्माण कर लिया। इसी परम्परा के आधार पर सिघा, तुरही आदि वाद्य बनते गए; फिर इनसे ट्रम्पेट, पाइप आदि वाद्य इसी तकनीक के आधार पर बने।

प्राचीन, मध्यकालीन एव आधुनिक विद्वानों ने तार से बजने वाले वाद्यों को 'तत्' और 'वितत्' दो शब्द से सम्बोधित किया है। अतिया बेगम और श्री ओ० गोस्वामी ने ही तार से बजने वाले वाद्यो को 'तत्' और 'वितत्' दो भागों मे विभाजित किया है। इसके अनुसार तत् वे वाद्य है जिनमें तार या तात से ध्वनि उत्पन्न करने के लिए अगुली अथवा कोण (मिजराब या जवा) से बजाया जाता है। 'वितत्' वे तार वाद्य है जिन्हे गज (बो) से बजाया जाता है। मध्यकालीन ग्रन्थकारो ने चर्म वाले वाद्यो के लिए वितत् शब्द का प्रयोग किया है। वैसे वितत् शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम जैन साहित्य मे देखने को मिलता है।

भारतीय संगीत मे तन्त्रीवाद्य का स्थान :-

गायन में स्वर के साथ बोलों (काव्य) का महत्व होता है। भिन्न प्रकार के विधाओं में जैसे भजन में काव्य की प्रमुखता एवं संगति की गौणता स्पष्ट परिलक्षित होती है, वैसे ही सगीत में काव्य का योग उसे भावों की विस्तृत भूमि प्रदान करता है। संगीत की श्रेष्ठता की दृष्टि से कण्ठ-संगीत में इस प्रकार जो निर्भरता दिखाई पडती है, वह वाद्य सगीत में नही है, वाद्यो में अभिव्यक्ति का माध्यम केवल स्वर-लय है। इसमें किसी आनुषांगिक उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। कण्ठ शैलियों के अनुकरण में या राग ताल नियमों के परिपालन-अपरिपालन के कारण वाद्य संगीत में भी यद्यपि 'शास्त्रीय' एवं 'सरल-संगीत' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है किन्तु संगीत के तत्वों की दृष्टि से उसमें न कोई कमी आती है और न ही मिलावट होती है। इस प्रकार संगीत में तात्विक दृष्टि से वाद्य की महत्ता सर्वाधिक हो जाती है।

वाद्य सगीत को सर्वाधिक महत्ता प्रदान करने वाली दूसरी वस्तु है उनका प्रयोग विस्तार। सगीत की परिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए वाद्य सगीत किसी अन्य कला की अपेक्षा नहीं रखता जबकि दूसरी कलाएँ इनके सहयोग के बिना अपना पूरा काम कर ही नहीं पातीं। उदाहरण के लिए नृत्य को ही ले – नर्तक को अपनी कला के प्रदर्शनार्थ वाद्यों का सहयोग नितान्त आवश्यक होता है। यह सहयोग एक बडे वृन्द-वादन द्वारा या केवल नगमा और ठेका देने वाले वाद्यो का भी हो सकता है। इसी प्रकार कण्ठ-सगीतकार के लिए भी कम से कम तम्बूरा और तबला तो अवश्य चाहिए। इनमें अतिरिक्त नाट्य कला के लिए भी वाद्य संगीत का होना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि भरत् ने नाटक में वाद्य का विधान आवश्यक माना है। उनके अनुसार ऐसा कोई वाद्य नहीं जो नाटक के दसो भेदो में प्रयुक्त न हो सके, किन्तु नाटक के रस भाव को देखते हुए ही उनका उपयोग करना चाहिए –

> नास्ति किचिदनायोज्य मातोद्यं दशरूपके।
> रसभाव (वे) प्रयोगंतु ज्ञात्वा योज्य विधानतः।।

महर्षि के अनुसार प्रत्येक शुभकार्य में वाद्यों का होना आवश्यक है।

वाद्यों को सबसे महत्वपूर्ण बनाने वाला कार्य है शास्त्रीय संगीत की विवेचना में उनका सहयोग। स्वरोत्पत्ति, स्वर-स्थान का स्थिरीकरण, स्वरान्तरालों की नाप-जोख आदि कार्य बिना वाद्यों के पूरे हो ही नहीं सकते। प्रचीनकाल से अब तक, चाहे भारतीय परम्परावादी हो या आधुनिक वैज्ञानिक स्वरों के विश्लेषण के लिए प्रत्येक को किसी न किसी वाद्य का सहारा लेना पड़ता है। भरत् ने श्रुतियों के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक समान बनी हुई दो वीणाओं का सहारा लिया है। वैज्ञानिक स्वरों की अपनी विवेचना के लिए Tuning Fork या Monocord जैसे वाद्यों का प्रयोग करते है। तात्पर्य यह है, कि संगीत सम्बन्धी किसी भी विश्लेषणात्मक कार्य के लिए वाद्य का होना आवश्यक होता है। षड्जग्राम, मध्यमग्राम, चतुर्दश मूर्च्छनाएँ, अष्टादश जातियों के स्वर रूप आदि देखने और समझने के लिए वाद्यों का प्रयोग ही सर्वोत्तम है।

उक्त सभी दृष्टियो से अर्थात् सगीत के मूल तत्व की दृष्टि से स्वतन्त्र कला की दृष्टि से दूसरी कलाओं को निखार प्रदान करने की दृष्टि से सामाजिक–धार्मिक रूप में प्रतीकात्मकता की दृष्टि से, स्वरो के विश्लेषणात्मक कार्यों की दृष्टि से, वाद्य कला जितनी अधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक है उतनी अन्य कोई कला नहीं है।

भारतीय संगीत एव वाद्य :-

भारतीय सगीत मे वाद्यों का अनन्य स्थान है। वैदिक काल से ही हमें अनेक प्रकार के वाद्यों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। वस्तुत· वाद्य, सगीत की भावात्मक अभिव्यक्ति का एक सुदृढ साधन मात्र है – जो नादोत्पत्ति के कारण सगीतात्मक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण अग माना जाता रहा है। वैदिक काल से ही वाद्यों के सम्बन्ध में हमें अनेक प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त होते हैं और वाद्यों के विविध स्वरूप का दर्शन भी मिलता है। शास्त्रों मे तो यह भी कहा गया है कि मानव कण्ठ भी ईश्वर निर्मित एक वाद्य है। और वाद्यों के अन्य प्रकार मनुष्य द्वारा निर्मित किये गए है; एक उल्लेख के अनुसार –

> एक ईश्वर निर्मितं नैसर्गिकं अन्यच्चतुर्विध।
> मनुष्य निर्मित चेतिपचप्रकारा महावाद्याना।।[1]

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार वाद्यों की बनावट और प्रकृति के आधार पर इस प्रकार का वर्गीकरण प्राप्त होता है –

> नखज, लोहज, वायुज, चर्मज और शरीरज।

वीणादि वाद्य 'नखज' वाद्यों की श्रेणी में आते हैं। वंशी आदि वाद्य 'वायुज' हैं; मृदंग आदि वाद्य 'चर्मज' हैं; ताल, मंजीरा आदि लोहज हैं तथा कण्ठ–ध्वनि 'शरीरज' है। इन पॉच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले

---

[1] नारदीयशिक्षा, सगीत चूडामणि, बड़ौदा सस्करण लालमणि मिश्र, पृष्ठ–69

वाद्यों को 'पचमहावाद्यानि' कहा गया है। इनमें से एक ईश्वर निर्मित है – जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव निर्मित है।

नारद ने तीन ही ध्वनियाँ मानी है – आनद्ध, तत् एव घन।

वाद्यों के वर्गीकरण के दो हजार वर्ष के इतिहास में केवल दो परिवर्तन विशेष रूप से परिलक्षित होते है। पहला है 'वितत्' शब्द का प्रयोग जो 'अवनद्ध' के स्थान पर हुआ है, दूसरा है 'तातानद्ध' नाम का नया वर्गीकरण, जलतरग एक ऐसा वाद्य है जो घन तथा तन्त्र वाद्य दोनो का मिला-जुला रूप है। इसी प्रकार काष्ठतरग, शीशतरग, घण्टातरंग आदि वाद्य हैं जो कि स्वरोत्पत्ति के लिए प्रयुक्त तो होते हैं परन्तु इनके ढॉचे की मूल वस्तु के हिसाब से यह घन वाद्य के अन्तर्गत रखे जा सकते है। अत· इनके लिए एक नये वर्गीकरण की आवश्यकता पडी।

ग्रन्थो में प्राप्त सर्वमान्य उल्लेख के अनुसार भारतीय सगीत मे वाद्यों को – तत्, अवनद्ध, सुषिर तथा घन – इन चार वर्गों मे विभाजित किया गया है। इन चारों प्रकार के वाद्यों के सम्बन्ध में कहा गया है –

तत वाद्यतु देवानां गन्धर्वाणा च शौषिरम्।
आनद्ध राक्षसानातु किन्नराणां घनं विदुः।
निजावतारे गोविन्दः सर्वर्भवानयत क्षितौ।

अर्थात् तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर गन्धर्वों से, आनद्ध राक्षसों से तथा घन किन्नरों से सम्बन्धित थे। जब श्रीकृष्ण ने अवतार लिया, तो वे इन चारों प्रकार के वाद्यों को पृथ्वी पर ले आये।[1]

कल्लिनाथ के मतानुसार दक्ष-यज्ञ-विध्वस से शिव को जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसको शात करने के लिए स्वाति और नारद आदि ऋषियों ने वाद्यों का

---

[1] शुभंकर-कृत 'सगीत दामोदर'

निर्माण किया -

वाद्य दक्षाध्वरध्वसोद्वेगत्यागाय शम्भुना।
चक्रे कौतुकतो नन्दि स्वाति तुम्बरू नारदै ।।[1]

एक अन्य मत के अनुसार शिव ने त्रिपुरासुर-विजय पर जो नृत्य किया, उसमें सगति देने के लिए ब्रह्मा ने एक अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया जिसका ढॉचा मिट्टी का था। अतः उसे 'मृदग' कहा गया। यह शब्द 'मृत' + 'अग' शब्द से बना है। मृत का अर्थ है मिट्टी अर्थात् जिसका अंग मिट्टी का हो उसे मृदग कहा गया। आज भी कई अवनद्ध वाद्य मिट्टी से बनाए जाते है।

शिवपुत्र गणेश ने सर्वप्रथम इस वाद्य को बजाया ऐसी मान्यता है।[2]

तत् वाद्यों मे एक प्राचीन वाद्य रावणास्त्र या रावणहस्त है। इस वाद्य के निर्माता रावण को माना जाता है। गज से बजने वाले वाद्यों में यह सबसे प्राचीन वाद्य माना गया है।

1 - भारतीय सगीत में पारम्परिक मान्यतानुसार वाद्यो का सम्बन्ध प्रथमतः हमारे देवी-देवताओ से माना गया है। प्राय· प्रत्येक देवी-देवता किसी न किसी वाद्य के साथ स्वामी स्वरूप निरूपित किए गए है। इसलिए इन वाद्यों की उत्पत्ति और उसकी परम्परा में देवी-देवताओं का जुडाव स्वाभाविक है।

2 - वाद्यों की उत्पत्ति से सम्बन्धित कथाएँ जो कि देवताओं से, अर्थात् धार्मिक किवदन्तियों से जुडी हों या उनका कोई शास्त्रीय अथवा ऐतिहासिक आधार हो इन सबके पीछे कोई न कोई कारण अवश्य निहित होता है; जिनकी चर्चा आगे की जा रही है।

---

[1] सगीत रत्नाकर' पर कल्लिनाथ की 'कलानिधि' टीका। अध्याय-6 श्लोक-18

[2] म्युज़िक ऑफ इण्डिया - पोपले

वाद्यों की उत्पत्ति :-

वाद्यों की उत्पत्ति कैसे हुई तथा कौन सा या किस वर्ग का वाद्य पहले बना, यद्यपि इस विषय मे प्रामाणिक तथ्यो के अभाव में कुछ भी निश्चित् रूप से नही कहा जा सकता, तथापि मानव समाज के विकास की मूल प्रवृत्तियो के सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए गये है।

अब यह प्रश्न उठता है कि कौन सा वाद्य पहले बना और किसने बनाया। इतिहासज्ञ इसके उत्तर मे कभी ताल वाद्यो को प्रथम बताते है, कभी बॉसुरी को या कभी शिकारी के धनुषरूपी आकार से प्रभावित तत् वाद्य को। किन्तु विद्वान जिज्ञासुओं को फिर भी ये उल्लेख सन्तुष्ट नहीं कर पाते, क्योंकि वास्तव में प्रारम्भ में किसी वाद्य का किसी ने जान-बूझकर निर्माण किया होगा, इसमे सन्देह है। प्राकृतिक गतिविधियों के दौरान ही ये आविष्कृत हुए होंगे।

यदि धार्मिक दृष्टि से देखें तो शिव से सम्बन्धित एक कथा 'मुरज' नामक वाद्य की उत्पत्ति बहुत रोचक ढंग से बतायी गई है। कैलाशपर्वत पर ध्यानावस्थित शिव के तप में मुरजासुर ने जाकर विघ्न उत्पन्न किया। दोनों मे युद्ध हुआ और मुरजासुर मारा गया। कुछ गिद्ध उसके धड़ को लेकर उड गए परन्तु भारी होने के कारण वह मृत शरीर उनके पंजों से छूटकर नीचे स्थित वृक्ष पर जा गिरा। कुछ समय के पश्चात् उसका मॉस आदि सूख गया और शरीर के दोनों सिरों पर चमड़ा सूख कर मढ गया। इस प्रकार वह सूखा हुआ शव वृक्ष पर पड़ा रहा। फिर एक दिन तीव्र वायु के कारण या वृक्ष की टहनियों के टकराने से वह शब्द उत्पन्न करने लगा। वन में भ्रमण करते हुए शिव ने इस शब्द को सुना और उसके स्रोत को जानने के लिए उत्सुक हुए क्योकि यह ध्वनि सुनने में बहुत अच्छी थी। जब वृक्ष के निकट पहुँचकर उन्होंने इस मृत शरीर को देखा तो उससे सम्बन्धित पूर्व वृत्तान्त उन्हें स्मरण हो गया। शिव ने उसे अपने बायें हाथ से छुआ तो इससे 'ता' शब्द उत्पन्न हुआ। अब उन्होंने दायें

हाथ का प्रयोग किया तो 'घी' वर्ण उत्पन्न हुआ। पुन. दॉयी और बॉयी ओर बजाने से 'थों' और 'द्रे' वर्णों की उत्पत्ति हुई।

एक बार भगवान शकर अपनी पत्नी पार्वती के साथ पर्णकुटि मे बैठे थे। उसी समय जल की कुछ बूॅदे कुटी के सूखे पत्तों पर गिरी, इससे जो ध्वनि उत्पन्न हुई वह ध्वनि पार्वती को भा गई। तब उन्होंने शिव से एक ऐसे उपकरण की माग की जिससे इस प्रकार की ध्वनि उत्पन्न की जा सके। शिव ने तब पार्वती को मुरजासुर का वृत्तान्त सुनाया और उसके दोनो मुखों से उत्पन्न होने वाले 'तक्कड', 'दरगड' आदि विविध वर्णों का विस्तृत वर्णन किया।

ऐसा कहा जा सकता है कि मानव प्रारम्भ से ही अन्य प्राणियो की अपेक्षा बहुत अधिक समझदार था। उसमें सोचने और समझने की बुद्धि थी जिसके बल पर वह धीरे-धीरे असभ्य से सभ्य बना। अपनी इसी विशेषता के कारण उसने सर्वप्रथम कुछ ऐसी ध्वनियॉ सुनी होगी जिन्हें अनजाने में वही उत्पन्न करता था। उदाहरण जैसे, पृथ्वी पर चलते समय पैर रखने की ध्वनि, अपने शरीर पर हथेली से चोट करने की ध्वनि आदि। लेकिन चलते समय जिस समान गति का प्रयोग होता है उसकी ओर भी उसका ध्यान बहुत काल बाद ही गया होगा।

वाद्य-रूप में प्राचीनतम वाद्यों में झुनझुना माना जा सकता है जो आज भी उन जन-जातियों में प्रचलित है जिन पर आज तक सभ्य-समाज का बहुत कम असर पडा है। सामान्यतः झुनझुना वह वाद्य है जिसमें कई ठोस टुकडों को एक साथ पिरो दिये जाते हैं तथा वादक उसे हिलाकर बजाता है। यह टुकडे नारियल, बीज, दॉत आदि के हो सकते है। इस प्रकार की वस्तुऍ नृत्य करते समय कमर, जॉघ तथा बॉहों में भी बाँध लेते थे। इस प्रकार यह वाद्य नर्तकों की सजावट के साथ एक मनमोहक ध्वनि भी उत्पन्न करता था। झुनझुने का प्रयोग करने वाली जनजातियॉ आज के भारत तथा एशिया के कई देशों में मौजूद है। कालान्तर में झुनझुने के और दो रूप प्रयोग में आये। एक है लौकी या कद्दू को सुखाकर उसके तुम्बे के अन्दर छोटे-छोटे कंकड़ भरने के बाद उसे

लकडी की मूठ से बन्द कर हिलाते हुए ध्वनि उत्पन्न करना। इस प्रकार को लौकी या कद्दू का झुनझुना कह सकते है। दूसरा भेद है जिसमें बॉस की खपच्चियों के अन्दर ककड भरकर उसे ऐसा बुन देते है जिससे उसके ककड बाहर नहीं निकल पाते, इसकी मूठ भी इस प्रकार बनी होती है तथा इसे भी हिलाकर बजाते है। इसे बॉस का झुनझुना कह सकते है। इस प्रकार के झुनझुने का आज भी भारत तथा पेरू आदि देशो में प्रयोग किया जाता है।

प्रथम वाद्य का रूप किसी प्रकार का भी रहा हो किन्तु तत्, अवनद्ध या सुषिर वाद्यों की अपेक्षा घन वर्ग के वाद्यो का प्रयोग ही सर्वप्रथम हुआ। इसमे कोई सन्देह नहीं ।

वाद्यों के चारों वर्गों मे घन वाद्यों का वर्ग ही ऐसा है जिसमे संगीतपयोगी नाद न होते हुए भी अनेक वाद्य सगीत-वाद्य के रूप मे अगीकृत है। भारतीय दृष्टि से सगीतपयोगी नाद के लिए अनुरणनात्मक होना आवश्यक होता है तथा इस प्रकार का कोई वाद्य जिसकी ध्वनि संगीतपयोगी न होते हुए भी सगीत वाद्य की श्रेणी में मान लिया जाए, यह सामान्य रूप से समझ के परे है। किन्तु सत्य यही है कि घन वर्ग के अनेक वाद्य ऐसे है जिनमें सगीतपयोगी नाद नाम-मात्र को नहीं होता। अन्य वर्ग के वाद्यों की अपेक्षा घन वाद्यों के निर्माण की सामग्री भी अपेक्षाकृत कम कृत्रिम होती है। दो सूखे डण्डे, हड्डियों के टुकडे, सूखी पत्तियॉ, लकडी के टुकडे, कौडियॉ आदि - यह सभी घन वर्ग के संगीत वाद्य का रूप ले लेती हैं।

मानव को पहले लय का ज्ञान हुआ, इस बात से भी सिद्ध होता है कि विश्व की अधिकांश जन-जातियों में आज भी संगीत वाद्यों के रूप में घन तथा अवनद्ध वर्ग के वाद्यों का अधिकाधिक प्रयोग देखा जाता है। किसी भी जानवर की खाल को साफ कर किसी प्रकार' की खोखली वस्तु के मुख पर उसे रखकर यदि कस दिया जाए तो वह अवनद्ध वर्ग का वाद्य बन जायेगा।

प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्यों मे उक्त क्रिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। विशेष रूप से कमाया हुआ किसी विशेष जानवर का चमडा विशिष्ट रूप से बने हुए ढाँचे के मुखो पर विशेष विधियों से मढना, कसना तथा लेप का प्रयोग करना आदि बातों का विकास वैदिक युग से प्रारम्भ हुआ। अवनद्ध वाद्यों के बाद सुषिर तथा तत् वाद्यो का प्रादुर्भाव हुआ। सुषिर वाद्यों मे हड्‌डी, बॉस, हरा पत्ता, समुद्री नली आदि की सीटीनुमा वाद्य का जिसका परिष्कृत रूप शंख है, का प्रथम प्रयोग हुआ। तत्‌वाद्यों में सहस्र वर्षो तक तन्त्रियो की संख्या घटा-बढा कर भिन्न-भिन्न रूपों मे भिन्न-भिन्न नामों से प्रयोग होता रहा। सामग्री युक्त घन वर्ग के वाद्यों का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ होगा। आदिम युग मे भाषा निर्माण के पूर्व मनुष्य की जो अवस्था थी, उसमे भी उसे लय का ज्ञान अवश्य रहा होगा - जो उसके अपने चलने, दौडने आदि के फलस्वरूप मालूम हुआ होगा। इसी लय ज्ञान के आधार पर प्रकृति प्रदत्त वस्तुओ को लेकर आदिम मानव ने घन-वाद्य बनाए तथा नृत्यादि के साथ उनका उपयोग किया। पाश्चात्य विद्वान श्री कुर्टसेक ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "History of the Musical Instruments" में घन वर्ग के वाद्यों की ही प्रथम उत्पत्ति मानी है।

अन्य वर्ग के वाद्यों की उत्पत्ति :-

घन वर्ग के उन वाद्यों की उत्पत्ति के बाद जिनमे संगीतपयोगी नाद की आवश्यकता नहीं होती, अवनद्ध वर्ग के वाद्यो का प्रचलन हुआ। घन तथा अवनद्ध वाद्य प्रकृति तथा प्रयोग की दृष्टि से लय प्रधान होते हैं।

तन्त्रीवाद्यों की उत्पत्ति :-

अब यदि तन्त्रीवाद्यों के उद्‌भव पर विचार करें तो हम पाते हैं कि इस श्रेणी के वाद्य भी अत्यन्त प्राचीन हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य कृषक बनने से पूर्व आखेटक था। उनका मुख्य शस्त्र धनुष था। बाण (जो कि उस समय नुकीली लकड़ी या नोकवाले पत्थर आदि को लकड़ी के आगे बॉधकर बनाये

जाते थे) छोडते समय धनुष की डोरी में (जो उस समय तॉत आदि की रही होगी) कम्पन होने से जो ध्वनि उत्पन्न हुई होगी उसको उसने अपने 'संगीत' मे सम्मिलित करना चाहा होगा। वह धनुष की डोरी को अगुली से छेड कर बजा सकता था। कुछ और भी बातो का ज्ञान उसे धीरे-धीरे हुआ होगा, जैसे एक डोरी के टूट जाने पर दूसरी डोरी बॉधने पर उसकी लम्बाई में अन्तर आया होगा तथा साथ ही स्वर में भी अन्तर दृष्टिगोचर हुआ होगा। कई बार ऐसा होने से वह यह जान गया कि डोरी की लम्बाई घटाने-बढाने से स्वर ऊॅचा-नीचा हो सकता था। उसने यह भी देखा कि धनुष के सिरे को यदि किसी खोखली वस्तु से सटाकर बजाया जाता था तो उससे उत्पन्न ध्वनि मे अधिक गूॅज होती थी।

यह ज्ञात होने से कि डोरी की लम्बाई में परिवर्तन करने से स्वर मे भी परिवर्तन आता है, एक ही धनुष मे छोटी-बडी कई डोरियॉ बॉधी जाने लगी। इस चेष्टा के परिणाम स्वरूप प्रसिद्ध वाद्य हार्प (Harp) का जन्म हुआ। रोम, ग्रीस, ईजिप्ट आदि मे इस प्रकार के वाद्यो का बहुत प्रचलन रहा। भारत मे भी वीणा का एक प्रकार इसी तरह से था। इसका चित्र हमे समुद्रगुप्त की वीणाधारी 'मुद्राओं' पर तथा अन्य स्थलों पर उपलब्ध होता है। धीरे-धीरे इसमें तारों की सख्या बढती गयी जिसमें स्वरमण्डल (कानून) और सन्तूर जैसे वाद्यों का जन्म हुआ, जिनको कि आधुनिक पाश्चात्य वाद्य पियानो-फोर्ट का पूर्वज माना जा सकता है।

इसी प्रकार यदि तन्त्री वाद्यो में देखा जाए तो हम पाते हैं कि सभ्यता के प्रथम चरण में मनुष्य जंगलों में रहता था तथा जीवित रहने के लिए वह शिकार करता था। इसी अवस्था में विकास के क्रम में उसने धनुष जैसे अस्त्र का निर्माण कर लिया था। धनुष की डोरी से उत्पन्न ध्वनि से वह प्रभावित होकर अस्त्र से ध्वनि को अलग कर उसी ध्वनि का अन्यत्र प्रयोग करने की बात सोची और उसे 'संगीत' में प्रयोग किया। फिर डोरी के टूटने और बॉधने के क्रम में उसने यह अनुभव किया कि डोरी की लम्बाई का असर उससे उत्पन्न ध्वनि पर पड़ता है। इसी क्रम में उसने एक ही धनुष में छोटी-बड़ी कई डोरियॉ लगायीं

जिसके अनुसार 'हार्प' जैसे वाद्य का जन्म हुआ। भारत में भी वीणा का एक प्रकार इसी तरह से था।[1]

धीरे-धीरे इन तारो की सख्या और बढी जिसमे स्वरमण्डल और सन्तूर जैसे वाद्य बने। इस प्रकार जैसे-जैसे मानव आध्यात्मिकता की ओर बढता गया, सगीत कला की भी उन्नति हुई; लेकिन सगीत जैसी अमूर्त कला में दक्षता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि वह भौतिक माध्यमों में पूर्णता प्राप्त करे। इसलिए, जब उसने दृश्य-कलाओं मे दक्षता प्राप्त कर लिया तब वह सगीत की ओर अधिक अग्रसर हुआ।

प्रारम्भ मे वाद्यों का जन्म नैसर्गिक ध्वनियो के अनुकरण तथा अन्य चेष्टाओं के परिणामस्वरूप हुआ था। जब ये वाद्य प्रयोग किये जाने लगे, तो इन्हीं वाद्यों के आधार पर नवीन वाद्यो का जन्म और विकास समय-समय पर होता रहा। इसके लिए दो बाते मुख्य रूप से उत्तरदायी थीं - पहला, कि काल और परिवर्तन के साथ अनेक वाद्यों के स्वरूप मे परिवर्तन हुए, जिनसे कि कुछ नये वाद्य प्रकाश में आये। दूसरी बात यह है कि जब किसी वाद्य विशेष को कुछ समय तक बजाया गया, तो उसके कुछ दोष दृष्टिगत हुए।

उन दोषों को दूर करने के लिए उनके स्वरूप मे आवश्यक संशोधन या परिवर्तन किये गये और इस प्रकार कुछ नए वाद्य बन गये। इन दोनों कारणो के अतिरिक्त एक कारण और भी है वह है मानव मस्तिष्क की सतत् गतिशीलता, जिसके कारण वह सदा ही कुछ न कुछ नवीनता खोजता रहता है तथा प्रयोग करता रहता है। इस प्रवृत्ति ने भी वाद्यों की उत्पत्ति और विकास में योग दिया है।

[1] निबन्ध सगीत स- श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग, सगीत कार्यालय, हाथरस - पृष्ठ-161

उदाहरण के लिए बाण नामक प्राचीन वीणा, जिसमें सौ तार थे तथा जिसे पलाश की शलाकाओं से आघात करके बजाया जाता था, बाद मे सन्तूर (कश्मीर का लोकप्रिय वाद्य) डलसीमर (Dulcimer) बन गयी। इसी ने पाश्चात्य देशों मे (Pia no forte) का रूप ग्रहण किया। कात्यायनी या शततन्त्री वीणा मे भी सौ तार थे, उसे भी सन्तूर का पूर्वज माना गया।

इक्कीस तारवाली मत्तकोकिला वीणा के आधार पर स्वरमण्डल की रचना हुई। इसी प्रकार अलाबु वीणा के आधार पर आजकल प्रचलित ड्रोन-इन्स्ट्रुमेंट (Drone Instrument) तम्बूरे या तानपुरे का निर्माण हुआ।

प्राचीन भारत में बहुत से तन्त्रीवाद्य प्रचलित थे जिनमे से बहुत कम आजकल प्रचार में है, किन्तु आजकल प्रचलित अधिकाश वाद्यो का विकास इन्ही प्राचीन वाद्यों के आधार पर हुआ है। सरोद, रबाब और सितार आदि वाद्य प्राचीन वीणाओ के सशोधित और परिवर्तित रूप ही है।

तत् वाद्य :-

डॉ० प्रकाश महाडिक के अनुसार तत् वाद्य को 'तन्त्री वाद्य' भी कहा जाता है। इस वर्ग के वाद्ययन्त्रों में तन्त्री से सागीतिक स्वर उत्पन्न होता है। वादक की क्रिया के आधार पर इसके चार उप-वर्ग है -

1- उगलियों से छेड़कर बजाये जाने वाले वाद्य - स्वरमण्डल, तम्बूरा इत्यादि।

2- कोण या त्रिकोण (मिजराब) की सहायता से बजाये जाने वाले वाद्य, यथा सितार, सरोद, रूद्रवीणा, विचित्रवीणा, तन्जोरी वीणा इत्यादि।

3- गज से रगड़कर बजाये जाने वाले वाद्य, यथा सारंगी, इसराज, दिलरूबा आदि।

4- डंडी से प्रहार कर बजाये जाने वाले वाद्य यथा सन्तूर, कानून आदि।

इनकी बनावट के आधार पर 6 उपवर्गों में बॉटा जा सका है :-

(i) लम्बी गर्दन वाले - सितार, इसराज, दिलरूबा, वीणा, तम्बूरा आदि।

(ii) छोटी गर्दन वाले, जैसे रावणहत्था, सारगी आदि।

(iii) एक या दो तुम्बा वाले वाद्य यथा तन्जौरी वीणा को छोडकर सभी वीणाऍ, तम्बूरा, सितार आदि।

(iv) तबली के स्थान पर चमडे से मढे हुए वाद्य, जैसे सारगी, दिलरूबा, इसराज, सरोद, रबाब आदि।

(v) ठोस, सीधी या घुमावदार लकडी से बने वाद्य यथा कुछ प्राचीन भारतीय वीणाऍ।

(vi) चपटे, पहलदार या चौकोने सन्दूक की भाति वाद्य - स्वरमण्डल, सन्तूर आदि।

वीणा के प्रकार :-

सगीत मकरन्द में वीणा के 19 भेद बताए गये हैं - कच्छपी, कुब्जिका, चित्रा, वृहती, परिवादिनी, जया, घोषवती, ज्येष्ठा, नकुली, महती, वैष्णवी, ब्राह्मी, रौद्री, कूर्मी, रावर्णी, सारस्वती, किन्नरी, सैरन्ध्री, घोषिका (एकतन्त्री)।

इनके अतिरिक्त अन्य वीणाओं के नामोल्लेख यत्र-तत्र है :-

एकतन्त्री, द्वितन्त्री, त्रितन्त्री, सप्ततन्त्री, औदुम्बरी, अनालम्बी, आलापिनी, आलाबु, काण्ड-कात्यायिनी, कलावती, दण्डी, विपन्ची, पिनाकी, निःशक, प्रभावती, मत्तकोकिला, वृहती, तुम्बरू।

एकतन्त्री वीणा समस्त वीणाओं की जन्मदात्री है। तन्त्री-वाद्यों में तत् वाद्यों के साथ वितत् वाद्यों का भी एक वर्ग उल्लिखित किया गया है।

वितत् के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि :-

वितत् शब्द की व्युत्पत्ति 'वि+तत्' अर्थात् तत् वर्ग के ही कुछ वाद्यों को विशेषत्व प्रदान कर ध्वनि निर्माण किये जाने वाला वाद्य वर्ग। गज (बो) विशेष ध्वनि उत्पन्न करने का माध्यम कुछ विद्वान मानते है। वितत् शब्द का अर्थ खींचा हुआ या झुकाया हुआ भी होता है जिसमे गज से बजने वाले सभी वाद्य आते हैं। किन्तु वितत् का अर्थ ढका हुआ भी होता है। अवनद्ध वाद्य चर्म से ढका हुआ होता है। इसलिए मध्यकालीन ग्रन्थकारो ने अवनद्ध या आनद्ध शब्द के स्थान पर 'वितत्' शब्द का प्रयोग किया होगा, ऐसा माना जा सकता है।

"आधुनिक समय मे तन्त्री वाद्यो की अधिक सख्या और विकसित वादन शैली को देखते हुए तत् वाद्यों के दो भाग अवश्य किए जाने चाहिये। प्रहार से बजने वाले वाद्य तथा गज से बजने वाले वाद्य - क्योकि दोनों की वादन तकनीक अलग-अलग होती है, इसलिए प्रहार से बजने वाले वाद्य को 'तत्' तथा घर्षण से बजने वाले वाद्य को 'गजतत्' कहना अधिक उपयुक्त होगा।"[1]

किसी भी तन्त्रीवाद्य में से ध्वनि उत्पन्न करने के लिए तार में कम्पन उत्पन्न करने के लिए ध्वनि उत्पन्न करने का माध्यम कुछ भी हो परन्तु ध्वनि को दो ही प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है - प्रथम किसी माध्यम द्वारा तार पर प्रहार कर, और द्वितीय किसी माध्यम द्वारा घर्षण कर।

---

[1] भारतीय सगीत के तन्त्रीवाद्य डॉ० प्रकाश महाडिक, प्रकाशक - मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ सख्या-14

तन्त्रीवाद्यों का वर्गीकरण
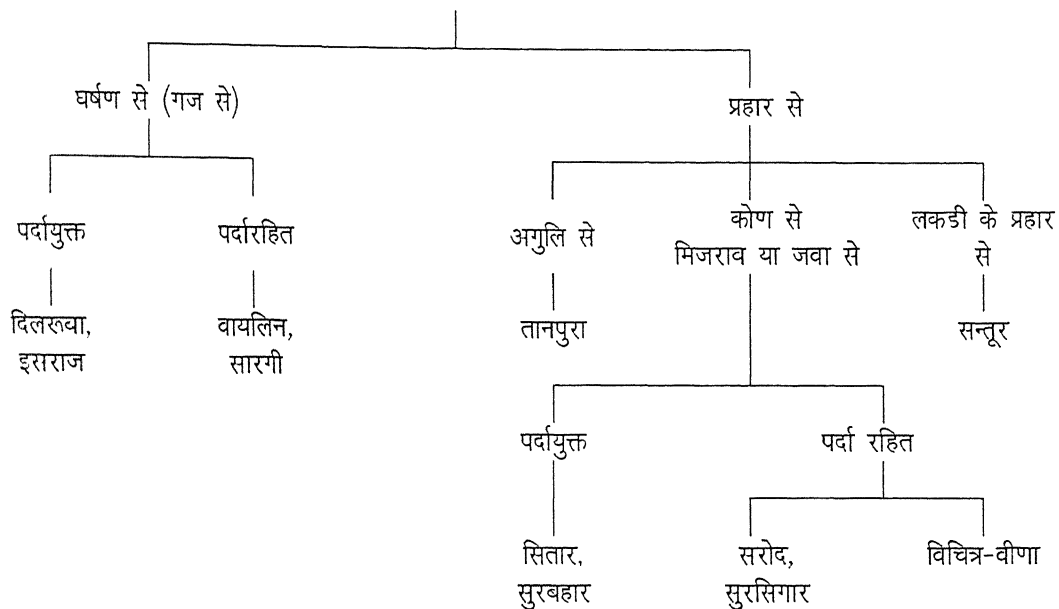
इस वर्गीकरण की यह विशेषता है कि एक वाद्य का दूसरे वर्ग मे पुनः आना सम्भव नहीं है।

साधारणतया, ध्वनि उत्पत्ति के माध्यम के रूप में मिज़राब, गज आदि दाऍ हाथ का और स्वर उत्पत्ति के लिए बॉए हाथ का प्रयोग करते है। किन्तु सन्तूर वाद्य में दोनों ही हाथों से स्वर की उत्पत्ति की जाती है।

विभिन्न वाद्यों की उत्पत्ति एव विकास क्रम के पश्चात् तत् वाद्य एव तन्त्रीवाद्य एवं उनके विकास क्रम पर हम दृष्टिपात करेंगे। आज हम जिस प्रकार के वाद्यों को देखते हैं उनका यह रूप सहस्रों वर्षों के क्रमिक विकास का परिणाम है। विकास का नया चरण कब से तथा किस व्यक्ति के द्वारा प्रारम्भ हुआ, इसका ठीक-ठीक पता अभी तक नहीं चल पाया है, किन्तु जहॉ से किसी नई दिशा का सूत्रपात हुआ है, उस काल 'की ओर संकेत अवश्य किया जा सकता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो तन्त्रीवाद्यों में प्राचीन काल से अब तक उनके रूपों में तन्त्री संख्या में, निर्माण सामग्री में सामान्य परिवर्तनों के अतिरिक्त चार

बडे सैद्धान्तिक परिवर्तन देखे जा सकते है जिन्हें सक्षेप में निम्नलिखित रूप मे देखा जा सकता है .-

1- प्रारम्भिक अवस्था - प्रत्येक स्वर के लिए एक तार की व्यवस्था।

2- प्रथम विकास : एक ही तार पर किसी कठोर वस्तु से कलाकार के द्वारा रगडकर भिन्न-भिन्न स्वर उत्पन्न करने की व्यवस्था।

द्वितीय विकास : वीणा के दण्ड पर स्वर-स्थानों की सारिका के रूप मे स्थापना।

तृतीय विकास : तन्त्रीवाद्यों के तारो की व्यवस्था में अन्तर, अर्थात् मुख्य वादन तन्त्री का वाम पार्श्व से दक्षिण पार्श्व मे आ जाना और चिकारी की तन्त्रियों का मुख्य घुडच पर रखा जाना।

प्रारम्भिक अवस्था :-

तत् वाद्यों के प्रारम्भिक रूप पर विचार करने पर यह पता चलता है कि चाहे वह धनुषाकार वीणा हो या वेदों में उल्लिखित वाण या बेबीलोनिया, मिस्र आदि में पाया जाने वाला 'हार्प' या 'लायर'। सभी में स्वरोत्पत्ति का एक ही सिद्धान्त दिखायी पड़ता है और वह है प्रत्येक स्वर के लिए एक तार की व्यवस्था। अति प्राचीन काल में कहीं भी एक तार पर एक से अधिक स्वरों को निकालने की किसी व्यवस्था का पता नहीं चलता। वीणाओं के भिन्न-भिन्न नाम उनकी वाद्याकृति तथा तारों की संख्या पर निर्भर थी। स्वरोत्पत्ति की प्रक्रिया सब में एक सी थी। तारों को उंगलियों से, नखों से या काष्ठ से छेडा या वादन किया जाता था। कुछ वाद्यों में तारों पर प्रहार करके मुख्य रूप से लय दर्शाने का कार्य किया जाता है। इस प्रकार के वाद्यों में तार का प्रयोग होते हुए भी उसका उद्‌देश्य मुख्य रूप से स्वरों का निर्माण नहीं माना जाता। इस प्रकार के वाद्यों में चमडे का प्रयोग भी देखने को मिलता है। डॉ० लाल मणि मिश्र ने इस सन्दर्भ में बताया है कि "इस वर्ग का नया नाम न रखकर तत् एवं अवनद्ध दोनों

नामों को जोडकर ही नया वर्ग बनाने की प्रथम कल्पना 'विमानवत्थु' में पाई जाती है, जिसमें ऐसे वाद्यों के लिए आतत्-वितत् नाम रखा गया है। उसके बाद 'सगीत पाठ' नामक ग्रन्थ मे इस प्रकार का वर्गीकरण मिलता है। इसमें तत्, आनद्ध, तातानद्ध, घन तथा सुषिर, इस प्रकार वाद्यों के पॉच वर्ग माने गए है। यहॉ भी तातानद्ध पूर्व वर्णित आतत्-वितत् की आवश्यकता की पूर्ति करता है। इससे स्पष्ट है कि 'वितत्' शब्द का प्रयोग चर्म की उपस्थिति दर्शाने के लिए किया गया है।

प्रथम विकास :

वीणाओं में स्वरोत्पत्ति का नवीन विधान "भरत्-नाट्यशास्त्र" के काल से कुछ पूर्व हुआ प्रतीत होता है। इस विधान के द्वारा वादक एक ही तार पर बॉए हाथ में 12 अगुली लम्बी लकडी या बॉस की एक गोल शलाका पकड कर उसे तार पर रगडकर भिन्न-भिन्न स्वर निकलता था। दाहिने हाथ की उगली मे कोण धारण या नख प्रहार से तार छेडा जाता था तथा बॉए हाथ की शलाका को तार पर रगड़कर या बार-बार तार से उठाकर फिर उसपर रखकर वांछित स्वर निकाले जाते थे। इस वीणा में एक ही तार होता था जिसमे जातिगत स्वरों को आसानी से निकाला जा सकता था। भरत् नाट्यशास्त्र से लेकर सगीत रत्नाकर के समय तक एक अर्थात् 1000 वर्ष से कुछ अधिक समय तक इस वीणा को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था तथा समस्त भारतवर्ष में इसका प्रचार था। इसके भिन्न-भिन्न नाम गुप्तकाल के ग्रन्थों से उपलब्ध होते हैं जिनमें से घोषक, घोषवती, घोषिका, ब्राह्मी, एकतन्त्री आदि प्रमुख है। महर्षि भरत् ने घोषवती तथा नान्य देव, शारग देव आदि ने इसे एकतन्त्री नाम से पुकारा है। शारंगदेव द्वारा वर्णित आलापिनी वीणा इसी एक तन्त्री का एक भेद थी। वर्तमान समय की विचित्र-वीणा (बट्टाबीन), गोटुवाद्यम् आदि इसी वीणा के विकसित रूप हैं।

द्वितीय विकास :

कला मर्मज्ञो के प्रथम विकास के इस नवीन सिद्धान्त से इस बात का पता चल गया कि भिन्न-भिन्न स्वरों की उत्पत्ति के लिए तार बदलना आवश्यक नहीं अपितु यदि एक ही तार को हम किसी कठोर वस्तु के स्पर्श से छोटा-बडा करें तो एक ही खिचाव के रहते हुए उसमें स्वरों की भिन्नता उत्पन्न की जा सकती है। तार के छोटा-बडा करने की प्रक्रिया एकतन्त्री में शलाका से प्रारम्भ हुई किन्तु इस वाद्य में स्वरों के सही स्थान को प्राप्त करने के लिए कलाकार मे सूक्ष्म स्वर-ज्ञान के साथ-साथ कठोर साधना की अत्यन्त आवश्यता होती थी। उक्त दोनो वस्तुओ में से यदि एक का भी अभाव हो तो स्वरो के सही स्थान कभी प्राप्त नहीं हो सकते। अतएव वादक की सुविधा तथा सरलता के लिए वीणा के दण्ड पर स्वर स्थानों को स्थापित कर देने की प्रथा का सूत्रपात हुआ। अब तक की खोजों के अनुसार यह व्यवस्था मतग के समय से प्रारम्भ हुई। इस नये विधान युक्त जो वीणा बनी उसे किन्नरी नाम दिया गया। स्वर स्थानों के लिए पक्षियो की हड्डियो का प्रयोग विहित हुआ। तत्पश्चात् लोहे या पीतल का भी प्रयोग होने लगा। इस स्वर स्थानों के प्रारम्भ में सारिका; मध्य युग में सुन्दरियाँ और आधुनिक काल में परदा कहा जाता है। प्रारम्भ मे एकतन्त्री के प्रभाव के कारण इस वीणा का प्रचार अधिक नहीं हो पाया, फिर भी, इसके रूपों में थोड़ा-बहुत सुधार होता रहा। 'संगीत रत्नाकर' के काल के आस-पास हमारे संगीत सिद्धान्तों में भारी परिवर्तन हुए। उसी के फलस्वरूप किन्नरी वीणा का महत्त्व बढा। किन्तु उसका प्रचार अपने पूर्व रूप में न होकर दो भिन्न रूपों में हुआ। एक था उत्तर भारतीय रूद्र-वीणा, दूसरा दक्षिण भारतीय तंजोरी-वीणा। रूद्र-वीणा को तानसेन के वशजों ने अपना कर सरस्वती वीणा कहना प्रारम्भ किया। इस प्रकार लगभग 13-14 शताब्दी से आज तक रूद्र एवं तन्जोरी वीणाएँ सर्वश्रेष्ठ वाद्यों के रूप में प्रतिष्ठित रही।

तृतीय विकास :

इसी काल में भरत तथा शारंगदेव द्वारा वर्णित त्रितन्त्री वीणा ने किन्नरी के परदों की व्यवस्था लेकर अपना रूप विकसित करना प्रारम्भ कर दिया था जो आज सुरबहार तथा सितार के नाम से विख्यात है।

इस त्रितन्त्री वीणा में तारों की व्यवस्था में परिवर्तन के कारण तन्त्रीवाद्यों में एक चौथा मोड प्रदान किया। एकतन्त्री में वादन तन्त्री की सख्या एक ही होने से उसमें तारों की कोई विशेष व्यवस्था न थी किन्तु जब किन्नरी और उसके बाद रूद्रवीणा तथा तंजोरी-वीणा का विकास हुआ तब तारो की वृद्धि के साथ-साथ उनकी विशेष व्यवस्था की आवश्यकता हुई। इस विशेष व्यवस्था में मुख्य वादनतन्त्री को वाम-पार्श्व में रखा गया तथा चिकारियों के लिए मुख्य घुडच के नीचे वाम-पार्श्व में ही एक छोटी ऊपर की ओर उठी हुई घुमावदार घुडच रखी गयी। त्रितन्त्री वीणा का विकास इससे विपरीत दिशा मे हुआ। सितार, सुरबहार आदि में तारों की व्यवस्था में मुख्य वादन-तन्त्री दक्षिण पार्श्व में आ गयी और चिकारी के तार उठकर मुख्य घुड़च के वाम-पार्श्व में आ गए।

उक्त नवीन परिवर्तन के कारण ही सितार पर तानों-तोडों और झालों में तैयारी को केवल एक उंगली से उस स्तर तक पहुँचाना सम्भव हुआ जो पहले के वाद्यों में तीन और चार उगलियों के प्रयोग से भी कभी सम्भव नहीं हो सका था। कुछ समय तक रूद्रवीणा की आलापचारी का आनन्द सुरबहार में तथा तैयारी का आनन्द सितार में लिया जाता रहा किन्तु पिछले 30 वर्षों में सितार को आलापचारी की दिशा में भी विकसित कर लिया गया है। और अब आलापचारी तथा तैयारी के लिए एक ही वाद्य - सितार, पर्याप्त है।

तारों की व्यवस्था का यह अन्तिम परिवर्तन लगभग 13वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ, किन्तु इसका अधिक प्रचार लगभग 18वीं शताब्दी के आसपास हुआ। अब सरस्वती तथा तंजोरी वीणा को छोड़कर सभी तन्त्रीवाद्यों, जैसे,

सितार, सुरबहार, विचित्र-वीणा, सरोद, सारगी, इसराज, दिलरूबा आदि मे तारो की यही व्यवस्था है।

अवनद्ध वाद्य :-

अवनद्ध वाद्यों के विकास क्रम पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है उनकी बनावट की सामग्री के दृष्टिकोण से तथा उनकी गूंज के दृष्टिकोण से। अवनद्ध वाद्यों का आकार तो प्राचीन काल से ही आवश्यकतानुसार छोटा-बडा, ऊँचा-नीचा आदि होता रहा है किन्तु ढॉचा तथा कसाव आदि की सामग्री मे उत्तरोत्तर परिवर्तन तथा सुधार देखा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, प्राचीन युग में प्रत्येक अवनद्ध वाद्य का ढाचा मिट्टी का ही होता था किन्तु धीरे-धीरे मिट्टी के स्थान पर लकडी का प्रयोग होने लगा। कई वाद्य लोहा, पीतल आदि धातुओं से भी बनने लगे। भारत में इस समय भी मिट्टी, लकडी, लोहा, पीतल आदि से बने ताल-वाद्य प्रयोग में आ रहे है। समय की आवश्यकता तथा सामग्री की उपलब्धि के साथ इनमें प्रगति होती रही है और होती जा रही है।

अवनद्ध-वाद्यों में गूॅज उत्पन्न करने की जिस विशेष प्रक्रिया का भरत्-नाट्यशास्त्र के कुछ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ हुआ, वह अवनद्ध वाद्यों के इतिहास में अभूतपूर्व कार्य कहा जायेगा।

सामान्यतया, जानवरों की खाल को साफ कर, कमा कर उन्हें ताल वाद्यों के मुखों पर चढ़ाकर उसे कसने की व्यवस्था करके वादन करने की प्रथा समस्त विश्व में देखी जा सकती है। इस प्रकार से तैयार किये गए वाद्यों की ध्वनियॉ उनके आकार के अनुसार छोटी-बडी हो सकती है, किन्तु उन ध्वनियों में संगीत की दृष्टि से इतनी गूॅज नहीं होती कि उनका नाद स्वर का रूप ले सके।

गूॅज की वृद्धि के लिए भारत में प्राचीन काल से मढे हुए चमड़े के ऊपर एक विशेष प्रकार के लेप की व्यवस्था होने लगी थी। भरत्-नाट्यशास्त्र में मृदंग का वर्णन करते हुए इस विशेष लेप को लगाने की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन

उपलब्ध होता है। इस लेप के कारण वाद्यों में स्वरोत्पत्ति होने लगी। अस्तु, इन स्वरों पर नियन्त्रण रखने के लिए कसाव की ऐसी व्यवस्था प्रारम्भ हुई जिसके कारण वादक वादन के समय वाद्य को अभीष्ट स्वर मे मिला सके। अवनद्ध वाद्यों को स्वर में मिलाकर वादन करने की प्रथा भी प्राचीन है। महर्षि भरत् ने मृदग के मुखों को नियमानुसार स्वर में मिलाने की प्रक्रिया को 'मार्जना' के रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार अवनद्ध वाद्यों में अनुरणनात्मकता की वृद्धि होने से उसकी ध्वनि अनुरजक हो गयी और वे वाद्य जिनमें इस प्रकार के लेप की व्यवस्था रहती थी श्रेष्ठ माने जाने लगे। प्राचीन लेप की सामग्री का वर्णन भी महर्षि भरत् ने किया है। इस सामग्री में रत्नाकर के समय तक कोई विशेष सुधार नहीं हुआ किन्तु मध्य काल मे ही लगभग 14वीं शताब्दी के आस-पास मृदग के दक्षिण मुख मे किए जाने वाले लेप में महत्वपूर्ण सुधार हुआ और वह था मिट्टी पर गेंहू आदि के आटा के स्थान पर लौह-चूर्ण, कोयला आदि से बना विशेष प्रकार से बना मसाले का लेप। लौह-चूर्ण के द्वारा बने हुए लेप का प्रयोग करने से तालवाद्य में कई प्रकार के सुधार हुए जिनमें मुख्य निम्नांकित थे :-

(१) प्राचीन लेप को वादन के समय प्रत्येक बार लगाना और वादन के उपरान्त निकाल देना पड़ता था, किन्तु इस लौह-चूर्ण का लेप एक बार लगा लेने पर बहुत काल तक उसमे कोई दोष उत्पन्न नहीं होती।

(२) प्राचीन लेप के लगाने पर वाद्य का चमडा गीला हो जाने के कारण उसें ऊँचे स्वरों में मिलाना सम्भव नहीं होता था। किन्तु लौह चूर्ण का लेप सूख जाने पर वाद्य को ऊँचे स्वरों मे भी मिलाना सम्भव हो गया।

(३) लेप के सूख जाने पर उसका वादन करने पर उसमें अपेक्षाकृत गूँज की भी वृद्धि हो गयी।

लौह-चूर्ण के द्वारा बने हुए लप के उपर्युक्त विशेष गुणों के कारण इस प्रकार के लेप युक्त वाद्यों का प्रचार बढ़ने लगा। कई वाद्यों में इस प्रकार का लेप दोनों मुखों में होने लगा। जिन वाद्यों में दोनो मुखों पर लेप होता है उनमें

तबला, खोल, नाल (बॉए मुख पर ढोलक की भॉति, भीतर की ओर मसाला रखा जाता है) आदि मुख्य है। उपर्युक्त वाद्यो मे मुख को ही स्वर में मिलाने की प्रथा है। स्वर मे मिलाने की प्रथा उक्त वाद्यो के दक्षिण मुख मे प्राप्त होने वाले स्वरो का विस्तृत विस्तार-क्षेत्र तथा अभूतपूर्व गूॅज की विशेषताओं मे आधुनिक वैज्ञानिको का ध्यान भी अपनी ओर खीचा है।

किसी भी वाद्य के ध्वनि की वैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उसमें सगीतात्मकता या अनुरणनात्मकता की मात्रा पर विचार करना पडता है। इसी अनुरणनात्मकता के कारण ध्वनि मे Harmonics, Overtones तथा Upper-partials उत्पन्न होते है।

सर्वप्रथम सन् 1923 में प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सी०वी० रमण का ध्यान इस दिशा की ओर गया तथा उन्होने तबला और मृदगम की ध्वनियों पर शोध-कार्य प्रारम्भ किया। उन्हीं के द्वारा दिखाए गए मार्ग पर उनके बाद श्री वी०ए०रा० रामकृष्ण, श्री एम०एस० सोधी तथा श्री वाई० देवधर ने मिलकर और अधिक छान-बीन की। इन विद्वानों की खोज के परिणामस्वरूप यह पता चला है कि उक्त वाद्यों में 5 harmonic tones तक उत्पन्न होते हैं।[1]

आम तौर पर तथ्य और सुषिर वाद्यो को छोडकर एवं कुछ विशेष प्रकार के बने हुए घन वाद्यों को छोडकर अन्य घन वाद्यों तथा अवनद्ध वाद्यों में harmonic tones उत्पन्न नहीं होते। ताल वाद्यों के चमडों में लौह-चूर्ण के लेप से उनकी ध्वनि संगीत की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। यही वैज्ञानिकों की खोज का सार है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय अवनद्ध वाद्यों में लेप की उक्त व्यवस्था ने उन्हें विश्व के वाद्यों से सर्वथा भिन्न तथा अद्वितीय बना देती है।

---

[1] Journal of the Institution of Telecommunication Engineers, Pg 285-90

सुषिर वाद्य :-

हमारे प्राचीन ग्रन्थो में सुषिर वाद्य को 'मुख वीणा' की सज्ञा दी गयी है। अर्थात् जिन वाद्यो के वादन में मुख का सहारा लिया जाता हो, ऐसे वाद्यों में वायु के सहारे ध्वनि उत्पन्न की जाती है - उन्हें सुषिर वाद्य कहा गया है। वायु ऊँचा-नीचा किया जाता है और उसी में विभिन्न सप्तकों की रचना होती है।

कुछ विद्वानों के अनुसार जब मनुष्य ने अपने श्वास की सीमितता से स्वरोत्पत्ति में बेसुरापन पाया तो उसने वायु सचय के लिए लम्बी नाभि वाले तुम्बे को ले लिया और जानवर की खाल को सिल कर उसमे वायु का भण्डार भरा।

वादन क्रिया की दृष्टि से सुषिर वाद्यों के स्पष्टतः दो भेद परिलक्षित होते हैं :-

१- मुँह के फूँक से ध्वनि होने वाले वाद्यों के अन्तर्गत वंशी, मुरली, पाविका, पुगी, शहनाई, नागस्वरम् आदि जाने जाते हैं।

२- किसी अन्य साधन से उत्पन्न कर जिन वाद्यों में स्वर उत्पन्न किया जाता है, उनके अन्तर्गत हारमोनियम, स्वरपेटी आदि की गणना होती है।

यहाँ प्राचीन काल से सुषिर वाद्यों में बंसी का प्रचलन रहा है। इस वंशी में छिद्रों की सख्या घटा-बढा कर अनेक भेद माने गए है किन्तु उनमें छिद्रों की सख्या घटा-बढ़ा देने या ठोस को छोटा-बडा कर देने से ही कोई नवीनता जाहिर नहीं होती है। वंशी के अतिरिक्त अन्य संगीतोपयोगी सुषिर वाद्य शहनाई है जो उत्तर प्राचीन काल की वस्तु है। इन वाद्यों में फूँकने की व्यवस्था में तो अन्तर पाया जाता है, किन्तु स्वरोत्पत्ति के लिए छिद्रों के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं है। शेष वाद्य जैसे काहला, तुरही, शंख, 'भेरी इत्यादि अवसर विशेष के लिए उपयुक्त वाद्य तो हैं पर सगीत से इनका सीधा सम्बन्ध नहीं है। सुषिर वाद्यों में मध्यकाल से ही पाश्चात्य देशों में अभूतपूर्व प्रगति हुई जिसके फलस्वरूप, इनका प्रभाव

हमारे देश में भी पडा। सुषिर वाद्यों मे विकास की न्यूनता के अनेक कारणों में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण भारत का जातिवाद मालूम होता है। सगीत वाद्य पर भारतीय कुलीन-अकुलीन जाति व्यवस्था का प्रभाव देखकर आश्चर्य होता है। ऐसा लगता है कि छेडकर या ठोक कर बजाए जाने वाली वीणाएँ - चित्रा, विपन्ची आदि, लेप किये जाने वाले अवनद्ध वाद्य - मृदंग; सुषिर वाद्य में शख तथा धन वाद्यों में भगवान के पूजन में प्रयुक्त होने वाला घण्टा, घडियाल आदि को छोडकर कुलीन जाति के लोग अन्य वाद्यों का वादन नहीं करते थे। तत् वाद्यों में गज से बजने वाले वाद्य सारगी तथा चिकारा; अवनद्ध वाद्य मे बिना लेप वाले वाद्य हुडुक, ढोलक, नक्कारा, धौस इत्यादि; सुषिर वाद्यो में वंशी, शहनाई, नागस्वरम् आदि, घन वाद्यों में मजीरा, झॉझ आदि का वादन अकुलीन जातियो द्वारा होता था। इन वाद्यों में भगवान श्री कृष्ण के द्वारा वंशी अपनायी गई, इसलिए उसका महत्त्व अत्यधिक बढ गया। लेकिन भगवान श्री कृष्ण ने वंशी का वादन तब किया जब तक अपने को अहीर समझते थे। जिस दिन से वे क्षत्रिय हो गए उस दिन से वह शख बजाने लगे। अतएव, उनका यह कार्य भी यही संकेत करता है कि सुषिर वाद्यों में शंख को छोडकर अन्य किसी वाद्य का वादन कुलीनों को शोभा नहीं देता।

यद्यपि कुछ वर्षों में इसमें कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार उन वाद्यों का विकास ठीक तरह से नहीं हुआ जिनका सम्बन्ध ऊँचे जाति से न हो।

घन वाद्य :-

घन वाद्य के अन्तर्गत सभी ताल वाद्य आते हैं। ठोकर के द्वारा जो वाद्य बजाये जाते हैं वे घन वाद्य कहलाते है। इन वाद्यों का निर्माण प्रायः कांसा, पीतल या लकडी से होता है।

कुछ विद्वानो के अनुसार सगीत में घन वाद्यों का पृथक कोई अस्तित्व नही है बल्कि अन्य वाद्यो के साथ बजाने पर ही उनका ध्वनि सौन्दर्य निखरता है। वादन क्रिया की दृष्टि से घन वाद्यों के मुख्यत तीन उपवर्ग है -

(१) एक ही प्रकार के दो हिस्सो को परस्पर टकराकर बजाये जाने वाले वाद्यो के अन्तर्गत झाँझ, करताल, मजीरा, कठताल, कम्रिका आदि आते है।

(२) डण्डी, लकडी या किसी अन्य वस्तु से निर्मित, हथौडी के प्रहार से बजने वाले वाद्य, जैसे घण्टा, जयघण्टा, गांग, गेमलन, बडी झाँझ आदि।

(३) हिलाकर बजाये जाने वाले, जैसे - झुनझुना, रम्भा आदि हैं।

लगभग 12वीं शताब्दी तक घन वाद्यो का सगीत में अत्यधिक महत्त्व था परन्तु इसके बाद शास्त्रीय सगीत मे इनका प्रयोग अत्यल्प होता गया। आजकल कीर्तन, भजन, लोकगीत आदि के साथ ही इनका प्रचलन है।

भारतीय वाद्यों में घन वाद्य के वाद्यों का जो लकडी तथा भिन्न-भिन्न धातुओं से बनाये जाते है, प्रारम्भ से ही बहुत अधिक विस्तार दिखायी पडता है। लेकिन यह विस्तार मध्यकाल के आते-आते लगभग स्थिर हो गया। मध्यकाल तक जिन घन वाद्यों का निर्माण हो चुका था, उसमें उनके बाद कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि प्राचीन युग में घन वाद्यों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत मे होता था, किन्तु मध्य काल में शास्त्रीय संगीत के साथ इनका प्रयोग क्रमशः घटता गया और इस समय तो शास्त्रीय संगीत में किसी घन वाद्य का प्रयोग नहीं देखा जाता। फलस्वरूप, घन वाद्यों की जो स्थिति प्राचीन काल से मध्यकाल तक थी, वही अब भी बनी हुई है। मध्यकाल में जलतरंग नामक एक नए वाद्य का प्रयोग अवश्य मिलता है जो 'संगीत पारिजात' आदि ग्रन्थों में घन वाद्य के अन्तर्गत ही माना गया है। 'किन्तु कुछ काल बाद जलतरंग काष्ठतरंग, शीर्षतरंग, घण्टातरंग, घुंघरू तरंग आदि के साथ मृदंग तरंग, तबला तरंग, डुग्गी तरंग आदि के रूप में विस्तार हो जाने के कारण इन्हें घन वाद्य वर्ग के अन्तर्गत

रखना उचित नही कहा जा सकता। इनका स्वतन्त्र वर्ग, तरग वाद्य के रूप में स्वीकार करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा और इसी प्रकार नवीन वाद्यों के विकास मे यह एक नया अध्याय जुड जायेगा, ऐसा श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग का मानना है।

वस्तुत तरग वाद्य कोई नये वाद्य नहीं है, अपितु इनका प्रयोग नया है। वास्तव मे यही गाग, गेमलन आदि वाद्य तरंग वाद्यो के आदि रूप हैं जिनका प्राचीन युग मे भारत के सीमान्त प्रदेशो में प्रयोग होता था किन्तु तरग वाद्य के नाम से पहला वाद्य जलतरग है जिसका वर्णन मध्य-युग के शास्त्रों मे मिलता है तथा ब्रज के भक्त कवियों द्वारा उल्लेख मिलता है।

सितार का क्रमिक विकास :

सितार को 18वीं शताब्दी वाले रूप को प्राप्त करने मे काफी समय लगा तथा इसे अनेकबार अपने रूप बदलने पडे। कुछ लोगो के विचार से सितार पर्शियन वाद्य है। परन्तु इसके वर्तमान विकसित रूप का श्रेय भारत को ही प्राप्त है। भारत में इस वाद्य में जो परिवर्तन-परिवर्द्धन हुए वे कब, कहॉ और किसके द्वारा हुए, यहाँ इनके विषय में ही लिखा गया है।

अनेक शोध प्रबन्धों में सितार की उत्पत्ति अचानक 18वीं शती में हुई बतलाई गयी है। परन्तु सितार को 18वीं शती वाले रूप को प्राप्त करने में काफी समय लगा तथा उसे अनेक बार अपने रूप बदलने पडे। जिसके विषय में आज तक कुछ ठोस निष्कर्ष नहीं निकल पाया। इसका कारण यह है कि पर्शिया का होते हुए भी इस वाद्य के बाह्यावरण में इतने अधिक परिवर्तन हो गए हैं कि इस वाद्य को पर्शिया का कहना सहज प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में गहन तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रबल ऐतिहासिक लिखित साक्ष्यों को सम्मुख रखकर ही निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

प्राचीन सितार का 7वीं से 11वीं शती के पर्शियन साहित्य में उल्लेख मिलता है 'किताब उल अधानी' इस समय गायन की संगति के लिए सितार वाद्य

का प्रयोग किया जाता था। यह कथन पर्शियन साहित्य में प्रचलित है कि 'बरबत' नामक गायक खुसरो परवेज के दरबार में अपने सिता, सिते या सितार बजाते हुए गायन किया करता था तथा नफीसा उसका चाग पर साथ दिया करता था। 13वीं शती के अमीर खुसरो को सितार का प्रणेता मानने का भ्रम उपर्युक्त अमीर खुसरो (13वीं शती) द्वारा कहे गये कथनों में साम्यता के कारण हुआ। शिहाब सरमदी साहब ने अपने एक लेख में स्पष्ट किया है। अमीर खुसरो को इसी 6ठी से 7वीं शती वाले सितार से सम्बन्धित बताता है जबकि बाद के लेखकों ने (कै० विलर्ड, कल इमाम) ने भ्रमवश इस प्रारम्भिक सितार को 13वीं शती के अमीर खुसरो के खाते में डाल दिया है। इस कथन का समर्थन सन् 1831 ई० में लिखित पर्शियन पुस्तक में बने सितार के चित्र से और भी स्पष्ट हो जाता है।[1] इसमें एक प्यालानुमा खोल तुम्बे का काम करता है, जो ऊपर से खाल से मढा होता है। एक पतली एवं लम्बी डाण्ड तुम्बे के आरपार निकली होती है जिसके ऊपरी भाग में तार बॉधने के लिए तीन खूंटियॉ बँधी होती हैं। ब्रिज लम्बवत् है तथा परदों का प्रयोग नहीं होता जो कि ईरानी वाद्यों की विशेषता है।

यह प्रारम्भिक सितार आज भी अफगानिस्तान में 'दो-तारे' के नाम से काफी प्रचलित है। बी०सी० देव की "The Music and Musical Instruments of Southern India and the Duccan, Pg 120" इसमें तीन तार थे। यह वाद्य 13वीं शती के आस-पास भारत आया तथा इस वाद्य का भारत में कई प्रकार से विकास हुआ, जो कि कई उल्लेखों एवं तर्कपूर्ण विवेचनों से स्पष्ट होता है। यहॉ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि 'दोतारे' को पर्शियन में सितार बोला जाता है। सन् 18वीं में सी०आर० डे ने अपनी पुस्तक में पर्शियन सितार का जो चित्र दिया है वह 1831 ई० की पर्शियन पुस्तक जैसा ही है। इसी के साथ 1884 की उर्दू में लिखी 'शरमाय इशरत' - (सादिक़ अली खॉ) में दोतार वाद्य की जो तस्वीर दी गयी है उसमें भी डॉड का निचला भाग तुंबे के बाहर निकला हुआ है। परन्तु

---

[1] अरमामुद्दीन - नग्मतुल अजायब-1831 ई०, पृष्ठ-30

लगी, कहीं तारों की सख्या में वृद्धि हुई, कहीं तरबें लगीं तथा कहीं इसपर परदों की व्यवस्था की गयी। परन्तु इसके मूल आकार में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। आज यह वाद्य विभिन्न प्रान्तो के लोक सगीत में अपना स्थान पूर्णतः बना चुका है। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि ईजिप्ट में प्रारम्भिक सितार की बनावट में सुधार हुआ। यह वाद्य तुम्बे के अन्दर लकडी की डॉड डालकर बनाया जाने लगा। इन वाद्यों को मिजराब द्वारा बजाया जाता था। इनको हाथ से कोण द्वारा छेडा जाता था तथा बॉए हाथ से परदो पर दबा कर रोका जाता था। यह परदे डॉड पर बॉधे जाते थे।[1]

कर्ट सेचूस ने अपनी पुस्तक मे पूर्वी तुर्किस्तान के 4500 ई०पू० पुराने एक परदे वाले सितार का चित्र दिया है।[2]

पर्शियन जहॉ इस वाद्य को तार के नाम से पुकारते थे, वहीं अरबों ने इसे तम्बूरा कहा। अफगानिस्तान मे यह वाद्य आज भी तम्बूर के नाम से पुकारा जाता है। भारत में यह वाद्य 13वीं शती में आया। संगीत रत्नाकर तक भारत में इस वाद्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। 'अएन-ए-अकबरी' मे 4 तम्बूर वादकों का जिक्र है जो कि अकबर के दरबार मे थे। अबुल फजल ने इन 4 तम्बूर वादकों को पर्शियन वाद्य बजाने वालों की श्रेणी मे रखा। यह तम्बूरची एशिया के निवासी थे, इससे यह प्रामाणिक तौर पर कहा जा सकता है कि यह वाद्य अभी भारत में प्रचलित हो रहा था जिसके वादक भी पश्चिम् एशिया के ही थे। परन्तु अकबर की भारतीय संगीतप्रियता से इस वाद्य की वादन-शैली पर कुछ न कुछ भारतीय सगीत का भी समीकरण किया जाता रहा था। इस बात को इब्राहीम आदिल शाह के ध्रुपद गायक एव तम्बूर वादक होने से और भी ठोस रूप से सहारा मिल जाता है। यह अकबर और शाहजहॉ के समकालीन थे।

---

[1] भारतीय सस्कृति (भाग-२) . बी०सी० देव, पृष्ठ-143

[2] The History of Musical Instruments, Pg 218-257 सी० सेचूस

इन्होने अपने हीरो से जडे हुए तम्बूर का नाम 'मोतीखॉ' रखा। ये बहुत बडे ध्रुपद गायक थे। आदिलशाह के समय ध्रुपद से खयाल की ओर झुकाव की प्रवृत्ति थी। इब्राहीम के वादन की प्रशसा अकबर तथा जहाँगीर भी करते थे, तो इसमें कोई खास बात नहीं थी। अत ऐसा प्रतीत होता है कि आदिल शाह जो कि ध्रुपद को पर्शियन तम्बूरे पर बजाने का सफल प्रयास किया, इसके लिए तम्बूर पर तॉत के परदों की भी आवश्यकता थी।[1] जिससे ये प्रामाणिक तौर पर कहा जा सकता है कि इब्राहीम आदिलशाह के समय परदों की व्यवस्था थी। फकीरूल्लाह ने अपने पर्शियन भाषा मे लिखे 'रागदर्पण' नामक ग्रन्थ मे तीन तम्बूर वादकों का वर्णन किया है। वे लिखते है कि 'शैकी' नामक तम्बूरची हिन्दी तथा फारसी दोनों ही सगीतों को तम्बूर पर बहुत ही अच्छी तरह बजाता था।[2]

इससे तम्बूर के वादन शैली पर भारतीय प्रभाव एव विकास दोनों की ही प्रतीति होती है। 16वीं शती से 19वीं शती तक लघु-चित्रकारी पर यदि दृष्टिपात करें तो भी यही वाद्य कहीं तम्बूर, कहीं सितार आदि नामो से हमे मिलता है। परन्तु इनकी मुख्य आकृति एक समान ही है।[3]

सवाई प्रताप सिह ने 17वीं शती में संगीत पारिजात का अनुवाद करते हुए अपने ग्रन्थ सगीत-सार में (निबद्ध) तम्बूरे को सितार की संज्ञा दी है।[4]

पं० अहोबल से (17वीं शती) यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय दो प्रकार के तम्बूर प्रचलित थेः (1) परदे रहित, एवं (2) परदे सहित। 'सगीत पारिजात' में इसे लकडी खोदकर बनाया गया वाद्य कहा गया है। तथा इसके बनाने की विधि पहले दी गई वीणा के समान ही बताई गयी है। पं० अहोबल आन्ध्र-प्रदेश के निवासी थे। उनका सम्बन्ध दक्षिण के संगीत से ज्यादा रहा।

---

[1] 'हकायके हिन्द' : पृष्ठ-4, सन् 1536
[2] रागदर्पण . फकीरूल्लाह, पृष्ठ-95
[3] My Music My Life Pt Ravi Shankar
[4] राधागोविन्द सगीत सार : सवाई प्रताप देव, पृष्ठ-7

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे दक्षिण मे प्रचलित किसी प्रकार के तम्बूर का वर्णन कर रहे है। सी०आर० डे ने सन् 1891 ई० में अपनी पुस्तक मे सितार के एक अन्य प्रकार का, जो दक्षिण में मिलता है उसका वर्णन किया है। वे इसे 'कर्नाटक-सितार' कहते है। इस वाद्य पर कहीं-कही वीणा के समान अचल परदों की भी व्यवस्था बताते है। सी०आर० डे के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि प० अहोबल अपनी पुस्तक मे इसी कर्नाटक-सितार को अनिबद्ध तम्बूरे की सज्ञा दे रहे है। इस सन्दर्भ मे पोपले का 1921 ई० मे दिया गया 'कर्नाटक-सितार' का वर्णन उल्लेखनीय है।[1]

इनके द्वारा वर्णित सितार प० अहोबल के द्वारा वर्णित अनिबद्ध तम्बूरे का ही विकसित रूप है क्योकि इसके भी प्रारम्भिक चार तार उन्हीं स्वरों में मिलाया जाता था जो कि 'सगीत पारिजात' के अनुवादक के द्वारा बताये गये है। उपरोक्त कर्नाटक-सितार के बाकी तीन तार इस वाद्य के विकास के द्योतक है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि अहोबल का निबद्ध तम्बूरा कर्नाटक-सितार की प्रारम्भिक स्थिति है। इस प्रकार बिद्ध तम्बूरे की क्रमिक विकास में चार स्थानों की जगह सात स्थानों पर परदे लगाये गये। इसी प्रकार के तम्बूर कागड़ा शैली के लघु-चित्रों में भी देखने को मिलते हैं। उनमें दो-दो की जोड़ी में परदे लगे है, जो कि अहोबल के निबद्ध तम्बूरे का ही अविकसित सितार "एफ० सोल्वेन्स ने 1810 ई० में चित्रित किया है।" एलन माइनर - शोधकार्य बनारस। यह सितार उपर्युक्त सितारो से काफी बडी आकृति का है इसमें भी छः तार हैं, ब्रिज लम्बवत् है तथा परदों की व्यवस्था है। वे इसे नृत्य की सगति का वाद्य बता रहे हैं।

विलियम इरविन ने अपनी पुस्तक Later Moghals में न्यामत खॉ को जहॉदेर शाह के दरबार का एक अच्छा तंम्बूर-वादक बताया है (पृष्ठ-193) जबकि मीराते-देहली में न्यामत खाँ को एक बीननवाज और खयालों की रचना करने

---

[1] Music of India . H.A Popeley, Pg 105-107

वाला बतलाया गया है। इस पुस्तक में एक वाकर नामक तम्बूरची की काफी प्रशसा की गयी है।[1]

इन दोनों प्रमाणो तथा न्यामत खॉ की जीवनी को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि न्यामत खॉ ने शुरू में जहॉदैर शाह के दरबार में तम्बूर वादक के रूप में प्रसिध्दि पायी तथा मुहम्मद शाह रंगीले के समय (सन् 1719-48 ई०) वह एक अच्छे बीन-वादक एव खयाल रचयिता बन गए थे। यही कारण है कि दरगाह कुली खॉ ने न्यामत खॉ को तम्बूर बजाते हुए नहीं सुना था। मु० करमईमाम ने अपनी पुस्तक मे एक तम्बूर का वर्णन किया है जिसमे चमडे के परदों की व्यवस्था है।[2]

उपर्युक्त सभी उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि सितार के विकास का क्रम धीरे-धीरे उन्नति के शिखर पर पहुॅच रहा था तथा इसके वादन में न्यामत खॉ एवं उनके बाद के लोगों ने बहुत सहयोग दिया। दरगाह कुली खॉ के वर्णन से दो बातें स्पष्ट होती है - कि उस समय सितार पर चार तारों की जगह तीन तारों का भी प्रयोग किया जा रहा था, क्योकि उस समय सितार की वादन-शैली का परिष्कार किया जाने लगा था। पहले यह वाद्य केवल सगति एव लोक-सगीत में ही प्रयोग किया जाता था परन्तु अब इसका क्षेत्र विकसित होने लगा तथा इसमें घसीट एवं एक से अधिक सप्तक मे वादन की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके कारण इसके तीन तारों को व्यवस्थित कर वादन शैली को परिष्कृत किया गया। जैसा कि दरगाह कुली खॉं ने इस वाद्य के विकास के विषय में लिखा है:- “एक राग से दूसरी रागिनी निकालते, एक परदे से दूसरे परदे पर आते; बजाते-बजाते गाने लगते हैं, इतना प्रभावशाली बजाते है।” इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय यह वाद्य गायन की सगति के लिए कम तथा स्वतन्त्र रूप से ही प्रधानतः बजाया जाता होगा।, ‘मीराते-देहली’ में सदारंग का वर्णन होना

---

[1] दरगाह कुली खॉं . मीराते देहली, पृष्ठ-55,56
[2] मादन उल मूसीक़ी : मो० करम इमाम, पृष्ठ-57

तथा अदारंग का वर्णन न करते हुए न्यामत खॉ के भाई का वर्णन करना यह दर्शाता है कि दरगाह कुली खॉ अदारग के बारे में ही वर्णन कर रहे है। यह सत्य है कि अदारग ने सितार की वादन-शैली को परिवर्द्धित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कुछ गुणिजन जो 'मीराते देहली' में वर्णित न्यामत खॉ के भाई को कल्पित नाम खुसरो खॉ देते है।

जहॉ तक सितार के आविष्कारक के रूप में अमीर खुसरो का नाम आता है यह अनुचित प्रतीत होता है। नि:सन्देह अमीर खुसरो एक कुशल संगीतज्ञ थे, परन्तु ऐतिहासिक रूप में उनका सितार से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता है। उन्होंने अपनी दो प्रसिद्ध पुस्तकों में सगीत का पर्याप्त वर्णन किया है, किन्तु भारतीय संगीत विषयक ज्ञान का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं होता । इस काल के प्रसिद्ध इतिहासकार बर्नी ने भी सितार का वर्णन कहीं नहीं किया है।

अमीर खुसरो के बाद की ऐतिहासिक पुस्तको में 'आइन-ए-अकबरी' की गणना होती है। इसके लेखक अबुल फजल ने नगाडा, दमामी, ढोलक, मजीरे आदि का तो वर्णन किया है, परन्तु सितार या तबले का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

मुगल सम्राट शाह आलम ने अपने ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' में सितार की चर्चा भारतीय वाद्यों की सूची में की है -

सन् 1975 में 'रिफ्रेन्स रिप्रिन्ट', लाहौर (पाकिस्तान) से प्रकाशित पुस्तक के लेखक जनाब रशीद मलिक के अनुसार हजरत अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत में कोई नया आविष्कार नहीं किया न रागों में न तालों में, न वाद्यों में। वे ईरानी संगीत के मर्मज्ञ थे। इसी पुस्तक के पृष्ठ-146 पर रशीद साहब का यह वाक्य भी दृष्टव्य है "सितार की ईज़ाद, इख्तिआर या तरमीम से कोई वास्ता न था। अपने इस विचार की पुष्टि में लेखक का कथन है कि हज़रत अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'एजाज-ए-खुसरवी' के दूसरे प्रकरण में 26 वाद्यों के नाम गिनाये हैं परन्तु उनमें सितार की कोई चर्चा नहीं है। सितार के बारे में उनकी

खामोशी इस बात की दलील है कि उनका सितार के आविष्कार से कोई वास्ता नहीं था।"

सगीत-रसिक मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रगीले का राज्यकाल 1719-1748 ई० तक रहा। इस युग के कलाकारों मे सदारग सगीत-शिरोमणि थे। उनका वास्तविक नाम नेमत खॉ था। यह निर्मोल खॉ के पुत्र थे। उस युग के एक लेखक दरगाह कुली खॉ ने कहा है कि सदारग का छोटा भाई एक 'विचित्र वस्तु' जो तीन तार का बाजा है, उसपर राग-रागिनियॉ प्रस्तुत करता है। उस समय इस वाद्य का नामकरण भी नहीं हुआ था, परन्तु यही वाद्य सितार था। अमीर खुसरो की प्रसिद्धि ने, लोगो के अज्ञानता के कारण, खुसरो खॉ का यश अमीर खुसरो को मिल गया।

अदारंग का वास्तविक नाम फिरोज खॉ था। इन्हीं की बनायी हुयी गते सितार की प्राचीनतम् 'फिरोजखानी' गते है। फिरोज खॉ के पिता खुसरो खॉ ही भारतीय सितार के आविष्कारक थे और नेमत खॉ 'सदारग' खुसरो खॉ के अग्रज थे। खुसरो खॉ के पौत्र उ० मसीद खॉ की गतें और वादन-शैली आज भी 'मसीतखानी बाज' के नाम से सितार का आविष्कारक होने योग्य विद्वता को सिद्ध करता है।

नेमत खाँ के भाई 'खुसरो खाँ' को सितार का आविष्कारक व विकासकर्ता मानने वाले -

इस स्तम्भ में हम खुसरो खॉ नामक व्यक्ति को सितार का आविष्कारकर्ता मानने वाले विद्वानों के वर्णनों से पूर्व हम 'नवाब दरगाह कुली खॉ' लेखक 'मुरक्का-ए-दिल्ली' (इस पुस्तक का अनुवाद "ख़्वाजा हसपन निज़मी ने दो सौ बरस पुरानी दिल्ली के हालात" के ऩाम से किया तथा राजकुमार "हरदेव" लेखक "चेहलरोजा" इस पुस्तक का अनुवाद ख़्वाजा हसन निज़ामी ने "निजामी बंसरी" नाम से किया) का परिचय लिख रहे हैं। इन दोनों लेखकों की पुस्तकों को उन

लेखकों ने, जो खुसरो खॉ को सितार का आविष्कार-कर्ता मानते है, सितार के आविष्कार और विकास के सम्बन्ध में बहुत ही अधिक प्रामाणिक आधार माना है।

आचार्य बृहस्पति ने 'नेमत खॉ' के भाई 'खुसरो खॉ' नामक व्यक्ति (जो मुहम्मद शाह रगीले के युग मे हुए थे) को सितार का आविष्कार-कर्ता व विकास-कर्ता माना है। वह लिखते है कि "ईरानी सगीत में हज़रत अमीर खुसरो के बहुत पूर्व से 'सेहतार' वाद्य की चर्चा है -जो भारतीय त्रितन्त्री शब्द का ठीक-ठीक पर्याय है।"[1]

आज के लोकप्रिय वाद्य सितार का प्रवर्तन करने वाले यही खुसरो खॉ है।[2]

आचार्य बृहस्पति आगे लिखते हैं कि - "इस वाद्य में आवश्यकता अनुसार समय-समय पर तारों की सख्याओं में वृध्दि होती रही।"

हजरत अमीर खुसरो तथा सितार के विकास के सम्बन्ध में उस्तार हलीम जाफर खॉ साहब के विचार इस प्रकार हैं :-

उर्दू तरक्की बोर्ड, लाहौर की पुस्तक "खुसरोशनासी" में प्रकाशित अपने लेख में 'सुप्रसिद्ध सितार वादक डॉ० हलीम जाफर खाँ' हसरत अमीर खुसरो के सगीत ज्ञान अग, संगीत के प्रति किये गये कार्यों के विषय में लिखते है कि "हज़रत अमीर खुसरो के इल्मी और अदबी कामों का तो फिर भी रिकॉर्ड मिल जाता है मगर मौसीकी का नहीं मिलता वरना खुसरो जैसे मोहसिने मौसीक़ी के बेशबहा खज़ाने की आज तलाश न करनी पडती।"

'दि हिन्दुस्तानी एण्ड कर्नाटक म्युज़िक' और 'दि हिस्ट्री ऑफ इण्डियन म्युज़िक' का उदाहरण देकर खॉ साहब़ लिखते हैं कि "इन पुस्तकों के लेखक, जो खुद अमली तौर पर फलॉ मौसीक़ी के जानने वाले और बरतने वाले हैं, इन

---

[1] भरत् का सगीत सिद्धान्त : आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, पृष्ठ-308
[2] नवाब दरगाह कुली : मुराका-ए-दिल्ली/सगीत चिन्तामणि, पृष्ठ-337

लोगो का खयाल है कि इस ला इल्मी के लिए खुद हजरत अमीर खुसरो जिम्मेदार है। इन लोगों का कहना है कि हजरत अमीर खुसरो ने अपने अहद की मौसीकी पर कुछ न लिख कर उन लोगों को, जो मौसीकी अमली तौर पर बहरावर न थे, यकीन और शक के दरम्यान डॉवाडोल कर दिया है।"

सितार के विषय में खॉ साहब लिखते हैं कि "यह शक्ल में अरबी साज 'औद' से कुछ हमशक्ल और हिन्दुस्तानी शक्ल 'बीन' के उसूल पर बनी है।"

"हिन्दुस्तान के कदीम साज 'त्रिन्तन्त्री बीन' से भी इसकी निस्बत दी जा सकती है। रोम के एक साज 'सत्तारा' से भी यह मिलता-जुलता है।" खॉ साहब आगे लिखते है कि "सितार, 'सिहतार' या बोलचाल के फर्क से 'सीतार' मिन्दरजा बाजा और साजों में अपना अलग मुकाम, एक अलग खुसुसियत रखता है, मगर हजरत अमीर खुसरो खुद किस ढग से सितार बजाते थे मालूम नहीं।" वह आगे लिखते है कि "16वीं सदी के बहुत बाद मियॉ तानसेन के पीरों ने जब सितार साज को अपनाया तो इसे 'सोलो-साज' की हैसियत दी। इस सिलसिले में अमृत सेन का नाम आमतौर पर आता है। 18वीं शताब्दी के आखिर में जब मसीद खॉ और रजा खॉ ने सितार की खूबियों को उजागर किया तो सितार का बाज वजूद में आया जो सेनी बाज के नाम से जाना जाता है।" खॉ साहब की उक्ति से तीन बातें स्पष्ट रूप से सामने आती है :-

१- हज़रत अमीर खुसरो का भारतीय संगीत से सम्बद्ध साहित्य अप्राप्त है और स्वयं हजरत अमीर खुसरो ने इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं दी है।

२- सितार का आविष्कार या विकास हजरत अमीर खुसरो द्वारा नहीं हुआ, न ही उनके युग में इस वाद्य को 'स्वतन्त्र वाद्य' का स्थान प्राप्त था।

३- इस वाद्य का विकास 18वीं शताब्दी में तानसेन के वंशजों के द्वारा हुआ।

अत खॉ साहब के वर्णनो से यह बात स्पष्ट होती है कि “सितार प्राचीन त्रितन्त्री वीणा का विकसित स्वरूप है जिसको 18वीं शताब्दी के बाद के विद्वानों के द्वारा वादनोपयोगी और लोकप्रिय बनाने का पूर्ण प्रयास किया गया।

इस प्रकार निबद्ध तम्बूरा ही सितार के नाम से प्रचलित हुआ। जहॉ दक्षिण मे इसे कर्नाटक-सितार कहा गया वहीं उत्तर में इसे सहतार एव सितार के नाम से जाना गया। इस सितार का पोपले द्वारा किया गया वर्णन तथा कागडा-शैली के लघुचित्रों में दर्शाए गए तात के परदे, जो कि दो-दो की जोडी में बॅधे हुए थे, के विकास पर प्रकाश डालते है। इसका बाद मे क्रमिक विकास जहॉ दक्षिण मे वीणा के समान अचल परदों वाले कर्नाटक सितार के रूप मे हुआ, जैसा कि के०सी०आर० डे कुछ कर्नाटकी सितारो पर दर्शाते हुए प्रतीत होते हैं। वहीं कश्मीर घाटी में तांत के परदों की संख्या में वृद्धि हुई तथा इसमें 16 या 17 तात के परदे लगे। यह वाद्य कश्मीरी सहतार के नाम से वहॉ के लोक में प्रचलित हुआ। इनमें तारों की सख्या मे भी वृद्धि हुई एव 7 से 9 तार लगाए गए। इससे यह सिद्ध होता है कि ‘सगीत पारिजात’ के अनिबद्ध तम्बूरे का विभिन्न प्रान्तों की संस्कृति के अनुसार ही क्रमिक रूप से विकास हुआ। परन्तु हम इस सच्चाई से अवगत हैं कि सितार के विकास मे खुसरो खॉ का बहुत बडा योगदान है। कुछ समय पहले तक अमीर खुसरो का खुसरो खॉ के नाम से साम्य होने के कारण अमीर खुसरो को ही सितार के आविष्कारक एव प्रचार-प्रसारक माना जाता था परन्तु अब खुसरो खॉ को सितार वाद्य के प्रणेता के रूप में मान लिया गया है।

तन्त्रीवाद्यों की विशेषता :-

संगीत वाद्यों का हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, अतएव वाद्य हमारे जीवन के चारो ओर फैले हुए हैं। ये हमारी भावनाओं को हमारी चित्त-वृत्तियों को पूरी तरह वहन करने में सक्षम हैं। वाद्य में ये विशेषता होती है कि हमारे भावों को दूसरे तक ले जाते हैं। प्राचीन काल में एक तार पर केवल

एक ही स्वर की व्यवस्था रहती थी, किन्तु भरत् नाट्यशास्त्र के काल से कुछ वर्ष पूर्व वीणाओं में स्वरोत्पत्ति का नवीन विधान हुआ जिसमे वादक एक ही तार पर बॉए हाथ मे बारह अगुल लम्बी लकडी या बॉस की गोल शलाका पकड़कर उसे तार पर रगडकर भिन्न-भिन्न स्वर निकालता था। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वरों की उत्पत्ति के लिए तार बदलना आवश्यक नहीं था अपितु यदि एक तार को हम कठोर वस्तु के स्पर्श से छेडा तो एक ही खिचाव के रहते हुए उसमें स्वरो की भिन्नता उत्पन्न की जा सकती है। वाद्य मे स्वरों के सही स्थान को प्राप्त करने के लिए कलाकार के सूक्ष्म स्वर-ज्ञान के साथ-साथ कठोर साधना की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसलिए वादक की सुविधा एवं सरलता के लिए वीणा के दण्ड पर स्वर स्थानों को स्थापित कर देने की प्रथा का सूत्रपात लगभग मतंग के समय में प्रारम्भ हुआ। इस नये विधान से जो वीणा बनी उसे किन्नरी नाम दिया गया।

समय के साथ-साथ वाद्यों में परिवर्तन होता रहा। त्रितन्त्री वीणा में परदो की व्यवस्था हुई। तारों की व्यवस्था में परिवर्तन हुआ, जिसके कारण सितार, सुरबहार आदि में तारों की व्यवस्था में मुख्य वादन तन्त्री दक्षिण पार्श्व मे आ गयी और चिकारी उसका मुख्य घुडच के बॉई ओर आ गया। इस परिवर्तन के कारण ही सितार जैसे तन्त्रवाद्यों में तोडों/झाले की तैयारी को केवल एक उंगली से उस स्तर तक पहुॅचाना सम्भव हो सका जो पहले तीन-चार उंगलियों के प्रयोग से भी सम्भव नहीं था। पहले आलाप का काम सुरबहार से तथा तैयारी का आनन्द सितार से लिया जाता था। किन्तु धीरे-धीरे सितार में आलापचारी की दिशा में विकसित कर लिया गया और अब सभी कुछ के लिए यह वाद्य पर्याप्त है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर अब तक कला मर्मज्ञों ने वाद्यों में विभिन्न परिवर्तन करके स्वर उत्पन्न किया।

आधुनिक काल में सरोद, सितार आदि में चार सप्तकों को अच्छे कलाकार प्रयोग कर लेते हैं। इसमें आदि और अन्त के स्वरों पर मींड़ का सहारा लेना पड़ता है। सप्तक के स्वरों की विस्तारता की दृष्टि से भारतीय वाद्यों में प्रगति

का सकेत है। तारता के गुण के साथ-साथ तीव्रता का गुण भी सरोद, सन्तूर आदि तत् वाद्यो में कही अधिक है। वाद्य सगीत मे स्वर एवं लय के माध्यम से बिना किसी अन्य कला की सहायता के श्रोताओं को चिरकाल तक आनन्दानुभूति मे रमाये रखने की अद्भुत शक्ति है। वाद्यों का विकास जैसे-जैसे होता गया, वैसे-वैसे उनका विभिन्न अवसरो - सामाजिक या युद्धादि अवसरों पर प्रयोग होता था।

विभिन्न तंत्रीवाद्य :

आधुनिक युग मे सितार के अतिरिक्त तत्रवाद्यों में प्रचलित वाद्य है - सरोद, रबाब, सुरसिगार, वायलिन, इत्यादि परन्तु मिजराब की सहायता से बजने वाले वाद्य है - सरोद, सुरसिंगार, रबाब आदि जिनकी चर्चा हम आगे कर रहे है।

सरोद :

सरोद वादन भारत में 15वी शती से प्रचलित था, परन्तु इस वाद्य को उस समय विशेष सम्मान प्राप्त नही था। बहुमत इस वाद्य को विदेशी वाद्य स्वीकार करता है। परन्तु सरोद की आकृति से मिलता-जुलता वाद्य प्राचीन शिल्पाकृतियों में अवश्य मिलता है। पण्डित लालमणि मिश्र इसे चित्रा वीणा की अनुकृति मानते है। अफग़ानिस्तान किसी समय भारत का ही अंग था, इस दृष्टि से सरोद जैसे वाद्य का वहॉ प्रचार होना अस्वाभाविक नही। इतिहास मे १८वी सदी तक किसी प्रसिद्ध सरोद वादक का नाम नही प्राप्त होता।

आकृति की दृष्टि से रबाब, सुरसिंगार से इसकी समानता मिलती है। प्राचीन सरोद का आकार रबाब और सुरसिंगार की आकृति के और भी निकट था परन्तु इसमें परिवर्तन और परिमार्जन होते-होते आज यह जिस स्तर पर पहुॅच गया है कि इसमें और किसी प्रकार का परिमार्जन असम्भव लगता है।

एलिन माइनर के अनुसार किसी ने कहा है कि अफगानी रबाब और सेनिय रबाब में अन्तर करने के लिए अफगानी रबाब को सरोद कहा जाने लगा।

सरोद के आविष्कार पर दो अफगानी घरानों का दावा है – एक तो एनायत अली और नियामतुल्लाह खॉ का घराना, दूसरा गुलाम अली खॉ का घराना।

नियामतुल्लाह खॉ बासत खॉ के शिष्य थे इनके घराने के शिष्य सरोद में महत्वपूर्ण बदलाव लाने का दावा भी करते हैं जैसे कि तात के तार की जगह धातु का तार तथा धातु का फिगरबोर्ड (तबली) लगाया था। नियामतुल्लाह खॉ के दोनो पुत्र करामतुल्लाह तथा असदउल्लाह जो कि कुकुभ खॉ के नाम से भी जाने जाते है, सरेद के उच्च्य कोटि के कलाकार थे।

सरोद के दूसरे दावेदार गुलाम अली है जो कि बन्दगी खॉ के पौत्र है (बन्देगी खॉ रीवा मे जाकर बसे) इन्होंने अपने पुत्र हैदर खॉ को तथा पौत्र गुलाम अली को रबाब की शिक्षा दी। रीवा के राजा विश्वनाथ सिंह ने गुलाम अली खॉ को ध्रुपद गायन की शिक्षा दी जिसके आधार इन्होंने इस वाद्य को गायकी की शैली प्रदान की तथा मीड आदि को सम्भव बनाया।

गुलाम अली के तीन पुत्र थे – हुसैन अली, मुराद अली और नन्हे खॉ। नन्हें खॉ के पुत्र थे हाफिज अली खॉ। इन्होंने रामपुर के उस्ताद वजीर खॉ (बीनकार) से भी शिक्षा पायी। हाफिज अली खॉ के पुत्र हैं अमजद अली खॉ जो कि आज शीर्षतम सरोदवादकों में हैं। मुराद अली निःसन्तान होने के कारण उन्होंने अब्दुल्लाह खॉ नामक यतीम बच्चे को शिष्य बनाकर तालीम दी जो कि बहुत अच्छे सरोदवादक हुए है। इन्ही अब्दुल्लाह खॉं के शिष्य थे अमीर खॉ जो कि राधिका मोहन मोइत्रा के गुरू थे और वर्तमान में पण्डित बुद्धदेव दासगुप्ता इनके प्रधान शिष्य हैं जो कि भारत के महानतम शीर्ष के सरोद वादकों में एक हैं। इनकी वादनशैली में इनके गुरू के वादन की खासियत और मीठापन झलकता है जो कि रबाबिया और बीनकार परम्परा का मिश्रण है तथा इन्होंने

अपनी प्रतिभा के बल पर उसे एक नया निखार दिया। राधिका मोहन मोइत्रा आमीर खॉ के शिष्य थे तथा दबीर खॉ बीनकार से भी शिक्षा प्राप्त की तथा अपनी एक खास शैली का निर्माण किया। इन्होंने सरोद की बनावट पर भी काफी प्रयोग किए।

इसी प्रकार सरोद को सेनिया घराने से जोडने पर हम पाते है कि 20वी शताब्दी मे उस्ताद वजीर खॉ जो कि तानसेन के वश के थे, उच्चकोटि के बीनकार तथा ध्रुपद गायक थे। इनके पास उस्ताद हाफिज़ अली खॉ ने शिक्षा प्राप्त की तथा पिछली पीढी के मुख्यतम सरोदवादक उस्ताद अलाउद्दीन खॉ साहब भी वजीर खॉ के शिष्य थे। इस प्रकार अलाउद्दीन खॉ ने सेनी घराने के समस्त चीजो को सरोदवादन में शामिल किया जिससे सरोद वादन मे ध्रुपद, ख़याल, बीन तथा रबाब की चीजो का सम्मिश्रण सरोदवादन शैली मे बडी खूबसूरती से किया जिससे सरोद वाद्य में मीड के काम से लेकर झाला तथा तेज तानो का वादन सम्भव हो गया। उस्ताद अलाउद्दीन खॉ ने अपने भाई आयत अली खॉ, जो कि एक संगीतज्ञ थे तथा वाद्ययन्त्र बनाने में भी निपुण थे उनकी सहायता से सरोद की बनावट मे काफी परिवर्तन किए – यथा, इन्होंने तुम्बे को अधिक गोलाकार तथा बडा किया, तरब के तारो मे 6 तार और जोडकर इनकी संख्या 15 कर दी, एक और चिकारी का तार जोडा तथा 4 और तार जोडे जिसे थाट के तार कहा जाने लगा क्योंकि यह राग के स्वरों के अनुसार मिलाये जाते थे। इसके अलावा एक अतिरिक्त जवारी बनवायी। इस प्रकार कुछ और परिवर्तन करके इसकी ध्वनि को बेहतर बनाया। इन परिवर्तनों से इसमें बीन की सूक्ष्म आलापचारी को सम्भव बनाया। पहले सरोद में तेज लय की तथा मध्य ताल में निबद्ध बन्दिशें बजती थी तथा आलाप के लिए सुरसिंगार का प्रयोग किया जाता था तथा गत–तोड़ा ही सरोद पर बजता था। यह परिवर्तित सरोद उत्तर भारत में काफी प्रचलित हुआ परन्तु 'पुराना सरोद भी कुछ मुख्य कलाकारों द्वारा बजाया जाता रहा जैसे बुद्धदेव दासगुप्ता, अमजद अली खाँ।

अमजद अली खॉ के सरोद में 6 मुख्य तार होते है तथा दो तार चिकारी के है तथा 11 से 13 तरब के तार तथा इनके सरोद का तुम्बा अण्डाकृति का होता है तथा सरोद का ढाचा थोडा छोटा होता है। यह अपने बॉए हाथ की तीन उगलियों का प्रयोग करते है तथा नाखून से बजाते है जबकि अलाउद्दीन खॉ तथा इनके घराने के शिष्य स्वरों को बॉए हाथ की उगली की सहायता से निकालते है। अमजद अली खॉ ने बहुत कम उम्र से ही अपार ख्याति अर्जित की है। इनके सरोद वादन की मिठास तथा इकहरी तान या सपाट तान मुख्य विशेषताऍ है। सरोद मे इस प्रकार की ताने बजाना बहुत मुश्किल काम है।

बुद्धदेव दासगुप्ता जी का सरोद अमजद अली खॉ के सरोद से थोडा भिन्न है। इनके सरोद का तुम्बा अधिक गोलाकार है तथा ८ मुख्य तार हैं तथा तरबों की सख्या 11 से 15 है।

डॉ० प्रकाश महाडिक ने 'भारतीय सगीत के तन्त्रीवाद्य' नामक पुस्तक मे लिखा है कि सरोद को दो शैलियों से बजाया जाता है – (1) रबाब अंग एव (2) सुरश्रृंगार अग।

1- सरोद में रबाब शैली :

इसके अन्तर्गत जो विषयवस्तु रबाब में बजती थी वही सरोद पर बजायी जाती थी। रबाब में आंस, छूट, गमक के साथ लडी, जोड और तारपरन ही मुख्य बजाए जाते थे। इन्ही सब अंगो को सरोद पर भी बजाया जाने लगा। साथ में गत तोडा वादन का भी समावेश कर लिया गया। इस प्रकार रबाब की मध्य लय की आलापचारी सरोद में बजाने की प्रथा प्रचलित होने के कारण इसे रबाब शैली कहा जाने लगा।

2- सरोद में सुरश्रृंगार अंगः

सुरश्रृंगार में विलम्बित आलाप होता था तथा झाला भी बजाया जाता था। सरोद में लोहे के तथा चिकारी के तार और तरबें लगाने के कारण तथा खोल

पर चमडा मढने के कारण उसकी गूज में अत्यधिक वृद्धि हो गई। इसलिए सुरसिगार में प्रचलित विलम्बित-आलाप, जोड झाला आदि बजाना प्रारम्भ हो गया। साथ ही गत, तोडा बजाने का भी प्रचलन हो गया। सरोद वादन की इसी शैली को सुरश्रृगार की शैली कहा जाने लगा। सरोदवादक बुद्धदेव दासगुप्ता का यह आग्रह था कि इसे सुरश्रृंगार शैली के स्थान पर वीणा (बीन) की शैली कहना अधिक उपयुक्त होगा।

रबाब/दिलरूबा :

यह वाद्य भारतीय शास्त्रीय संगीत में लगभग 14वी-15वी शताब्दियों से प्रयुक्त होता आया है और 16वी शती से 18वी शती तक सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य रूद्रवीणा के साथ रबाब भी लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर बना रहा। परन्तु 19वी शती के पूवार्द्ध मे सरोद और सितार के प्रचलित हो जाने के कारण रबाब और रूद्रवीणा की लोकप्रियता का ह्रास होने लगा।

कुछ विद्वानो के अनुसार रबाब मूल रूप से बाहर से आया परन्तु इसे भारतीय सगीत के अनुकूल रूप प्रदान करने में सेनियों का योगदान रहा। संस्कृत ग्रन्थो में 'संगीत पारिजात' (1560) मे इसका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। वर्तमान में इस वाद्य की परम्परा लुप्त हो चुकी है।

पण्डित लालमणि मिश्र ने रबाब का सम्बन्ध प्राचीन 'चित्रा वीणा' से स्थापित किया है। रबाब वाद्य अरब, उत्तर अफ्रीका, तुर्की, मोरोक्को आदि देशों में प्रचलित रहा। यह कही पर प्रहार से बजाया जाता था तो कही पर गज के घर्षण से। उत्तर अफ्रीका में प्रचलित रबाब को चमडे से मढ़ने की भी बात कही गई है। भारत में तानसेन के समय या उसके बाद प्रचलित रबाब में भी चमड़ा मढ़ा होता था। परन्तु सेनियों का रबाब भारतीय संगीत की विशेषताओं को व्यक्त करने वाला था और यह और यह जवा से बजाया जाता था। गज से बजने वाला रबाब सारगी के समान और जवा से बजने वाला रबाब लगभग सरोद के समान होता था।

इस वाद्य की बनावट तथा तारों में कई प्रकार की भिन्नता पायी जाती है। तानसेन के पुत्र के वंशज मुख्य रूप से रबाब बजाते थे तथा यह रबाबिए कहलाते थे और यह अपने वंश के बाहर किसी को यह विद्या नही देते थे। रबाब को भारत में परिष्कृत कर वीणा की श्रेणी का वाद्य बनाने का श्रेय सेनियो को है। इनके रबाब में परदे नही होते थे तथा यह जवा से बजाते थे। इसमे ६ तार होते थे जो कि जोर, म्यान, सुर, मन्द्र, घोर तथा खरज कहलाते थे। इसके तार तांत के होने के कारण इसमें विलम्बित मीड बजाना सम्भव नही हो पाता तथा चिकारी के तार न होने के कारण स्वर का भराव नही रह पाता। इसलिए इसकी वादन शैली विलम्बित मे न होकर मध्य लय में आलापचारी की है। वैसे चिकारी के तार का काम सुर के तार से ही लिया जाता है। राग के आलाप में आस, छूट, गमक आदि का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी 'छपक' का वादन किया जाता है जिसमें बॉए हाथ से तार पर बिना जवा की सहायता से हल्के-हल्के बजाते रहते हैं। कभी-कभी ताल की गति को दर्शाने के लिए 'मान्द' पर बजाने की प्रथा है। रबाब की वादन शैली मे लडी, जोड और तारपरन का अपना विशेष महत्व है। इसमें दो से ढाई सप्तक के स्वरों को बजाया जाता है।

सुप्रसिद्ध रबाब वादकों में छज्जू खॉ के पुत्र प्यार खॉ, जाफ़र खॉ तथा बासत खॉ है जो तानसेन के वंशज है। इनके उत्तरसूरी है सादिक़ अली खाँ, बहादुर सेन खॉ और अली मुहम्मद खॉ। बासत खॉ के दूसरे पुत्र मोहम्मद अली खॉ ही सेनिया घराने के आखिरी रबाबिए थे। इनके अलावा मैहर के अलाउद्दीन खॉ भी एक बेहतरीन रबाबिए रहे हैं।

सुरबहार :

18वी शती के प्रारम्भ में लगभग 1830 ई० में भारतीय संगीत के मानचित्र में सुरबहार नामक वाद्य का आगमन हुआ। यद्यपि यह देखने में सितार की तरह है परन्तु यह सितार से आकार में बडा है तथा विभिन्न मानदण्डों में यह सितार से अलग है।

कहा जाता है कि सेनिया घराने में बीन और रबाब की शिक्षा घर के बाहर किसी भी शिष्य को नही दी जाती थी। इस तरह से प्रतिभावान शिष्य बीन तथा रबाब की शिक्षा से वचित रह जाते थे। अतः इस समस्या का समाधान करने के लिए इस वाद्य का जन्म हुआ।

श्री सुललित सिंह के अनुसार – "एक बार की बात है कि गुलाम मुहम्मद ने बडे खेद के साथ कहा था कि उमराव खॉ जैसे महान बीनकार के शिष्य होते हुए भी उन्हे बीन की तालीम नही मिली। इसपर उमराव खॉ ने अपने शिष्य को आश्वासन दिया कि वे उन्हें बीन की तालीम अन्य किसी वाद्य मे देगे। इस घटनाके उपरान्त उन्होंने लखनऊ के दक्ष कारीगरो को बुलवाकर एक ऐसा वाद्ययन्त्र बनाने को कहा जिसका तुम्बा नीचे से चपटा तथा डंडी चौडी हो। इसमे सात तारों का सयोग था डंडी चौडी होने के कारण मीड का काम बडे सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करने मे भी सुविधा मिली और लम्बी मीड बजाने में भी सहायता मिलने लगी। उमराव खॉ ने इस वाद्ययन्त्र का नाम सुरबहार रखा।"

परन्तु एस०एम० टैगोर ने बॉदा के गुलाम मुहम्मद जो कि उमराव खॉ के शिष्य थे तथा सितार और सुरबहार के प्रसिद्ध कलाकार थे इन्हें सुरबहार का आविष्कर्ता माना है। इसी प्रकार डॉ० एस० परांजपे ने भी गुलाम मुहम्मद को सुरबहार का आविष्कारक माना है।

इस प्रकार सुरबहार के आविष्कर्ता के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार सुरबहार उत्तर मध्य कालीन कच्छपी वीणा का विकसित रूप है किन्तु मूलतः यह वाद्य बीन की वादनशैली को प्रस्तुत करने के निमित्त किया गया। इसलिए बहुत सी वादन तकनीक इस वाद्य में बीन (रूद्रवीणा) से ली गई है।

सुरबहार में मोटे तारों का प्रयोग होने के कारण तथा इसकी डांड चौड़ी होने से इसकी ध्वनि गम्भीर और मधुर होती है। डांड के चौड़ी होने के कारण तार को मीड़ बजाने के लिए काफी हद तक खीचा जा सकता है जिससे एक स्वर

पर सात स्वरों तक की मीड बजाया जा सकता है। इसमें ध्वनि की गूज तथा आस भी देर तक ठहरती है जिससे बीन अग का विस्तृत आलाप और विभिन्न प्रकार के गमक बजाये जाते है। बीसवी सदी के मध्य तक सितारवादकों को सुरबहार का भी ज्ञान होता था जिससे सुरबहार में ध्रुपद अग की विस्तृत आलापचारी प्रस्तुत किया जाता था। तत्पश्चात् सितार पर गत-तोडा बजाया जाता था। 1940-50 तक सितार मे बहुत से परिवर्तन हुए। पहले की तुलना में इसके आकार मे वृद्धि हुई। ताबे के मोटे तार लगाये गए जिससे इसमें ध्रुपद की विस्तृत आलापचारी सम्भव हुआ तथा आकर्षक tonal quality (ध्वनि) के कारण इसमें प्रचलित सगीत की सभी विधाओं को बजाना सम्भव हुआ। इस प्रकार सुरबहार की जरूरत कम होती गई और सितार का आधिपत्य बढता गया।

गुलाम मुहम्मद तथा सज्जाद मुहम्मद के अलावा सुरबहार वादको में शीर्ष स्थानीय नाम है – इमदाद खॉ, इनायत खॉ, विमल कान्त रायचौधरी, जितेन सेन तथा मुश्ताक अली खॉ जो कि एक उच्च कोटि के सुरबहार वादक थे तथा अपने वादन में परम्परा का निर्वहन करते थे। अन्नपूर्णा देवी भी सुरबहार वादन में निपुण हैं। रवीन्द्र भारती के श्री सन्तोष बैनर्जी एक सुरबहार वादक है जिन्होंने रामपुर के वजीर खॉ के पोते दबीर खॉ से शिक्षा प्राप्त की। अत. इनके वादन में आलाप, जोड, झाला में राग की शुद्धता को बरकरार रखते हुए वादन करते हैं।

इमरत खॉ सितार के साथ सुरबहार भी बजाते हैं परन्तु उन्होंने अपने सुरबहार वादन को ध्रुपद अग तक ही सीमित नही रखा बल्कि सितार के लगभग सभी चीज़ो (तकनीकों) को सुरबहार में बजाते है।

रूद्रवीणा वादक जिया मोइनुउद्दीन डागर के शिष्य पुष्पराज कोष्टि युवा पीढ़ी के एक उदीयमान कलाकार हैं। आजकल बुद्धादित्य मुखर्जी ने भी सुरबहार बजाना प्रारम्भ किया है।

सामान्यतया सुरबहार में भी वीणा की तरह दे मिज़राब पहन कर 'दा' बोल बजाया जाता है। इसके साथ मुख्यतः पखावज की संगति होती है।

कभी–कभी सगति में तबला भी बजाया जाता है तथा इसे पहले काले में या (G, Sharp) में मिलाया जाता है। इसमें ११ या १२ तरब के तार होते है तथा मुख्य ७ तार होते है जिसमें दो चिकारी के तार भी होते है। इस वाद्य को सितार वाद्य की तरह ही मिलाया जाता है। यह वाद्य आकार में काफी बडा एवं भारी होने के कारण इसमें तुम्बे के नीचे छोटा सा 'स्टैण्ड' (टेक) बना होता है। बजाते समय सुरबहार को इसमे टिकाया जाता है।

सुरबहार में लगे परदे सितार के परदों की अपेक्षा चपटे आकार के होते हैं। सुरबहार मे तरब के तारो के लिए तबली में ब्रिज के नीचे थोडा का कटा होता है जिसमें तरब के तारों को डालकर अन्दर से बॉधा जाता है। इसके तार सितार के तारों से अधिक मोटे होते हैं। सितार तथा सुरबहार के बनावट में यही मुख्य अन्तर होते है।

*** *** ***

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

घराना

(तन्त्रवाद्यों के विभिन्न घराने एवं उनकी उत्पत्ति)

घराना शब्द की उत्पत्ति सस्कृत के "गृह" और हिन्दी के "घर" शब्द के आधार पर हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है, या कह सकते हैं कि घराना एक सयुक्त परिवार का प्रतीक है जो कि उस परिवार विशेष की परम्पराओं को पीढी दर पीढी सुरक्षित रखता है।

संगीत में घराना शब्द का तात्पर्य किसी एक गुरू के अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करना और गुरू की शैली को आत्मसात् करना है। घराना गुरू के सन्तानों से, शिष्यों से बनता है अर्थात् जो अपने शिक्षक के समस्त तकनीको, खूबियों, छोटी-बडी हर विशेषताओं को सीखकर उस शैली को आगे बढ़ाता है। कहा जाता है कि घराना बनने में तीन पीढ़ियों का होना आवश्यक है।

हम यह कह सकते है कि घराना सगीत की एक विशिष्ट शैली होती है तथा प्रतिभावान कलाकारों द्वारा लम्बे समय तक सरक्षित रहता है तथा वह इसमें अपनी प्रतिभा एव शिक्षा-दीक्षा से इसमें कुछ खूबियों को जोडते भी जाते हैं। घराने ही परम्परा के पोषक है।

घरानों के आवश्यकता के विषय में हम कह सकते हैं कि चूकि संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका न आदि है और न तो अन्त। कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण संगीत पर अपना अधिकार नही कर सकता, इसलिए इसकी कुछ एक विशिष्टताओं को लेकर उनमें पारंगत होने की चेष्टा ने घरानाओं को जन्म दिया होगा।

घराना – सामान्य दर्शन :

"घराना" भारतीय सगीत की प्रमुख विशेषता है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय सगीत तथा घराना यह एक दूसरे के समानार्थक शब्द माने जाते है। ससार के अन्य किसी भी संगीत में घराने नही होते। यह विशेष संकल्पना केवल हिन्दुस्तानी सगीत में ही पायी जाती है। घराना प्रथा को यदि हम आज के शिक्षण के सन्दर्भ में तुलना करें तो हम कह सकते है कि यह उस विद्यालय का नाम है जिसमें विद्यार्थी 24 घण्टे अपने शिक्षक की देख-रेख में पनपता और प्रशिक्षित होता है।

घरानेदार शिक्षा पद्धति में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि जब तक विद्यार्थी अपने घराने की शैली को आत्मसात नही कर लेता था तब तक उसे किसी दूसरे घराने की शैली को सुनने का अवसर नही दिया जाता था। ऐसा माना जाता था कि शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर के नाजुक दौर मे किसी दूसरी शैली को सुनने से विद्यार्थी की नीव कमजोर हो जाएगी परन्तु अब परिस्थितियॉ भिन्न हैं - रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकॉर्ड के ज़रिए किसी भी समय कोई भी संगीत सुना जा सकता है। इसी कारण आजकल कलाकार एक ही घराने में सीमित न रहकर दूसरे घराने की चीजों को भी अपनी शैली में जोड लेता है।

सगीत अपरिहार्य है इस शाश्वत संगीत तक पहुँचने के लिए विभिन्न घराने अलग-अलग रास्तों का काम करते है। इस प्रकार एक व्यक्ति अपनी रूचि तथा सीमितताओं के अनुसार घरानों के रूप में किसी एक मार्ग को अपनाता है। संगीत की किसी एक शैली विशेष पर किसी एक घराने का अधिकार हो जाता है। कोई प्रतिभावान कलाकार किसी अंग विशेष को ऐसे अधिकार में कर लेता है कि अन्य अंगो की अपेक्षा वही विशेष अंग उसकी कला में चमकता रहता है। यही गुण वह अपने सुपात्र शिष्यों को सिखाता है और चाहता है कि शिष्य इसी विशेष शैली की प्रतिमूर्ति बनें। श्रद्धालु और ईमानदार शिष्य अपने गुरू की परम्परा को आगे बढ़ाता है तथा शाखा-प्रशाखाओं में उस विद्या का विस्तार करता है। किसी

विशेष घराने के वशज या शिष्य को सुनते ही उनके घराने का आभास हो जाता है। इस प्रकार हर घराने में उस घराने की कुछ खास तरीके तथा तकनीक होती है जिनका कि घराने के सभी गायक-वादक अनुसरण करते है, परन्तु घराने की विशेषता केवल उसकी तकनीकों तक ही सीमित नही होती। संगीत में निहित भाव, रस तथा उसकी बारीकियों को व्यक्त करने के लिए प्रत्येक घराने ने रियाज को अत्यधिक महत्व दिया है।

घराना एक विशिष्ट गायन-वादन या नृत्य शैली का सूचक होता है। यह शैली या रीति जिस कलाकार के द्वारा प्रवर्तित होती है वे ही उसके सस्थापक माने जाते है और उन्ही के नाम से या निवास स्थान से घराने का नामकरण होता है और घराने के सूत्रपात तब होता है जब घराने की शैली में कोई विलक्षणता हो या कोई अनोखा तत्व हो शैली का नयापन घराने का विशिष्ट लक्षण होता है।

जिस प्रकार समाज में कुछ नियम होते हैं जो कि विद्वत्जनो द्वारा सोच-समझकर, परख कर तय किए जाते है जिसका पालन करना हर एक व्यक्ति का कर्तव्य होता है, उसी प्रकार सगीत में घरानों के सन्दर्भ मे भी हर घराने में उस घराना विशेष के कुछ बंधे हुए नियम होते हैं जिनका पालन करना प्रत्येक कलाकार के लिए अनिवार्य होता है। यह घराना स्थिर तब होता है जब इस शैली का अनुसरण करने वाला कम से कम तीन पीढी तक शिष्य समुदाय हो।

घराना, परम्परा तथा व्यक्तिगत योगदान से बनता है घराने के कलाकारों का उनकी आवाज के अनुसार "स्केल" दिया जाता है, जैसे जिनकी आवाज नीचे जाने वाली तथा खनकदार होती है उनके लिए पहला काला या E-flat निश्चित् किया जाता है। इस प्रकार आवाज की प्रकृति को परख कर शिक्षा दी जाती है।

परम्परा, घराना तथा शैली - यह तीन सीढियां और तीन विश्राम स्थल हैं। यदि हम परम्परा को छोड़ दें तो घराने स्वतः ही टूट जाएंगे। ऐसी स्थिति में हमें व्यावहारिक संगीत की शैली के नियमों और सिद्धान्तों का कोई भी ज्ञान नही हो

सकता। शैली व्यावहारिक सगीत की देन है तथा व्यावहारिक सगीत घरानों की देन है।

शैली से किसी घराने के सगीत के स्वभाव, उसके चरित्र, उसकी मर्यादा और उसके कलात्मक स्तर का पता चलता है। शैली घराने के संगीत की व्याख्या है।

"घराना क्या है?" इस विषय पर चर्चा करते हुए श्री विमल कान्त रायचौधरी ने अपनी पुस्तक "भारतीय सगीत कोष" में लिखा है –

> "घर शब्द का अर्थ है वश और घराना शब्द का अर्थ वंश वैशिष्ट्य कहना भूल न होगा। सगीतज्ञ द्वारा अपनी प्रतिभा के बल पर नवीन पद्धति का प्रयोग और उसी पद्धति का उनके शिष्यो द्वारा प्रचार से एक घराना बनता है। घराना शब्द का व्यावहारिक अर्थ है – रीति, पद्धति या (Style) शैली। ध्रुपद आदि राग संगीत की उत्पत्ति से लेकर अब तक का सगीत विभिन्न घरानों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के उत्कर्ष को प्राप्त हुआ और इसी विभिन्नता के कारण ही सगीत का व्यापकत्व काफी प्रमाण में बढा है।"

चतुरभाई पटेल के अनुसार, "कलाओं में जब परिपक्वता आती है तब वही परिपक्वता विशिष्ट शैलियों को जन्म देती है। भारतीय संगीत में ऐसी शैलियों ने घराना का रूप प्राप्त किया।"

वामनराव जी ने घरानों की व्युत्पत्ति के विषय में कहा है, "परम्परा का अपनी पृथक सत्ता के सम्मिश्रण से ही घराने जड पकड़ते और पनपते हैं।"

स्वर, ताल और बन्दिश, इन मूलभूत संकल्पना के द्वारा राग का एक विशाल सौन्दर्य स्वरूप रसिकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का हर एक प्रतिभावान कलाकार की आन्तरिक इच्छा होती है। परन्तु इन आनन्दमय सौन्दर्य स्वरूप को

प्राप्त करने के हर कलाकार के मार्ग भिन्न होते हैं। ये भिन्न-भिन्न मार्ग ही घराने कहलाते है। भिन्न-भिन्न घरानों की विशेषता निम्न बातों पर आधारित हैं .-

०१. बन्दिश

०२. सुर लगाने का तरीका

०३. राग विस्तार या आलापचारी

०४. तानो में विविधता

०५. ताल और लयकारी

०६. रागों की पसन्दगी

उपरोक्त अगो का विस्तार भिन्न-भिन्न घरानो मे भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है और वही घराने की विशेषता होती है।

प्रो० अशोक रानाडे जी के अनुसार, "वर्तमान के सभी घरानो का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है

१. विस्तारवादी

२. तीव्रकरण वादी"

विस्तारवादी :

इसके अन्तर्गत कलाकार राग विस्तार सीढियों के ढंग से अर्थात् एक-एक स्वर ऊपर चढ़ते हुए क्रम से करते है।

तीव्रकरणवादी :

इन घरानों के कलाकार राग विस्तार करते समय एक-एक स्वर पर दीर्घ काल तक ठहरकर उस स्वर को अनेक छोटे-बड़े स्वर समूहों में सजाकर 'तार सं' तक पहुँचते हैं।

प्रो० रानाडे के अनुसार ग्वालियर और जयपुर विस्तारवादी घराने है। किराना तथा आगरा तीव्रकरणवादी घराने है। श्री वामनराव देशपांडे जी ने 'घरानेदार गायकी' नामक पुस्तक में घरानों का विभाजन एक बिल्कुल भिन्न तत्व के आधार पर किया है। उनकी दृष्टि से स्वर तथा लय, दो ध्रुव माने जाते है। उन दोनों बिन्दुओं को जोडने वाली सरल रेखा निकाली जा सकती है। इस रेखा के मध्यबिन्दु से लयबिन्दु की ओर झुकने वाले घराने लयप्रधान कहे जा सकते हैं तथा स्वर बिन्दु की ओर झुकने वाले घराने स्वरप्रधान घराने कहे जा सकते है।

यदि हम इस बात पर विचार करे कि क्या कारण है कि घराना प्रथा किसी और कलाओ मे नही परन्तु सगीत मे ही लागू होता है, यहॉ तक कि संगीत की सभी विधाओ मे भी घराना नही होता, केवल शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में ही घराने की प्रथा है। जैसे भावगीत, ठुमरी, लावनी आदि संगीत विधाओं के भी घराने नही होते जबकि ठुमरी विभिन्न घरानों के गायकों द्वारा गायी जाती है पर ठुमरी का अपना कोई घराना नही है। ठुमरी की बाज या शैली (Style) पायी जाती है, जैसे – पूरब बाज, बनारसी बाज आदि। यदि सिर्फ गायन के क्षेत्र में देखा जाए तो ख्याल शैली में ही घराने होते हैं। इसका कारण है कि शास्त्रीय संगीत में गुरू-शिष्य परम्परा चली आ रही है। केवल संगीत के ही क्षेत्र में गुरू-शिष्य परम्परा के चलने का कारण है कि शास्त्रीय-सगीत का आधार है स्वर और गायन में सांगीतिक ध्वनि एव बोल-चाल की ध्वनि में अन्तर होता है; और इसी ध्वनि को सगीतोपयोगी बनाने का काम गुरू का होता है जो कि अपनी शिक्षण और धैर्य से वर्षो के परिश्रम से इस ध्वनि को संगीतोपयोगी बनाता है और इसी को तालीम कहा जाता है। इसी प्रकार घरानों में पीढ़ी दर पीढी तालीम दी जाती है। हर मनुष्य के गले की आवाज अलग-अलग होती है। किसी एक प्रकार की आवाज वाले व्यक्ति के लिए उसके आवाज की विशेषताओं वाली गायन शैली किसी भिन्न प्रकृति के आवाज के व्यक्ति को सिखाना एक कठिन काम है। एकमात्र संगीत ही एक ऐसा विषय है जिसमें इतने लम्बे समय तक शिष्य को गुरू के सान्निध्य की आवश्यकता होती है। हर घराने में उस घराने की

विशिष्टताओं के अनुसार आवाज को ढाला जाता है। तत्पश्चात् परिश्रम एव अभ्यास से बाकी कमियों को पूरा किया जाता है। इसलिए सगीत में घरानेदार शिक्षा इन्ही सब विशेष कारणों से घराना शिक्षण पद्धति सदियों से सफलतापूर्वक चली आ रही है। कुछ घरानों मे अपने कुछ विशेष नियम-कायदे एक समान ही होते है। सभी घरानों में मूलभूत कुछ ऐसे नियम है जो सभी कलाकारो को मानना ही पडता है।

या यूॅ कह सकते है कि संगीत की विभिन्न शैलियों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने के पीछे किसी एक व्यक्ति का हाथ नही बल्कि सदियों से चली आ रही बदलती, परिमार्जित होती हुई सगीत की धारा ही उत्तरदायी है। अत· किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा या अनिच्छा के अनुसार ये नियम नही बदल सकती। परन्तु जब कोई प्रतिभावान कलाकार अपनी सूझ-बूझ के अनुसार गायन की शैलियों को अपनाता है जिससे कि उसकी शैली एवं प्रकृति श्रोताओं को आकर्षक लगने लगती है तब इसी धारा का कुछ और गायक अनुसरण करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न शैलियों के अनुरूप विभिन्न घराने बनते हैं। उन घरानों का प्रत्येक कलाकार उसी विशेष शैली का अनुकरण करता है। परन्तु यह ध्यान रखना है कि प्रत्येक व्यक्ति की आवाज की प्रकृति अलग होती है। वह अपने शिक्षक की सभी खूबियों को अपनी आवाज में नही उतार सकता। वह अपनी आवाज के अनुकूल चीजों को अपना लेता है और यदि वह विभिन्न प्रकार की संगीत में अपने आप को उन्मुक्त रखता है तो हो सकता है कि वह अपने घराने से भिन्न किसी दूसरे घराने की शैली से या किसी दूसरी विधा जैसे कव्वाली या ठुमरी से प्रभावित होकर उसकी खूबियों को भी अपने शैली में ला सकता है। घरानों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि कुछ घरानों से प्रतिभावान कलाकारों ने अपने घराने की विशेषताओं को बरकरार रखते हुए घराने के बाहर से भी संगीत की खूबियों को अपने घराने की शैली के अनुकूल बनाकर अधिक ख्याति अर्जित की और अपने घराने को और अधिक समृद्ध बनाया।

घराना – उत्पत्ति :

20वी सदी के आरम्भ के समय तक सगीत मे ध्रुपद की परम्परा कायम थी। तत्पश्चात् इसका स्थान ख्याल शैली ने ले लिया और इसी समय घराना प्रथा प्रारम्भ हुई। अपने विशुद्ध और उच्च सगीत के कारण घराना प्रथा इस समय 'टकसाली संगीत' के नाम से भी जाना जाने लगा। संगीत के व्यावहारिक स्तर को घरानों की कसौटी में कसा जाने लगा। प्रो० राधिकामोहन मोइत्रा के अनुसार, "विभिन्न घरानों के द्वारा सगीत का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया था। विभिन्न घराने ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, तराना आदि विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत करते है जिससे श्रोताओ में विभिन्न प्रकार के सगीत विधाओ के प्रति रूचि उत्पन्न होती है।"

घराना शब्द का प्रयोग दूसरे ललित कलाओ जैसे चित्रकला, साहित्य, मूर्तिकला आदि में नही होता। यह विशेषता केवल हिन्दुस्तानी संगीत मे ही विद्यमान है।

घराना प्रथा प्राचीन काल से ही दूसरे नामों से कई क्षेत्रों में तथा संगीत में विद्यमान है। संगीत में सहिता, शाखा, नारदीय शिक्षा, गुरू-शिष्य परम्परा सम्प्रदाय, मत, गीति तथा वाणी आदि, ये विभिन्न परम्पराये शुरू से ही विद्यमान है जो कि एक प्रकार से घरानों का ही दूसरा रूप है।

वैदिक गान को प्राचीनतम संगीत माना गया है। इसे गाने में कई नियमों का कठोरता से पालन किया जाता है। जैसे किन्ही अक्षरों पर विशेष जोर देकर उच्चारण किया जाता है तो कही लम्बे समय तक रूका जाता है तो कही यह अन्तराल कम होता है। काकु पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इन्हें यज्ञों के अवसर पर गाने के लिए विशेष पुरोहित होते थे जो उक्त नियमों का पालन करते हुए विधिवत् रूप से मंत्रों का उच्चारण करते थे। इसी विधि को आधार मानते हुए कई शाखाओं का विकास हुआ जिन्हें संहिता कहा जाने लगा।

600-500ई० पूर्व काल में हमें गायन, नृत्य तथा नाट्य के शैलियॉ (School) मिलती है, जिन्हें सम्प्रदाय कहा जाता था, इस सम्बन्ध में निम्न उल्लेख हमें प्राप्त होता है जिसका स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होता ·

१ शिव मत या भरत मत

२ गान्धर्व नारद

३ भरत

४. नान्दिकेश्वर

कुछ विद्वानों के मतानुसार केवल तीन प्रकार की शैलियां ही थी :

१. भरत का नाट्यशास्त्र

२ नारदीय गन्धर्व सम्प्रदाय

३. नान्दिकेश्वर सम्प्रदाय

मतग के बृहद्देशी मे उन्होने महर्षि भरत को उधृत (Quote) करते हुए उन्होंने भी सगीत के चार धारा बताये है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय संगीत में चार मत प्रचलित थे और इस बात की पुष्टि भी होती है। नान्दिकेश्वर ने सर्वप्रथम मूर्छना में बारह स्वरों का परिचय कराया। आचार्य मूर्छना को एक गोपनीय विधा स्वरूप अपने तक सीमित रखते थे जिसे वह अपने विशेष शिष्यों को उनके प्रतिभा और लगन को परखकर अपने सन्तान तथा शिष्यों में भेद-भाव किए बिना इस संरक्षित विद्या को दान करते थे; और यही से गुरू-शिष्य परम्परा का प्रारम्भ होता है।

15वी शताब्दी के उत्तरार्ध में कल्लीनाथ ने सम्प्रदायों के बारे में ग्राम, जाति और मूर्छनाओं के बारे में चर्चा करते हुए सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग किया है। सम्प्रदाय शब्द “विचारों की शैली” अर्थ का द्योतक है।

कालान्तर में सम्प्रदाय से विभिन्न मत और शैलियों का विकास हुआ, जो कि अपने प्रवर्तकों के नाम से प्रसिद्ध हुए, जैसे :-

१. शिवमत

२. कृष्णमत

३. हनुमन्तमत

४. भरतमत

५. कल्लीनाथमत

16वी शताब्दी में पण्डित दामोदर ने सगीत में विभिन्न मतों के बारे में भी लिखा जो कि उनके समय में प्रचलित थे। इसके अगले चरण में विकास के क्रम में नाट्यशास्त्र में गीतियों का उल्लेख मिलता है। 'बृहद्देशी' (6ठी शताब्दी) मे हमें प्रबन्धों के बारे में थोडी-बहुत जानकारी मिलती है, परन्तु 'मानसोल्लास' (12वी शती), 'संगीत समय सार' (12वी शती उत्तरार्ध) तथा 'संगीत रत्नाकर' (13वी शती) में हम देखते है कि प्रबन्धों के बारे में तो विस्तृत चर्चा हुई है लेकिन ध्रुवा (गीति) के बारे में कोई उल्लेख नही मिलता है। इस समय तक प्रबन्ध काफी लोकप्रिय हो गये थे परन्तु 'ध्रुवा' विलुप्त हो गये थे। 15वी शताब्दी के आते-आते प्रबन्धों का काफी प्रचार-प्रसार हो चुका था और प्रबन्धक को सरलीकृत करके एक नई शैली का आविष्कार हुआ जिसे ध्रुपद कहा जाने लगा। ध्रुपद की चार वाणियाँ बनी :-

१. गौहारी वाणी

२. डागर वाणी

३. नौहार वाणी

४. शुद्ध वाणी

इन चार वाणियों के उत्पत्ति चार स्वराश्रित गीतिओं से मानी गयी है। ऐसा माना जाता है कि साधारणी गीति से शुद्ध वाणी की उत्पत्ति हुई।

गौहार वाणी को राजा की संज्ञा मिली है। डागुर वाणी को मन्त्री पद प्राप्त हुआ। खण्डार वाणी को सेनापति की संज्ञा मिली और नौहार वाणी को सेवक

का स्थान दिया गया है एव अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक वाणी की एक विशिष्ट महत्ता है।

श्री भगवत्शरण शर्मा के अनुसार सगीत मे घरानों की नीव आठवी से बारहवी शताब्दी के बीच राजपूत काल में पड चुकी थी। अपनी बात के समर्थन मे वे लिखते है :-

> "राजपूत काल में (8वी से 12वी शताब्दी) सगीतकारों को राजदरबार में आश्रय मिला करता था। अतः इस युग का संगीत अधिकतर राजाश्रय में ही उन्नति कर सका। इस काल के कलाकार अपने संगीत ज्ञान को इतना छिपाकर रखते थे कि वे किसी अन्य जाति वालों को तो क्या अपनी ही जाति वालो तक को बताने में सकोच करते थे। यह सकीर्णता यहाँ तक बढ़ी कि वे सगीत के ग्रन्थ तक भी नही लिखते थे उनका सगीत पीढी दर पीढी चलता था। यदि वे निःसंतान होते तो उनका सगीत भी उन्ही के साथ समाप्त हो जाता था। इस तरह के सकीर्ण मानोवृत्ति के फलस्वरूप सगीत के क्षेत्र में घरानो की नीव पडी जिसकी परिपाटी ने सगीत के विकास को अवरूद्ध कर दिया।"[1]

राजपूत युग में अर्थात 12वी शताब्दी के पूर्व घरानों के प्रारम्भ की पृष्ठभूमि भले ही तैयार हुई हो किन्तु आधुनिक घरानो का पूर्णतः विकास तो अंग्रेजों के युग में हुआ है। पं० विष्णु नारायण भातखण्डे अपनी पुस्तक 'भातखण्डे संगीत शास्त्र' में लिखते है कि 'संगीत में घरानों का उल्लेख हकीम मुहम्मद करम इमाम की पुस्तक मऊदन्-उल-मूसिकी' में मिलता है जो सन् 1857 के आसपास लिखी गयी थी।

---

[1] भारतीय संगीत का इतिहास - श्री भगवत शरण शर्मा, पृष्ठ 51, 52

श्री ललित किशोर सिह ने 'ध्वनि और सगीत' में लिखा है, "तानसेन के बेटे बिलास खॉ से प्रसिद्ध रबाबियों का घराना चला और उनके छोटे बेटे सूरतसेन से सितारियों का। यह सेनिया घराने के नाम से प्रसिद्ध है।"[1]

घराने के उद्‌भव के पूर्व और पश्चात् सामाजिक दृष्टि से सांगीतिक परिस्थिति :

भारत पर मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व सम्पूर्ण देश मे एक ही संगीत प्रणाली प्रचलित थी जिसकी पुष्टि निम्न कथन से होती है। डॉ० आबान मिस्त्री के शोध प्रबन्ध 'पखावज एवं तबला के घराने एव परम्पराएँ' से प्राप्त होता है कि सगीत के विषय में उत्तरीय तथा दक्षिणात्य जैसे भेदक शब्दों का प्रयोग 'सगीत रत्नाकर' में कही गयी है। अतः सिद्ध है कि न तो हिन्दुस्तानी संगीत का जन्म शारगदेव से पूर्व हुआ न ही 'संगीत रत्नाकर' में उत्तर और दक्षिण के संगीत का समन्वय है।[2]

मुसलमानों के आक्रमण और शासन के पश्चात् शुद्ध रूप से हिन्दू कहलाने वाली सभी भारतीय कलाओं पर यवन संस्कृति का प्रभाव पडना आरम्भ हो गया। स्वाभाविक है कि विभिन्न जातियों का आपसी सम्पर्क परस्पर प्रभावित करता है तथा एक-दूसरे को अपने गुण, संस्कार एवं कला से आकर्षित करता है। फिर वह तो शासक वर्ग या अन्ततः उनका प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र मे विशेष रूप से देखने को मिलना स्वाभाविक ही है।

8वी शती से हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का (अरब) आक्रमण प्रारम्भ हो गया था।[3]

'मुसलमान एवं भारतीय संगीत' नामक अपनी पुस्तक में आचार्य बृहस्पति लिखते हैं कि – 13वी शती के प्रारम्भिक काल में भारत पर मुहम्मद ग़ोरी ने

---

[1] ध्वनि और सगीत – श्री ललित किशोर सिह, पृष्ठ–28
[2] सगीत शास्त्र और आधुनिक सगीतज्ञ, पृष्ठ–4 . आचार्य वृहस्पति
[3] मुसलमान और भारतीय सगीत : आचार्य वृहस्पति, पृष्ठ–21

प्रथम मुस्लिम शासन स्थापित किया। इस बीच भारत में सूफी सन्तों का आगमन शुरू हो गया था। सूफी सन्तों ने उनके विचाराधाराओं ने तथा चिश्ती परम्परा ने भारत के दीन हीन दलित और उपेक्षित हिन्दु समाज पर अपना प्रभाव रख छोडा था। सूफी लोग सगीत के महान प्रेमी थे। अतः भारतीय सगीत पर ईरानी सगीत का प्रभाव 13वी शती के आरम्भ से ही दृढ रूप से फैलता गया।

इसी सन्दर्भ में बी० चैतन्यदेव ने "Musical Instruments of India" नामक पुस्तक में लिखा है :-

> "From the last days of Ghaznavi to the coming of Mohd Ghori in 1191 AD, the main influence of Islam was in Punjab But, by the 13th Century almost the whole of the subcontinent was affected more or less by the culture of new Muslim rulers Literature, Architecture, Music and Social life in all venues felt this dominance, and very novel trends of positive absorption and militant reaction came to be felt "

मुसलमान शासन के प्रारम्भ से ही संगीत की बागडोर मुसलमान कलाकारों के हाथ में चली गयी। आचार्य वृहस्पति लिखते है, "मुसलमान शासकों के दरबार में भी परिस्थिति ऐसी न थी कि विशुद्ध भारतीय भावनाएँ तथा भारतीय कला उभर सके।"[1]

'आइन-ए-अक़बरी' के लेखक अबुल फजल के मतानुसार, मुस्लिम शासकों ने मुख्यतः अपने ही सहधर्मियों को दरबार में सगीतज्ञों के पद पर नियुक्त किया था। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों पर मनमाने अत्याचार किए। इन ग्रन्थों को समझने में वे अधिकतर असफल ही रहे। अकबर जैसे उदार सम्राट के दरबार में भी अधिकांश संगीतज्ञ मुसलमान ही थे।

---

[1] मुसलमान एवं भारतीय संगीत : आचार्य वृहस्पति, पृष्ठ-11

इसका कारण यह भी हो सकता है कि कुछ हिन्दु कलाकारों ने तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाने हेतु धर्म परिवर्तन कर लिया हो।

इस सन्दर्भ में वामनराव देशपाडे लिखते है .-

"The Art which migrated to the north under the Moghuls did ofcourse prosper and develop various 'Banis' and 'Gharanas ' But employed as it was for the mere entertainment of the Kings and Emperors, it fell into the hands of performers, who although otherwise gifted, were mostly illiterate and indifferent to its science Besides, the science itself was contained in old Sanskrit texts which the performers, who were mostly Muslims, did not know The result was that the science ceased to have any significant relation which the art as it was being practised "[1]

यद्यपि यवन सस्कृति के शृगारिक प्रभाव के सम्मिलन से हमारे भारतीय संगीत के मूल रूप में बहुत अन्तर पड़ गया था, तथापि कुछ विद्वानों का ऐसा मन्तव्य भी मिलता है कि ऐसा होने से उसमे माधुर्य और आकर्षण का सामर्थ्य बढ़ गया था। इसके समर्थन में प्रसिद्ध विद्वान वण्डारे प्रमदा के अनुसार "The New Outlook of Indian Culture" के पृष्ठ–20 पर संग्रहीत 'श्री वण्डारे के विचार' प्रस्तुत करते हुए श्री उमेश जोशी 'भारतीय संगीत का इतिहास' में लिखते हैं :-

"यह हमें मानना पडेगा कि मुग़ल युग में मुस्लिम संस्कृति से मिलकर भारतीय संगीत का सौन्दर्य समृद्धिशाली होकर उसमें एक ऐसी मन्त्रमुग्धता आ गयी कि जिससे उसमें आकर्षण शक्ति की अभिवृद्धि हो गयी। दक्षिण भारत का सगीत इस अपूर्व लावण्य से वंचित रहा।"[2]

---

[1] Maharashtra's Contribution to Music - V H Deshpande
[2] भारतीय संगीत का इतिहास - उमेश जोशी, पृष्ठ–237

इस विचार की पुष्टि करते हुए श्री भगवत्शरण शर्मा लिखते हैं कि :-

> "अलाउद्दीन खिलजी के काल में (सन् 1296 से सन् 1320ई०) यवन सस्कृति के सम्मिश्रण के कारण भारतीय सगीत में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था जो अकबर युग तक चरमोत्कर्ष तक पहुॅच गया। अकबर के दरबार के सगीतज्ञ भारतीय ध्रुपद शैली की रक्षा करते थे, साथ ही रागों में ईरानी सगीत का सम्मिश्रण भी उनकी गायकी में दिखायी देता था जिससे सगीत का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया - ऐसी मान्यता है।"[1]

उस युग के सगीत में श्रृगारप्रियता और विलासिता की मात्रा अधिक देखने को मिलती है। उन दिनों सगीत मे सात्विकता एव भक्ति के स्थान पर मनोरंजन और अर्थोपार्जन की भावना धीरे-धीरे बढ रही थी तथा संगीत आम जनता से विमुख होकर राजदरबारों की शोभा मात्र बनने लगा था।

मुगल युग में कुछ व्यवसायी कलाकारों के ऐसे समुदाय अस्तित्व में आये जिन्होंने अपने कलात्मक 'प्रस्तुतीकरण' में कुछ अपनापन तथा कल्पना सौन्दर्य की कुछ विशिष्ट शैली का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। प्रत्येक समुदाय के प्रमुख कलाकार के प्रस्तुतिकरण में अपना निजी योगदान होता था, इस तरह घराने तथा घरानेदार कलाकार अस्तित्व में आये।

अकबर युग में जिस तरह ध्रुपद की चार वाणियॉ प्रसिद्ध थी उसी तरह इन्ही व्यवसायी कलाकारों के कारण मुगल बादशाह मोहम्मद शाह रगीले के पश्चात् तबला, पखावज तथा ख्याल गायकी के घरानों की नीव पड़ने लगी जो मुग़ल युग के बाद अधिक समृद्ध एवं विस्तृत हुई। इस तरह पिछले ढाई सौ वर्षो में अर्थात् 18वी शताब्दी के बाद आधुनिक घराने प्रचार में आए। मुग़ल युग के अन्तिम चरण में मुगल साम्राज्य अत्यन्त दुर्बल हो गया था किन्तु ऐसी विपरीत

---

[1] भारतीय संगीत का इतिहास - श्री भगवत्शरण शर्मा

परिस्थिति मे भी अन्तिम मुगल बादशाह ने अपनी शान-शौकत और संगीतप्रियता को बनाए रखा था। अतः घरानेदार कलाकारों को बराबर राज्याश्रय मिलता रहा। इस समय की तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति का प्रभाव सगीत पर भी देखने को मिलता है। जिसके फलस्वरूप ध्रुपद-धमार के स्थान पर ख्याल एव ठुमरी राजदरबारों मे व्याप्त हो गयी थी। उन कलाकारों के समुदाय में कुछ लोग ऐसे रूढीवादी थे जिन्होंने अपनी कला को अपरिवर्तित रखा। किन्तु कुछ लोग अपने आप पर संयम नही रख सके और वे उसी प्रवाह में बह गये।

मुगल और मराठा साम्राज्य के पतन के पश्चात् अंग्रजों ने भारत पर अपना आधिपत्य जमाया। हम गुलाम हुए। ऐसी परिस्थिति में कला का विकास सम्भव नही था। अतः संगीत कला जनसाधारण से दूर मुजरे तक ही सीमित रह गयी। इस विधान की पुष्टि करते हुए श्री वामनराव देशपांडे लिखते हैं -

"With the fall of the Mughals and Marathas, music lost its royal patronage and with it all the glamour and respectability attached to it The British rulers were completely indifferent to it Even the limited patronage and recognition which they gave to sister arts, was denied to music The art of music thus found itself mainly in the hands of the class of singing girls who specialçed in amorous or erotic styles such as Thumri, Ghazal and the public looked down upon musicians as belonging to a lower social order "[1]

ऐसी स्त्रियों की संतति अधिकतर संगीत का व्यवसाय ही करती थी। अतः समाज में जो संगीतकार पैदा हुए, कला की दृष्टि से वह चाहे उच्च कोटि के ही क्यों न रहे हों, समाज में अपना स्थान और मान नही प्राप्त कर सके। इसके कई कारण थे जिनमें मुख्य कारण यह था कि वे उच्च कोटि के कलाकार होते हुए भी अन्य दृष्टि से कुछ विभिन्न संस्कार वाले तथा अशिक्षित थे। इनमें से बहुतों में संकीर्णता और स्वार्थपरता व्याप्त कर गयी थी। कुछ लोग तो ऐसा

---

[1] Indian Musical Tradition - V H Deshpande, Page-6

मानने लगे थे कि कला को जितना छिपा कर रखा जाएगा उतना ही उनका सम्मान बढेगा। फलतः मुगल सल्तनत के अस्ताचल से पूर्व ही हमारा संगीत सामाजिक रूप से प्रतिष्ठा खो बैठा था।

"Music of Southern India" में श्री कैप्टेन डे ने इस विषय पर अपना विचार व्यक्त किया है जिसे भारतीय सगीत के इतिहास में श्री उमेश जोशी ने इस प्रकार लिखा है -

> "इस युग में संगीत इतना पतनोन्मुख हो गया था कि यह तो सचमुच आश्चर्यजनक है कि इसका अस्तित्व आज तक बना रहा।"

मध्य युग में संगीत शिक्षा प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। घरानेदार कलाकारों को अपने घराने की विद्या पर बहुत गर्व था। वे अपने घराने के अतिरिक्त दूसरे घराने की विद्या सीखना तो क्या, सुनना भी नही चाहते थे। किसी को सगीत सीखना हो तो वर्षो उस्ताद के घर रहकर उनकी सेवा करनी पडती थी तब जाकर उनको संगीत का ज्ञान प्राप्त होता था जो कि पूरी तरह गुरू की इच्छा पर निर्भर करता था।

भातखण्डे सगीत शास्त्र के चौथे भाग के प्राक्कथन में श्री प्रभुलाल गर्ग लिखते हैं, "भातखण्डे के जीवन काल तक संगीत संजीवनी बूटी की तरह था अर्थात् उसे प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी वर्ग को द्रव्य के साथ जीवन का मूल्य भी चुकाना पडता था और तब कही जाकर वह एक साधारण कलाकार कहलाने के योग्य बनता था। असाधारण इसलिए नही बनाया जाता था कि घरानेदार बर्खुरदारों के पिछडने का भय बना रहता था। अतः कला अपनों के लिए थी, परायों के लिए नही।[1]

इसके पीछे संकुचित मनोवृत्ति के साथ दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि अधिकांश गुरू अनपढ़ थे और अपने शिष्यों को मौखिक शिक्षा देते थे। एक

[1] भातखण्डे सगीतशास्त्र : भाग-4, पृष्ठ 3 - लेखक . प्रभुलाल गर्ग

अन्य कारण यह भी था कि वे जब तक अपने शिष्य की योग्यता से सन्तुष्ट नही होते थे, विद्या नही देते थे। अतः वे अपने शिष्यों की कठोर परीक्षा लिया करते थे।

श्री भगवत शरण शर्मा लिखते है कि "अशिक्षित कलाकारों की सकीर्ण मनोवृत्ति के फलस्वरूप संगीत के क्षेत्र मे घरानों की नीव पड गयी, जिसकी परिपाटी ने संगीत के विकास को अवरूद्ध कर दिया और उसके सार्वभौम, सनातन सिद्धान्तों को गहरी क्षति पहुँची।" डॉ० आबान मिस्त्री के अनुसार इस बात पर केवल कलाकारों को दोष देना ही ठीक नही लगता, उनकी सामाजिक परिस्थिति, रहन-सहन एव शिक्षण पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

युग के प्रभाव से कलाकार अछूता नही रहता। अशिक्षण एवं संकुचित मनोवृत्ति के कारण उनकी वृत्ति भले ही कुंठित रही हो, किन्तु यह भी सत्य है कि अनपढ, अशिक्षित कलाकार ऐसी कुशाग्र बुद्धि, अप्रतिम कौशल तथा तीव्र स्मरण शक्ति से सम्पन्न थे, जो गुण आधुनिक शिक्षा प्रणाली से तैयार हुए कुछ विद्यार्थियों में कदाचित् ही देखने को मिलता है। उन कलाकारों के पास विद्या का जो भण्डार था, बन्दिशों की जो विपुलता थी, दीर्घ साधना का जो तेज था, कला के प्रति समर्पण की जो भावना थी तथा अपने घराने के प्रति जो गर्व था वह सचमुच अप्रतिम था। अपने गुरू एवं अपनी कला के प्रति यह पावन भावना भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक अनोखी विशेषता है जो कि घरानों के माध्यम से युगों से चली आ रही है।

मुग़ल साम्राज्य के अन्त तक घरानाओं का विकास काल आरम्भ होता है। इनमें कुछ विभिन्न घरानों ने ध्रुपद के चार वाणियों में से कुछ एकपर विशिष्टता प्राप्त करने की चेष्टा की। इसलिए कहा जाने लगा कि वाणियों ने घरानाओं को विकसित किया।

अब हम इस तथ्य पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे कि किस प्रकार वाणियो से घरानाओ का सम्बन्ध है और किस प्रकार इनसे विभिन्न घरानों की उत्पत्ति हुई।

स्वामी हरिदास के सर्वप्रमुख शिष्य थे मियॉ तानसेन तथा उनके अन्य शिष्य थे – बृजचन्द्र, गोपाल नायक, महाराजा समोखन सिंह इत्यादि।

अकबर के समय से गौडी गीति से गोधारी वाणी की उत्पत्ति हुई, भिन्ना गीति से खडार वाणी बना, शुद्धा गीति से डागर वाणी उत्पन्न हुआ।

एक अन्य विचारधारा के अनुसार वाणियों के नाम उनके उत्पत्ति स्थल से सम्बन्धित है।

इस प्रकार हमें वाणी एवं गीतियों के नामकरण के बारे मे भिन्न–भिन्न मत प्राप्त होते है।

उत्तर भारत के विशिष्ट घरानों के प्रवर्तक प्रमुख संगीतज्ञों के शिष्यो में से ही थे। उत्तर भारतीय संगीत में मियॉ तानसेन का घराना मुख्य माना जाता था जो कि सेनिया घराने के नाम से जाना जाता है।

गोबरहार वाणी –

मोहम्मद करम इमाम के अनुसार गोबरहार वाणी के प्रवर्तक तानसेन थे। यह इसलिए माना जाता है क्योंकि तानसेन गौडीया ब्राह्मण थे और तानसेन से इसे जोडने का दूसरा कारण यह मिलता है कि उन्होंने इस वाणी को ग्यालियर में विकसित किया। और इस स्थान का आंचलिक भाषा 'गोबरहार' के नाम से जाना जाता है। 'गोपीहारी' जो कि आंचलिक भाषा थी, यह शब्द अपभ्रंश होकर 'गोबरहारा' शब्द में परिवर्तित हो गया। और तीसरा कारण इस वाणी को तानसेन और ग्वालियर से जोड़ने का यह है कि तानसेन ग्वालियर के ही किसी प्रांत के मूल निवासी थे।

यह वाणी शांत रसोद्दीपक है तथा इसकी चाल की तुलना हाथी के चाल से की गयी है क्योंकि इसकी गति धीरे है। इस वाणी में प्रत्येक स्वर सुनिर्दिष्ट रूप से प्रकट होता है। यह वाणी मीड प्रधान है, स्पष्टता इस वाणी का प्रधान लक्षण है।

मियॉ तानसेन इस वाणी के सिद्ध सगीतज्ञ थे। इसके पश्चात् इस वाणी के सूत्रधार थे तानसेन के पुत्र बिलास खॉ। बिलास खॉ ने ही दिल्ली दरबार में सेनी घराने का प्रारम्भ किया। बिलास खॉ के शिष्यों में प्यार खॉ, जाफर खॉ, बासत खॉ आदि थे। ये ध्रुपद तो गाते ही थे, साथ में रबाब भी बजाते थे।

डागुर वाणी के प्रवर्तक बृजचन्द्र माने जाते है। इस वाणी का उत्पत्तिस्थल डागुर है जो कि दिल्ली के निकट माना जाता है। बृजचन्द्र डागुर के निवासी थे। बृजचन्द्र को अकबर ने चॉद खॉ की उपाधि दी थी। ध्रुपद की गौड़ी गीति की गति धीमी, चलन में भारीपन होता है और इसे गाने मे श्वास–प्रश्वास में अंकुश होना आवश्यक है।

डागुर वाणी –

इस वाणी को जनप्रिय बनाया स्वामी हरिदास के शिष्यों ने। मिश्री सिंह के शिष्यों ने ही इस वाणी को अपनाया। मिश्री सिंह का विवाह तानसेन की पुत्री सरस्वती से हुआ था। इस वाणी को मुख्य रूप से सूरत सेन ने अपनाया जो कि तानसेन के पुत्र थे। इनके शिष्यों की परम्परा जयपुर में है। डागुर वाणी का प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है, इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है। इसमें एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता से मिलता है उस कारण उसमें एक विचित्र और रहस्यमय भाव उत्पन्न हो जाता है। लालित्य और गम्भीरता इन दोनों वाणियों में पर्याप्त रूप से मिलता है।

खण्डार वाणी –

इस वाणी के आविष्कर्ता समोखन सिह थे जो कि राजस्थान के खण्डार प्रदेश के निवासी थे। यह बहुत अच्छे बीनकार थे। इन्हें अकबर से नौबत खॉ की उपाधि मिली थी। तथा यह तानसेन के दामाद थे। अतः वैचित्र्य और ऐश्वर्य-प्रकाश खडहार वाणी की विशेषता है। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहार वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंगे अधिक होती है। इसकी गति अतिविलम्बित नही होती। इस वाणी में स्वर के भिन्न-भिन्न टुकडे करके गाते हैं। स्वर के खड-खंड होने के कारण इसे खंडहार वाणी कहा गया। यह भिन्ना गीति से सामजस्य रखता है। स्वरों को सरल रूप से प्रकट न करके कुटिल भाव मे खड-खड करके प्रकट करनाही खडार वाणी की विशेषताहै। इसमें स्वर की मधुरता का नाम नही अपितु सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वरों को आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की ओर भी वृद्धि होती है।

वीणा द्वारा खण्डार वाणी का सेनी लोग विविध प्रकार से मध्य लय, गमक व जोड में उपयोग करते हैं।

शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब तथा सुरसिगार द्वारा दिखाई जाती थी क्योंकि रबाब का स्वर सरल होता है। इसमें विलम्बित मध्य और द्रुत ये त्रिविध आलाप बखूबी दिखाए जा सकते है।

मोहम्मद कलइमाम स्वामी हरिदास के शिष्य थे। अकबर के दरबारी गायक थे। वहॉ इन्हें सूरज खॉ की उपाधि मिली।

नोहार वाणी –

इसके प्रवर्तक श्री चन्द्र थे। 'यह राजस्थान के नोहा नामक स्थान के राजपूत थे। नोहार रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो-तीन स्वरों का लंघन करके परवर्ती स्वर में पहुॅचना इसका लक्षण है। यह वाणी विशेष

रूप से किसी रस की सृष्टि नही करती। कुछ-कुछ अद्‌भुत रसोद्दीपक है। इसका प्रयोग विचित्रता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। यह गौडी गीति से मिलता-जुलता है। इसमें छूट तानो का प्रयोग अधिक होता है।

डागुर वाणी सितार के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है तथा नौहार वाणी सरोद के लिए।

वैसे तो वाणियो का प्रयोग आलाप में किया जाता है। विलम्बित लय के आलाप में गोबरहार तथा डागुर वाणी का प्रयोग होता है तथा आलाप में गति बढाने के साथ खडार तथा नौहार वाणी का प्रयोग होता है।

इस प्रकार गायन या वादन में किसी विशेषता पर घरानो का अस्तित्व निर्भर करता है। किसी घराने के एक-दो गायक या वादक उसके सगीत और उसकी शैली का निर्माण करते है और वह उसके सरक्षक और मार्गदर्शक बन जाते है। प्रत्येक घराने का आवाज लगाने का ढग, उसका उतार-चढ़ाव और उसका कला-चातुर्य अपने ही ढंग का होता है। आवाज का फैलाव भी विशेष ढंग का होता है। कोई भी घराना क्यों न हो, वह अपनी शैली से जाना जाता है। गायन की शैली को गायकी तथा वादन की शैली को बाज कहा जाता है।

18वी, 19वी शताब्दियों में तानसेन के वंशज और उनके शिष्य तीन विशेष घरानों में फैल गए। जयपुर के सेनिए घराने ने डागुर वाणी के ध्रुपद में विशेष प्रवीणता प्राप्त की। लखनऊ, बनारस और रामपुर में सेनिया घराना दो अलग वर्गो में बँट गया। बिलास खॉ की परम्परा के अनुयायी जाफर खॉ, प्यार खॉ और बासत खॉ ने ध्रुपद की गौडहारी वाणी का पालन किया। और यह गायक डागुर वाणी का भी पालन करते थे। मिश्री सिंह के सेनिए वंशज डागुर और खंडार बानियों दोनों का प्रयोग करने लगे। तानसेन की शिष्य परम्परा ने ध्रुपद गायन और वाद्य संगीत वीणा, रबाब दोनों को सुरक्षित और जीवित रखा।

ध्रुपद की इन वाणियों के सदर्भ में डॉ० सुशील कु० चौबे ने 'सगीत के घरानों की' चर्चा नामक पुस्तक में इन वाणियो के संदर्भ में लिखा है "इन वाणियों मे शब्दो का विशेष महत्व और मूल्य था। ये शब्द इसलिए उचित और उपयुक्त माने जाते थे कि राग के और ध्रुपद शैली के अनुसार यह बहुत अनुकूल थे। इस तरह भाषा भाव, राग, रस और शैली में एक तरह का सामन्जस्य होता था और सश्लेषण की भावना होती थी। गौडहार बानी के लिए उन रागों को चुना जाता था जिनमे शातरस होता था। डागुर बानी को रचनाओं के लिए वह राग चुने जाते थे जिनमें मधुर रस और करूण रस होता था। खंडार वाणी के लिए विशेष रूप से वीर रस सचारित होता था। इसी तरह नौहार वाणी की रचनाओं में अद्‌भुत रस की प्रधानता होती थी। रागो को भी इसी हिसाब से चुना जाता है कि उनमे यह रस अलग-अलग ढग से प्रदर्शित हो। इस तरह की चयनशीलता ऐसे संगीत के लिए आवश्यक थे।

परन्तु तानसेन और अकबर के युग के पश्चात् यह विचार नही रखा गया। इसका एक विशेष कारण यह था कि मुगल साम्राज्य के अंत होने पर ध्रुपद के बहुत से नये-नये घरानों का जन्म हुआ जो इन चार बानियों की अलग-अलग व्याख्या करने लगे। परन्तु ध्रुपद के पुराने नियमों और उनके अनुशासन का उसी ढग से पालन किया जाता था। जैसे ध्रुपद का कोई विशेष घराना जो कि एक बानी का विशेषज्ञ माना जाता था, दूसरी बानियों को भी व्यवहार में लाने लगा। कुछ घराने एक से अधिक बानियों का प्रयोग करने लगे। इसका परिणाम यह भी हुआ कि ध्रुपद के परम्परागत अनुशासन में भी थोडी-बहुत कमी आ गयी। नये-नये घरानों के विकास के साथ-साथ परिवर्तनों का होना स्वाभाविक था और एक तरह से अनिवार्य भी था।

उस समय ध्रुपद के घराने और भी थे जिनमें से कुछ तो सेनियों के शिष्य थे और कुछ हरिदास स्वामी की शिष्य परम्परा में थे, जैसे बेतिया के ध्रुपद गायक जो खंडार वाणी को मानते थे। इसी तरह विष्णुपुर के ध्रुपद गायकों ने गौड़हार बानी का पालन किया। डागुर बानी में ही विशेष कुशलता प्राप्त की थी। एक

दूसरे प्रसिद्ध गायक उस्ताद बहराम थे जो सहारनपुर के अम्बैठा गाव के रहने वाले थे, परन्तु जयपुर में जाकर बस गये थे और डागुर वाणी की व्याख्या करते थे। यह घराना अपने को हरिदास स्वामी से भी जोडता है और इसलिए डागुर घराना कहलाता है। इसी घराने में प्रसिद्ध गायक जाकिरूद्दीन खॉ और अलाबन्दे खॉ है। इस घराने ने डागुर और खंडार दोनों बानियों को गाया है। कभी-कभी नौहार बानी का भी प्रयोग करते हैं।

मुगल साम्राज्य के अंत के समय तानसेन के वशज तीन घरानो में बॅट गए। वह घराना जो तानसेन के सबसे बडे लडके सूरत सेन के नाम से सम्बन्धित था। जयपुर मे जाकर बसे इस घराने की शिष्य परम्परा मे ध्रुपद-गायक और सितार-वादक दोनों थे। तानसेन के सबसे छोटे लडके बिलास खॉ के घराने और उनके दामाद मिश्री सिह के घराने में गहरा सम्पर्क था। बिलास खॉ के घराने के गायक ध्रुपद की "शुद्ध बानी" के विशेषज्ञ थे और वाद्यों में उन्होंने रबाब ही में विशेष कुशलता प्राप्त की थी। मिश्री सिंह के वशज वीणा के और ध्रुपद की डागुर और खंडार वाणियों के विशेषज्ञ थे। 18वी शताब्दी के दूसरे भाग में जाफर खॉ, प्यार खॉ और बासत खॉ ये तीनों भाई बिलास खॉ के घराने के प्रमुख और प्रतिनिधि माने गये। यह ध्रुपद गाते थे और रबाब भी बजाते थे। इन दोनों घरानों के संगीतज्ञों ने देहली छोड़कर बनारस को ही अपना निवास स्थान बनाया था। सगीतज्ञ लखनऊ दरबार से भी संबंधित थे।

जाफ़र खाँ एक अद्वितीय रबाबिए थे। इन्होंने ही सुरसिंगार नामक वाद्य का आविष्कार किया था। इन्होंने अपना रबाब एक खास ढंग से बनवाया था। जोड़ और तारपरन के बाज में वह अद्वितीय थे। विलम्बित आलाप और झाला, वीणा की विशेषताएं थी।

इनके (जाफर खाँ) द्वारा निर्मित सुरसिगार पर इनके भाई प्यार खाँ को असाधारण दक्षता थी। निर्मल शाह के निधन के पश्चात् उनके भतीजे उमराव खाँ ही सर्वश्रेष्ठ बीनकार माने जाते थे। इन्होंने ही सुरबहार का आविष्कार किया।

इन्ही के शिष्य थे गुलाम मुहम्मद खॉ। प्यार खॉ के छोटे भाई बासत खॉ धुरन्धर ध्रुपदिए और रबाबिए थे और देश भर में उनकी ख्याति थी।

1857 के गदर के पश्चात् लखनऊ के दरबार का अंत हुआ और बासत खॉ अपने सुयोग्य शिष्यो और लडकों, अली मुहम्मद खॉ जो कि सुरसिगार वादक थे और मुहम्मद अली खॉ जो ध्रुपद और रबाब बजाते थे, इन्हें साथ लेकर गया मे जाकर बस गये। इधर जाफर खॉ के लड़के सादिक अली खॉ और उनके भाई मसर अली खॉ काशी नरेश के दरबार में सम्मिलित हो गए।

सादिक अली खॉ सगीत शास्त्र मे भी विद्वान थे, रबाब बजाने मे निपुण थे तथा वीणा भी बहुत अच्छा बजाते थे। बनारस के संस्कृत के विद्वानो से भी उनका अच्छा सम्पर्क था। वह सस्कृत तथा फारसी के ज्ञाता थे। ऐसा माना जाता है कि वह लड-गुथाव, लडी-जोडी के विशेषज्ञ थे। तार-परन बजाने में भी पारगत थे। ध्रुपद गायन, वीणा और सितार मे उन्होंने कई शिष्य तैयार किए। वीणा में शिष्यों में महेश चन्द्र सरकार और मिठाई लाल जी के नाम प्राप्त होते है।

बासत खॉ के बड़े लडके मुहम्मद खॉ सुरसिंगार बजाते थे। रागों के बारे में उनका ज्ञान व्यापक माना जाता है और उनमें नई-नई ताने बगैर दुहराए घटों तक बजाने में उन्हें सिद्ध माना जाता है। सुरसिंगार में अली मुहम्मद खॉ के शिष्यों में थे पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जुनदास और गया प्रसाद मिश्र परन्तु इनके सबसे सुयोग्य शिष्य जालंधर के मीर नासिर खॉ माने जाते हैं। इन्होंने ध्रुपद, वीणा और सुरसिगार में रामपुर के प्रसिद्ध बीनकार वजीर खॉ को भी शिक्षा दी। अली मुहम्मद के शिष्यों में बंगाल के हरिनारायण मुकर्जी भी थे तथा हरिनारायण मुकर्जी के शिष्य थे ताराप्रसाद घोष।

अली मुहम्मद खॉ की मृत्यु के बाद उनके भाई मुहम्मद अली खॉ जो ध्रुपद गाते थे तथा रबाब बजाते थे, यह रामपुर में जाकर बस गए और अपनी

परम्परागत सगीत की शिक्षा दी। यह अपने घराने के आखिरी कलाकार माने जाते है।

इस प्रकार सेनिया घराने के गायक और वादक रामपुर और जयपुर जैसी रियासतो में जाकर बस गए थे। इसलिए बनारस में धीरे-धीरे तानसेन घराने की परम्परा का अत हो गया।

इन उस्तादों के शिष्यो में केवल हरिनारायण मुकर्जी जैसे ध्रुपदिए और मिठाईलाल जैसे बीनकार ही बचे रहे जिन्होंने बनारस की ध्रुपद परम्परा को सुना था।

घरानों का विस्तार -

उत्तर प्रदेश में बनारस और रामपुर सेनिया घराने की परम्परा के केन्द्र बने। अलाउद्दीन खिलजी के पश्चात् दो ही घराने सामने आते है। पहला घराना बैजू बावरा ने स्थापित किया जो कि कलावत घराना था। इस घराने के मुख्य व्याख्या गोपाल नायक ने किया। इस विशेष सगीत परम्परा में ध्रुपद शैली और सरस्वती वीणा को वाद्य शैली के साथ इनका रागालाप ध्रुपद की रचनाओं के साथ सम्मिलित हो गया।

दूसरा घराना था कव्वाल घराना जिसके स्थापक थे अमीर खुसरो। इस घराने का प्रचार-प्रसार मुख्य रूप से जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने किया था।

इस घराने के अन्तर्गत और भी शैलियों का विकास हुआ। कव्वाली शैली की रचनाएं सितार वादन की शैली और तराना इत्यादि इसमें सम्मिलित थे। बाद में एक तीसरे घराने का भी विकास हुआ जिसमें विशेष रूप से शहनाई वादक और तबला वादक थे। देहली दरबांर में सौ के लगभग संगीत के भिन्न-भिन्न कलाकार थे जिनमें दाढ़ी और मिरासी भी थे। यह संगीतकारों का एक वर्ग था जो कि बाइयों और पेशेवर नाचने-गाने वालियों के साथ-साथ संगत करते थे।

ग्वालियर के राजा मानसिह तोमर के दरबार में चार विद्वान संगीतज्ञ थे – नायक भानु, चर्जू, ढुढी और चंचल शशि। यह चारों नायक कलावन्त कहलाए और कलावन्ती का एक विशेष वर्ग बन गया।

अकबर के समय से ही प्रसिद्ध संगीतज्ञों के वंशज और उनकी शिष्य परम्परा अपने-अपने घराने स्थापित कर रहे थे। परन्तु इन सबके ऊपर तानसेन सगीत का तथा उनके व्यक्तित्व की बेहद छाप पडी तथा आगे चलकर भी संगीत की प्रायोगिक शैलियों पर भी तानसेन के सगीत की छाप पडी।

तानसेन की मृत्यु के पश्चात् सेनियों के तीन विशेष घरानों का जन्म हुआ। पहला घराना तानसेन के सबसे छोटे पुत्र बिलास खॉ (तानतरेग खॉ) के नाम से चला। यह गौडहार बानी का सबसे प्रसिद्ध घराना मानागया।

दूसरा घराना तानसेन के दूसरे पुत्र सूरत सेन के नाम से बना जो डागुरवाणी का सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता था। उनके वशज जयपुर मे जाकर बस गये जहॉ उनकी शिष्य परम्परा भी विकसित हुई।

तीसरा घराना मिश्री सिंह का था जो महाराज समोखन सिंह के पुत्र थे और इनका विवाह तानसेन की पुत्री सरस्वती देवी के साथ हुआ था। इस घराने ने मुख्य रूप से वीणा के घराने की प्रतिष्ठा की।

इस घराने के संगीतज्ञों ने डागुर ओर खडार वाणियों के ध्रुपद गायन में भी असाधारण कुशलता प्राप्त की।

इन तीन सेनिया घराने के अलावा मथुरा के बृजचन्द और सूरदास ने भी अपने-अपने घराने बनाए जिनके शिष्यों में बहुत से ब्राह्मण पंडित भी थे।

'शाह सदारंग' जिनका असली नाम नेमत खॉं था, तानसेन के बाद सबसे प्रतिभाशाली सगीतज्ञ माने गये हैं। 18वी शताब्दी में संगीत के इस युग में सदारंग हमारे संगीत की क्रांतिकारी परिवर्तनशीलता के अन्वेषक माने गये हैं। यह

सेनिया घराने के प्रतिनिधि होते हुए वीणा-वादन और धमार की शैली में भी कुछ अविष्कार किए। इसके साथ उन्होंने एक बहुत ही युगान्तकारी काम किया वह है कव्वाल घराने को नई, मजबूत नीव देकर उन्होंने 'ख्याल' शैली का आविष्कार किया। आगे चलकर यह शैली ध्रुपद की प्रतिद्वन्दी बन गयी। इस शैली का प्रभाव ग्वालियर, आगरा और देहली के घरानों पर बहुत अधिक पडा।

18वी शती के दूसरे चरण मे मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ देहली दरबार की शक्ति क्षीण हो गयी। सगीत के सरक्षण में कमी आ गयी। गायक और वादक राजदरबारी का आश्रय ढूंढने लगे। उस समय सेनिया घराने के संगीतज्ञों ने, जो दूसरे दरबारों का सहारा ढूढ रहे थे, वाद्य संगीत की ओर अधिक ध्यान दिया और उसमें बहुत कुशलता प्राप्त की। वैसे तो यह संगीतज्ञ परम्परागत ध्रुपद गायन के ही अनुयायी थे, परन्तु समय की मांग के अनुसार उन्हें अवसरवादी बनना पडा और वाद्य सगीत में कडा परिश्रम करके उन्होंने उसे प्राचीन ध्रुपद शैली का प्रतिनिधि बनाया।

इस तरह बिलास खॉ के और नियामत खॉ के वशज विशेष रूप से बनारण में जाकर बस गए। वह लखनऊ के दरबार और आस-पास के दरबारों में भी नियुक्त हो गए। यह पूर्वी संगीतकार कहलाए।

दूसरे वर्ग के संगीतज्ञ जो सूरत सेन के घराने के थे, जयपुर में जाकर बस गए। इनको पश्चिमी संगीत कलाकार कहा गया।

सेनिया घराना के पूर्वी संगीतकार वीणा और रबाब बजाने के अतिरिक्त ध्रुपद गायन भी करते थे। उसी तरह सेनिया घराने के पश्चिमी संगीतज्ञ सितार वादन और वीणा वादन के अलावा ध्रुपद गायन भी करते थे।

18वीं शताब्दी के मध्य संगीत परम्परा के भिन्न-भिन्न घराने स्थापित हुए :

०१. रबाब और ध्रुपद का सेनिया घराना जिनमें बनारस और लखनऊ के सगीतज्ञ सम्मिलित थे तथा जाफर खॉ, प्यार खॉ और बासत खॉ भी थे।

०२. लखनऊ के निर्मल शाह का सेनिया घराना।

०३ बडे मुहम्मद खॉ का कव्वाल बच्चों वाला लखनऊ और ग्वालियर घराना।

०४ ग्वालियर का ख्याला घराना जिसके प्रवर्तक थे तीन भाई – हद्दू खॉ, हस्सू खॉ तथा नत्थू खाँ।

०५. आगरे का ध्रुपद, धमार और ख्याल का घराना, जिसे 16वीं शती (अकबर के युग में) हाजी सुजान खॉ ने स्थापित किया।

०६. विष्णुपुर का ध्रुपद का घराना जिसे बहादुर खॉ सेनिए ने स्थापित किया।

०७. पंजाब में तिलवडी का ध्रुपद का घराना।

०८. लाहौर का पजाब का ख्याल घराना जिनके गायक सदारंग के शिष्य थे।

०९. अतरौली का ध्रुपद और ख्याल का घराना।

१०. बहराम खॉ ध्रुपद गायक का ध्रुपद का डागुरबानी का घराना।

११. सहारनपुर का सरोद वादकों का घराना जिसको निर्मल शाह के लडके उमराव के शिष्यों ने स्थापित किया था।

१२. जयपुर का सितार का घराना जिसके सस्थापक अमृत सेन थे।

१३. बासत खॉ के शिष्य नियामतुल्ला खॉ का सरोद घराना।

१४. लखनऊ का सितार का घराना जिसको उमराव खॉ के शिष्य गुलाम मुहम्मद खॉ ने स्थापित किया था।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में गुरू शिष्य परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है, समय-समय पर इसके स्वरूप में या नामकरण में बदलाव आया है जैसे वाणी से मत, मत से फिर शैली और शैली के बाद यह घराना कहलाने लगा। आज 'घराना' शिक्षण पद्धति ही व्याप्त है जिसमें संगीत के

विभिन्न पहलुओं पर अधिकार प्राप्त कर, तथा समय के अनुसार कुछ सयोजन कर इसे पीढी दर पीढी या शिष्यों के माध्यम से प्रवाहमान रखा गया है।

तानसेन के वंशजों द्वारा स्थापित गायन के घराने ही घरानों के आदि रूप है। अन्तत· तत्रवाद्यों के घरानों के मूल भी गायन (ध्रुपद) के घरानों से ही प्रभावित होते है। इस प्रकार उत्तरोत्तर 'घराना' शैली का विकास होता गया।

*** *** ***

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

सितार के घराने एवं कलाकार

त्रितन्त्री वीणा को सितार की जननी कहा गया है। इस वीणा में ही बदलाव आते-आते वर्षो बाद यह सितार के रूप में सामने आयी। अतः सितार के बदलते हुए आकार-प्रकार के अनुसार इसकी वादन शैली में भी परिवर्तन आते गये, तथा इसमें क्रमिक परिवर्तन लाने में तानसेन के वंशजों का वर्चस्व दिखाई देता है। सितार के घरानों का विकास 19वी शती के पूर्वार्द्ध मे ही प्रारम्भ हुआ। इससे पहले तक वीणा, रबाब आदि के परम्परायुक्त घराने तो निर्मित हुए परन्तु हमेशा से इसमें व्यक्तिगत प्रतिभा की ही प्रधानता रही है। लोगों की रूचि के अनुसार इसकी शैलियों मे परिवर्तन आते गये। हम यह भी कह सकते हैं कि सही दृष्टि से सितार के घराने अभी बने ही नही। आज के सितार वादकों के पूर्वज या तो गायक थे या फिर वीणा वादक। अत सितार वादन, घरानेदारी के क्रम में तो आता ही नही है, फिर भी यदि स्थूल रूप से सितार के घरानों के सम्बन्ध में विचार करें तो हम पाते है कि सेनिया घराना ही सितार का सबसे प्राचीन और मूल घराना है बाकी सभी घराने किसी न किसी रूप से इस सेनिया घराने से ही जुडे है।

सेनिया घराना

सेनिया घराने के सितार वादक केवल सितार की शैली के जन्मदाता ही नहीं बल्कि सितार वादन के प्रथम मौलिक प्रणेता भी थे। उत्तर भारतीय संगीत को तानसेन और उनके वंशजों की बहुत बड़ी देन है। वे स्वयं तो उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे, किन्तु आगे चलकर उनके वंशजों में उच्चकोटि के तंत्रकार हुए हैं। उनके वंशज ही आगे चलकर सेनिया कहलाए। इस घराने का प्रारम्भ तानसेन के

द्वितीय पुत्र सूरत सेन से प्रारम्भ होता है। सूरत सेन के वशज थे रहीम सेन। उनके दो पुत्र थे - अमृत सेन एवं निहाल सेन। अमृत सेन के शिष्य थे अमीर खॉ, अमीर खॉ के दो शिष्य हुए - बरकतुल्ला और इमदाद खॉ। इन दो कलाकारों से अलग-अलग परम्पराए निकली। इमदाद खॉ के शिष्य हुए इनायत खॉ और इनायत खॉ के शिष्य हुए विलायत खॉ, ध्रुवतारा जोशी और विमलकांत राय चौधरी। दूसरी ओर बरकतुल्ला खॉ के शिष्य हुए आशिक अली खॉ। आशिक अली खॉ के चार शिष्य हुए - अनवरी बेगम, रसूलन बाई, मुश्ताक अली एव गोपीनाथ गोस्वामी।

इसी घराने मे मसीत खॉ नामक उस्ताद हुए जिन्होंने सितार का एक नया बाज निकाला जो आगे चलकर अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और यहॉ से तंत्री वाद्यो में स्वतन्त्र वादन शैली का प्रारम्भ हुआ। मसीत खॉ के शिष्य हुए रजा खॉ जिन्होने वादन शैली का नया बाज निकाला जिसे रजाखानी बाज कहा गया। इनके बनाए हुए मसीतखानी और रजाखानी बाज आज भी प्रचलित है। सितार को वीणा, रबाब और गायकी से पृथक कर तन्त्र के लिए उपयुक्त एक स्वतन्त्र गत शैली का निर्माण सेनिया घराने के उस्तादों की ही देन है। सेनियों ने गायन अग से पृथक कर सितार को केवल तंत्र के रूप में प्रयोग करने की प्रथा प्रचलित की। गत की बंदिश पहले मूलतः गान की शैलियों से ही प्रभावित थी, किन्तु मिजराब के विशेष प्रयोग के कारण गत की रचना, गाने से भिन्न होने लगी। 18वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध तक सितार के विकास का काल रहा। इसी समय जयपुर में मसीतखानी बाज की वृद्धि और प्रगति हुई तो दूसरी ओर जौनपुर, काशी और लखनऊ में इसकी शैली पनप रही थी जिसके प्रवर्तक थे जौनपुर वाले सेनिया घराने के उस्ताद गुलाम रजा खाँ। इन्होंने एक नर्वीन वादन शैली प्रस्तुत की जिसमें मध्य और द्रुत लय की प्रधानता थी। उन्होंने 'दा' और 'रा' दोनों बोलों के विभिन्न मिश्रण से लय की भिन्न-भिन्न गतियों के फलस्वरूप 'दार', 'द्रि', 'दाद्रि' आदि बोलों को बजाया। इस बाज जोड़ के काम पर विशेष ध्यान दिया गया और इस शैली का नामकरण हुआ 'रज़ाखानी

बाज' या 'पूरब बाज', जिन्होंने अमृत सेन के शिष्य जयपुर वाले अमीर खॉ से शिक्षा ग्रहण की थी। सेनिया घराने के कलाकारों की विशेषता है कि इनके स्वरों का लगाव, बन्दिश, तानो की फिरत विशेष रूप से आकर्षक होती है तथा खटके, मुर्की और मीड का प्रयोग इस घराने की प्रमुख विशेषता है।

18वी शती के मध्य मे सेनिया परम्परा के भिन्न-भिन्न घराने स्थापित हो गये जैसे जयपुर के सेनियों का सितार का घराना तथा रामपुर के सेनियों का घराना। प्रारम्भ में तानसेन के वशज वीणा और रबाब को छोडकर कोई अन्य वाद्य नही बजाते थे परन्तु उन्होंने अपने वश के बाहर लोगों को शिक्षा देने के लिए सितार वाद्य को मुख्य रूप से अपनाया तथा साथ ही आलाप अंश के वादन के लिए सुरबहार को अपनाया। इस प्रकार सितार को एक निश्चित वादन शैली प्रदान करने का श्रेय सेनियों को जाता है तथा इसके प्रचार-प्रसार हेतु इन्होंने शिष्य तैयार किए। इस प्रकार हम सेनिया घराने को सितार का एकमात्र घराना कह सकते है। इसी घराने की शैली को आधारशिला मानकर सितार के अन्य बाज निर्मित हुए।

रहीम सेन -

मियॉ रहीम सेन तथा मियॉ अमृत सेन ने संगीत जगत् में सितार को सर्वोच्च स्थान दिलाया। यह दोनों पिता-पुत्र मसीतखानी शैली के प्रकाण्ड पंडित थे। मियाँ अमृत सेन ने अपने पिता के समान ही सितार में वीणा, ध्रुवपद और ख्याल इन तीनों की विशेषताओं का समावेश कर सितार के बाज को विकसित किया। इन्होंने सितार के वादन में ध्रुपद के आधार पर आलाप जोड़ की प्रथा चलाई। गत तोड़े के अतिरिक्त ख्याल की फिकरेबन्दी के आधार पर सितार में फिकरे बजाने की प्रथा को स्थापित किया। मियाँ अमृत सेन से पूर्व सितार में फिकरेबन्दी की प्रथा नही थी। मसीतखानी बाज में मिजराब के बोलों द्वारा गत का भराव और लय का चमत्कारपूर्ण वादन इनकी विशेषता मानी गई है। गत के

बोलों को विभिन्न लय में प्रस्तुत कर बीच-बीच में छोटे-छोटे फिकरे लगाकर वादन में रजकता लाना इनकी मुख्य विशेषताएं हैं, जिसका अनुसरण दिल्ली निवासी सितार वादक उस्ताद इलाही बख्श द्वारा 19वी शताब्दी के अन्त तक कुशलतापूर्वक होता रहा। फलस्वरूप सितार की यही मुख्य वादन प्रणाली मानी जाने लगी थी।

खुसरो खॉ -

यही खुसरो खॉ सितार के आविष्कारक माने जाते हैं। आप सदारग के छोटे भाई तथा फिरोज खॉ के पिता, अपने समय के अच्छे गायक व बीनकार थे। आप अपने भाई सदारंग के समान ही प्रतिभाशाली एवं अनेक प्रकार के वाद्यों को बजाने में कुशल थे।

उमराव खॉ के अन्य पूर्वजों में बहादुर खॉ, हैदर खॉ, न्यामत खॉ (सदारग), नजीर, खेसाल खॉ आदि के नाम प्राप्त होते है। उमराव खॉ के तीन भाई थे - तुराब अली खॉ, स्वय और मोहम्मद अली खाँ। उमराव खॉ ने अपने पुत्रों के अतिरिक्त कुतुब बख्श (कुतुबदौल्ला), गुलाम मोहम्मद खाँ (सितार, सुरबहार वादक), उनके पुत्र सज्जाद मोहम्मद खॉ (सितार, सरबहार वादक), नवाब हशमत जंग (बॉदा) आदि को संगीत की शिक्षा प्रदान की थी।

इसी घराने के उस्ताद वजीर खॉ (अमीर खॉ के पुत्र) रामपुर घराने के प्रसिद्ध बीनकार माने गए है। अमीर खाँ ने अपने पुत्र वजीर खॉ के अतिरिक्त फिदा हुसैन खॉ (सरोद, रबाब), बुनियाद हुसैन खाँ (ध्रुपद, होरी) को संगीत शिक्षा दी। उनके शिष्यों में असगर अली खॉ (सरोद) और वजीर खाँ (बीर, रामपुरवाले) के भी नाम प्राप्त होते हैं। वज़ीर खाँ के तीन पुत्रों के अतिरिक्त अब्दुल रहीम (सितार), मुहम्मद हुसैन (बीन), नासिर अली (सुरबहार, सितार), प्रमथ नाथ बन्धोपाध्याय (रुद्र वीणा),' अलाउद्दीन खाँ, हाफिज खाँ (दोनों सरोद), ताराप्रसाद घोष (गायन) तथा नवाब हामिल अली खाँ आदि को संगीत की शिक्षा दी थी।

उस्ताद हफीज़ खाँ -

आप तानसेन के वश के हैदर बख्श के पौत्र तथा मम्मू खॉ के पुत्र थे। इन्होंने अपनी सितार की शिक्षा मियॉ अमृत सेन जी से प्राप्त की। उस्ताद हफीज खॉ भी मसीतखानी बाज के विशेषज्ञ माने गये हैं। मियॉ अमृत सेन जी ने इस बाज में लयकारी का जो कार्य करने की प्रथा चलाई थी, यह उसी बाज में निपुण वादक के रूप में पूर्ण उत्तर भारत में विख्यात हुए। इनकी मिजराब की ठोंक जोरदार और कडी होती थी तथा बोलों का कटाव इनके वादन की मुख्य विशेषता मानी गई है।

उस्ताद हफीज खॉ द्वारा रचित राग भीमपलासी की एक दुर्लभ रचना है। इस गत में 'डाड' के बोल के कटाव से एक विचित्र लय रखी गयी है तथा इस गत का चलन इन बोलों के आधार पर अति-विलम्बित लय की बन गयी है, इस गत से पूर्व मसीतखानी शैली की गतें इतनी विलम्बित लय मे नही होती थी। इस गत के चलन और बोलों के ठहराव से ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकार ध्रुपद गायन के नियमों के अच्छे ज्ञाता थे।

गत-भीमपलासी : उस्ताद हफीज खॉ -

सरे | नी-नी सस ग-ग मप
दिड़ | दा-ड़ दिड दा-ड़ दाड़ा
३

नी धध प म ग-- | गग -ध-- प -म- | ग रे स |
डा डिड डाडा दा-- | डदा -दा-- डदा -दा- | डा डा डा |
x २ ०

अमीर खाँ (जयपुर) -

रहीम सेन के समय में ही जयपुर के सितार वादकों में उस्ताद अमीर खाँ भी एक बहुत गुणी सितार वादक हुए है। आप हैदर बख्श के पौत्र तथा मियाँ अमृत सेन के जीजा उस्ताद वजीर खाँ (वीणावादक - जयपुर) के पुत्र थे।

अमीर खॉ अमृत सेन जी के मुख्य शिष्यों में से एक थे तथा मियॉ रहीम सेन जी से भी इनको विशेष शिक्षा प्राप्त हुई थी। अमीर खॉ हैदर बख्श के घराने के शिरोमणि माने गये है।

अमीर खॉ की वादन शैली बहुत ही प्रभावपूर्ण थी। इनके वादन में गत तोडे में बोल-बॉट का नियम व लय की काट तराश बहुत ही अच्छी थी। इनका वादन इतना प्रसिद्ध हुआ कि इनकी वादन शैली को 'अमीरखानी' बाज और इनके द्वारा रचित बदिशों को अमीरखानी गत का नाम दिया गया। प्रारम्भ में इनकी शैली को इनके शिष्यों ने ही कुछ समय तक 'अमीरखानी बाज' का नाम दिया था। वैसे अमीर खॉ जी मसीतखानी बाज के ही विशेषज्ञ थे। इन्होंने जिन बन्दिशो की रचना की वह भी मसीतखानी शैली की ही है। अमीरखानी बाज या अमीरखानी गतें आज प्रचार में नही है और न ही इस संबंध में कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त होते है।

इन्होंने अपने पुत्रों फजल हुसैन और फिदा हुसैन के अतिरिक्त भी और लोगों को शिक्षा दी जिनमें लश्कर के 'बालकृष्ण पति बाजपेयी भीमपुरे', श्री पाद बुआ, बरकत उल्ला खॉ और उस्ताद इमदाद हुसैन खॉ का मुख्य रूप से आता है।

उस्ताद बरकतुल्ला खॉ और उस्ताद इमदाद खॉ से प्रथम दो अलग-अलग धाराए प्रचलित हुई। अमीर खॉ अन्त में जयपुर में ही रहने लगे थे और वही उनका सन् 1915 में स्वर्गवास हुआ।

अमीर खॉ की वादन शैली की विशेषता यह थी कि वह विभिन्न लयकारियों से परिपूर्ण रहता था और उनके गत तोडों में बोल-बॉट का विशेष महत्व रहता था।

गत-राग तिलक कामोद – ('सितार की तीसरी पुस्तक' – पृष्ठ स० 81) –

प प नी नी	स स रे ग	स रे मपध पम	ग गरे स नि़
डा डिड डा रा	डा रा डा डिड	डा रा दा डिड	दा डिड डा डा
x	२	०	३

तोड़ा –

स ध नी ध प ध म ग स रेग रेगमप म प ग गरे स नि
डा डिड डा डा डा दिड डा डा डा डा डा दिड डा दिड डा डि

१) इस गत तोडे में बाज की दो विशेषताएं सामने आई।

क) गत में दिड बोल को प्रत्येक विभाग की खाली से पहले रखकर 'डा' बोल पर अधिक वजन देने का विधान प्रस्तुत किया गया है। मसीतखानी गतो का यह नियम है कि 'डिड' के बाद 'डा' ताली पर ही आता है और 'डा' बोल पर काफी वजन भी दिया जाता है। परन्तु उपर्युक्त गत मे 'दाडा डा डिड' बजाकर 'डा' बोल प्रयोग हुआ है जिससे 'डा' का वजन अधिक बढ गया है और यह नियम लय की बॉट के अन्तर्गत आ गया है।

ख) तोडे के स्वरूप से उस समय के वादन पद्धति का अनुमान होता है। तोडे पर ध और ग, ग के बाद दो बिन्दु ':' दिए गए है। इन बिन्दुओं के लिए संकेत नहीं है। ऐसा लगता है कि उस समय तोड़ों में स्वरों का विभिन्न सौन्दर्य उपकरणों से सजाने की प्रथा आरम्भ हो चुकी थी।

भीमपुरे जी ने 'सितार की तीसरी पुस्तक' के पृष्ठ सं० 58 पर लिखा है कि – राग लहरा को कई लोग काफी थाट का सरपर्दा भी कहते है। उस्ताद अमीर खाँ इसे ही बजाकर बहुत बार अपना सितार बजाना पूरा करते थे, इसमें अनेक राग की गतें बजाकर इसी में फिर आ मिलते थे। इसे तेज बजाकर अनेक प्रकार के बोलों से इसे बजानां चाहिए, फिक्रे के बाद इसमें झाला जरूर बजाना चाहिए।

उक्त कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि उस्ताद अमीर खॉ जी ने पूरब शैली की गतो की रचना करने के साथ उनका वादन भी करते थे। निम्न अमीर खॉ की गत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है। इस गत में जो बोल दिए गए हैं वह भी मसीतखानी शैली के नही प्रतीत होते है।

गत लहरा -

पम	पम	प	ग	मग	मग	म	रे	गरे	गरे	रेग	म	मपध	म	रे	रेसरे
डा	डा	डा	डिड	डा	डा	डा	डिड	डा	डा	डा	डिड	डा	डा	डिड	डाडा

राग पूरिया धनाश्री - अमीर खॉ जी की रचना

											डिड	डा	डिड	डा	डा
											9	9	9	10	11

डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डिड	डा	डा	डा	डा	डिड	डा	डा
12	10	9	9	9	7	7	9	9	10	11	9	9	10	11

उस्ताद निहाल सेन -

सेनिया घराने के उस्ताद निहाल सेन एक बहुत प्रतिभावान सितार वादक हुए है। यह भी हैदर बख्श के पौत्र तथा वजीर खॉ के पुत्र व श्री अमीर खाँ के छोटे भाई थे। इनको मियाँ अमृत सेन ने गोद लिया था और पुत्र के समान सितार शिक्षा दी थी।

उस्ताद निहाल सेन ने अपने पूर्वजों के तरह ही सितार को लोकप्रिय और वादनोपयोगी बनाने में पूर्ण सहयोग किया। आप सितार वादक होने के साथ-साथ अच्छे वीणा वादक भी थे। आप की वादन शैली में प्रचलित जयपुर बाज की तुलना में 'डारा' का ज्यादा प्रयोग हुआ है।

सुश्री संध्या अरोड़ा अपने शोध-प्रबन्ध में लिखती है कि उस्ताद हिलाल खॉ साहब का कथन है कि जयपुर वाले छोटे-छोटे स्वर समूहों को विभिन्न

बिलास ख़ाँ का घराना

गुलाब खॉ

छज्जू खॉ
ज्ञान खॉ
जीवन खॉ

कन्या
जाफर खॉ
प्यार खॉ
बासत खॉ
बाकर खॉ
हैदर खाँ
बहादुर खाँ

बहादुर हुसैन खॉ
काज़िम अली
सादिक़ अली
निसार अली
अहमद अली
अली मोहम्मद
मोहम्मद अली
रियासत अली

कासिम अली
कन्या
अली बख़्श (दत्तक पुत्र नव मुस्लिम)

शौकत अली (मन्नू मियाँ)
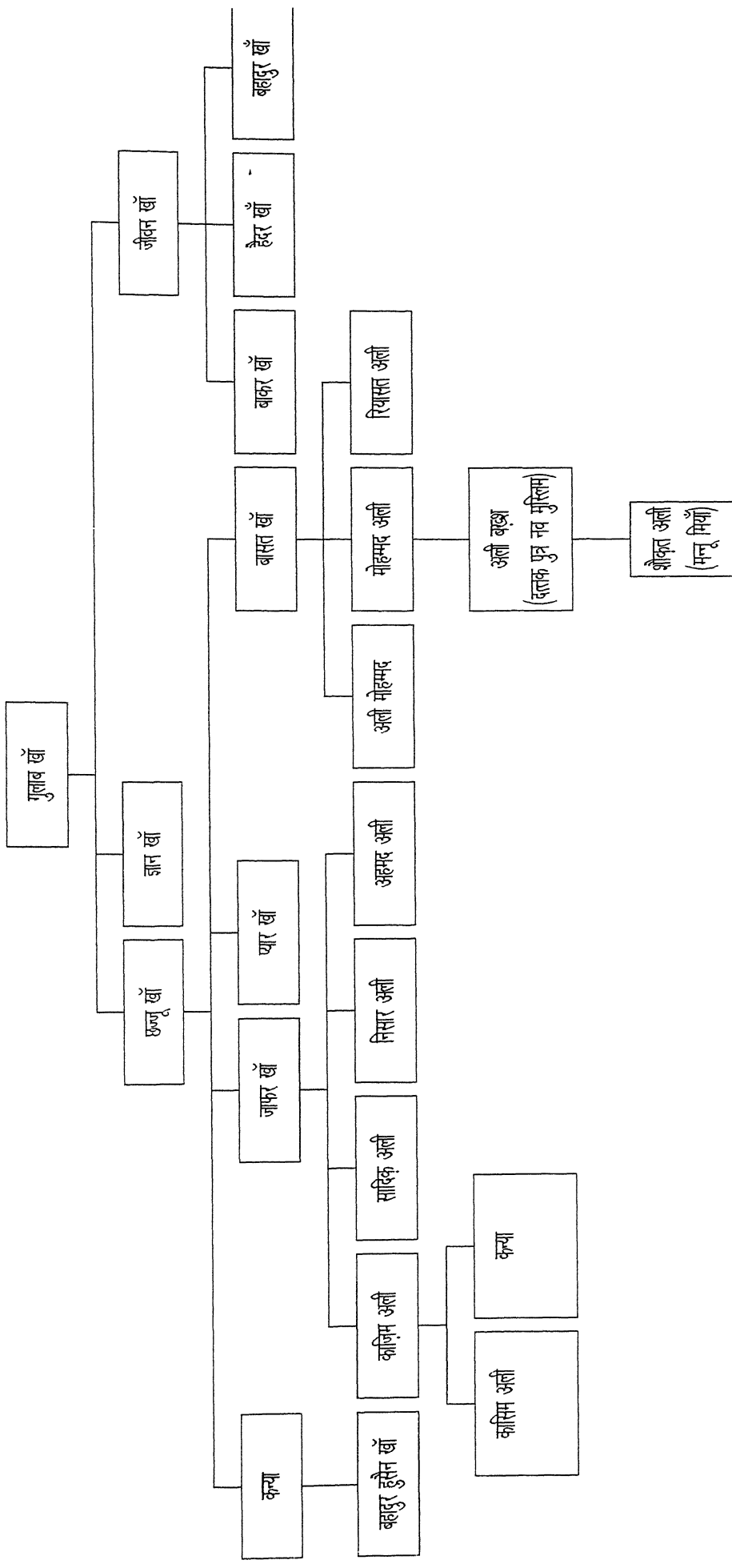
लयकारियों में ऐसा बजाते थे मानों गत ही फैल गयी हो। जयपुर बाज में स्वर कम और बोल अधिक होते होंगे जिनको गत की लय में आरम्भ करके द्विगुन, तिगुन और चौगुन में प्रस्तुत करते होंगे।

दिल्ली वाले भी इसी बाज का अनुसरण करने लगे थे परन्तु अब यह बाज दिल्ली में ही समाप्त हो गया है।

बिलास खाँ का घराना

इस घराने के मुख्य उस्तादो में तानसेन के पुत्र वंश के उस्ताद छज्जू खॉ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके पुत्र और शिष्य परम्परा मे वाद्य सगीत की विशेष उन्नति हुई क्योंकि इसी घराने में सितार को प्रसिद्ध शैली 'मसीतखानी' गत के प्रवर्तक उस्ताद मसीद खॉ और उनके पुत्र बहादुर खॉ ख्याति प्राप्त वादक हुए हैं। ये दोनों ही ऐतिहासिक पुरूष थे।

उस्ताद छज्जू खॉ, गुलाम खॉ के पुत्र थे। इनके पूर्व पूरूषों में हासन खॉ, सुधार खॉ, राजरस खॉ, करीम सेन, उदय सेन, दयाल सेन तथा बिलास खॉ (तानसेन के पुत्र) हुए हैं।

उस्ताद छज्जू खॉ का घराना 'विलास खॉ का घराना' नाम से प्रसिद्ध है।

छज्जू खाँ के तीन भाई थे - स्वयं, ज्ञान खॉ तथा जीवन खाँ।

छज्जू खॉ के तीन पुत्र थे - जाफर खॉ, प्यार खॉ तथा बासत खॉ, एक कन्या।

जाफ़र खाँ –

यह छज्जू खॉ के पुत्र थे। ध्रुपद और रबाब की शिक्षा इनको अपने पिता से ही प्राप्त हुई। जाफर खॉ के चार पुत्र थे – काजिम अली, सादिक अली, निसार अली एवं अहमद अली (अज्ञात)।

काज़िम अली –

काजिम अली के पुत्र कासिम अली थे। उनकी एक कन्या भी थी जिनका विवाह उमराव खॉ के पुत्र अमीर खॉ से हुआ। काजिम अली के शिष्यों में जितेन्द्र नाथ भट्टाचार्या का नाम प्राप्त होता है।

कासिम अली खाँ –

आप काजिम अली के पुत्र और जाफर खॉ के पौत्र थे, इनके शिष्यों मे भगवान चन्द्र दास, अभय आचरण चक्रवर्ती के नाम प्राप्त होते हैं।

सादिक अली –

आप भी जाफर खॉ के पुत्र थे। इनके मुख्य शिष्यों में पन्नालाल बाजपेयी, एकनाथ बाजपेयी (सितार), महेश चन्द्र सरकार (वीणा), मिठाई लाल (वीणा), चिन्तामणि (सुरसिंगार), सय्यद मीर नासिर खॉ, पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जुन दास (तीनों सुरबहार), वजीर खॉ (वीणा रामपुर) तथा गया प्रसाद मिश्रा का नाम उल्लेखनीय है।

निसार अली –

यह भी जाफर खॉ के पुत्र थे; इनके पुत्रों के विषय में तो कोई लिखित जानकारी प्राप्त नही हुई। इनके शिष्यों में पन्नालाल बाजपेयी (सितार), वैद्य

अर्जुन दास (सुरबहार) तथा वजीर खॉ (वीणा, रबाब, सुरसिगार) के नाम प्राप्त होते है।

प्यार खॉ -

यह छज्जू खॉ के पुत्र थे। अपने समय के बहुत बडे रबाब वादक थे। सुरसिगार नामक वाद्य का विकास इन्ही के द्वारा हुआ था। इनके कोई पुत्र नही थे। इन्होंने अपनी बहन के पुत्र बहादुर हुसैन खॉ को गोद लिया और पुत्र समान शिक्षा दी। रबाब वादक होने पर भी इनके विषय मे कहा जाता है कि इन्होंने सितार की भी अनेक रचनाए की थी जिसमें से राग काफी की गत आज भी प्रचार में है।

बहादुर हुसैन खॉ के अतिरिक्त इनके मुख्य शिष्य थे सांवलिया खॉ (इटावा) राजा आनन्द किशोर, नवाब हशमत जग (फर्रूखाबाद), कुतुबुद्दौला (लखनऊ) बख्तावर जी तथा गुरू प्रसाद मिश्र आदि के नाम प्राप्त होते हैं।

बासत खाँ -

यह भी छज्जू खॉ के पुत्र थे और मुख्य रूप से 'रबाब' बजाते थे और सुरसिगार और गायन पर भी इनका अधिकार था। यह नवाब वाजिद अली शाह के आश्रित थे। अवध के नवाबी राज्य के अन्त होने पर नवाब वाजिद अली शाह कलकत्ता गए थे। बंगाल के कलाकारों में अधिकतर बासत खाँ के ही शिष्य है। जिनमें हरकुमार ठाकुर (रबाब सितार) तथा नियामतुल्ला खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त राणा घाट के पाल चौधरी तथा पौत्र कासिम अली खॉ भी आपके शिष्य थे। बासत खाँ के तीन पुत्र थे -

१) अली मोहम्मद, २) मोहम्मद अली,

३) रियासत अली

अली मोहम्मद -

इनके पुत्रों के विषय मे कहीं कोई जानकारी प्राप्त नही होती। आप अपने समय के उत्कृष्ट रबाब और सुरसिगार वादक होने के साथ-साथ अच्छे गायक भी थे। फिर आप नेपाल नरेश के निमन्त्रण पर नेपाल चले गये। वहॉ आपको अत्यधिक सम्मान मिला, फिर वृद्धावस्था में आप काशी गए। काशी नरेश ने अपने राज्य मे आपको श्रेष्ठ स्थान दिया एवं स्वय उस्ताद के शिष्य हो गए। आपने काशी में अनेक लोगों को शिक्षा दी। आपके मुख्य शिष्यों में राजा सर सौरेन्द्र मोहन ठाकुर, तारा प्रसाद घोष, सय्यद मीर साहब, नन्हें खॉ, प्यारे खॉ (नवाब व जागीरदार-पटना, सितार वादक) पन्नालाल जैन, वैद्य अर्जुन दास, तसद्दुक हुसैन (ख्याल), रसूल बख्श अली बख्श (ध्रुपद धमार), बन्ने खॉ (बीनकार जालन्धर), मिठाई लाल, रामसेवक मिश्र (सितार) आदि के नाम प्राप्त होते है।

मोहम्मद अली (नन्कू मियाँ) -

बासत खॉ के छोटे पुत्र मोहम्मद अली थे। इनका जन्म सन् 1931 में हुआ था। आपने अपने पिता से गायन और रबाब की शिक्षा प्राप्त की थी। आपने रबाब वादक के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त की। अपने पिता की मृत्यु के बाद यह कुछ समय अपने पैतृक निवास स्थान गया में रहे, उसके बाद आप गिद्धौर राज्य में आश्रित हो गये। अपने बडे भाई अली मोहम्मद की मृत्यु के बाद यह कुछ समय काशी नरेश के भी आश्रित रहे, परन्तु बाद में फिर गिद्धौर वापस चले आये।

रामपुर के साहबजादा सादत अली खॉ (छम्मन साहब) ने आपकी ख्याति से प्रभावित होकर आपको रामपुर बुलाया और आपके शिष्य हो गए। 1924 ई० में छम्मन साहब की मृत्यु के बाद' कुछ दिन ठाकुर नवाब अली खाँ के पास लखनऊ में रहे। ठाकुर नवाब अली खाँ रचित "मारिफुन्नगमात" में मो० अली खाँ की अनेक बंदिशें संग्रहित की गयी हैं जो लगभग सभी गायन की ही हैं।

कलकत्ता के बृजेन्द्र किशोर रायचौधरी के आग्रह करने पर आप उनके निवास स्थान कलकत्ता गये। वहाँ आपने उनके पुत्र वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी को रबाब, सुरबहार और ध्रुपद गायन की शिक्षा दी। कलकत्ता में जा कर आप अस्वस्थ हो गये। कलकत्ता से गिद्धौर की यात्रा के समय में ही 7 अक्टूबर, 1927 को आपका स्वर्गवास हो गया। आपके पुत्रों के विषय में यह जानकारी प्राप्त होती है कि आपने एक हिन्दू युवक को मुसलमान बनवाकर दत्तक पुत्र के रूप में पाला था और इस नवमुस्लिम के पुत्र शौकत को यह अपना पौत्र कहते थे।

शौकत अली मन्नुमियाँ के नाम से गायक और रबाब वादक के रूप मे कलकत्ता नगर में विख्यात हुए। इनके पिता का नाम अली बख्श खाँ प्राप्त हुआ है।

मोहम्मद अली खाँ के मुख्य शिष्यों में बिहारी लाल पडा, कन्हैया लाल, गिरजाशंकर चक्रवर्ती, ठाकुर नवाब अली खाँ, छम्मन साहब, वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी तथा इनके साथ शौकत अली खाँ, तारा प्रसाद घोष आदि के नाम प्राप्त होते है।

जीवन खाँ –

यह छज्जू खाँ के छोटे भाई थे। इनके तीन पुत्र बाकर खाँ, हैदर खाँ और बहादुर खाँ थे। जीवन खाँ के पुत्रों में इनके छोटे पुत्र बहादुर खाँ ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

जीवन खाँ के दूसरे पुत्र हैदर खाँ के कोई सन्तान न थी। परन्तु उन्होंने अनेक लोगों को संगीत की शिक्षा प्रदान कर ख्याति अर्जित की। इनके शिष्यों में नवाब अली नकी खाँ (वाजिद अली शाह के दीवान) तथा हैदर खाँ (बेतिया घराना) का नाम प्राप्त होता है। छज्जू खाँ के ही भाई ज्ञान खाँ नामक एक और

कलाकार इसी घराने में हुए है, परन्तु इनके पुत्र और शिष्य परम्परा के विषय मे जानकारी प्राप्त नही हुई।

जयपुर का घराना

रहीम सेन के पूर्वज तथा उनके वंशज वादक कलाकार –

इस घराने के सुप्रसिद्ध सितारवादक उस्ताद रहीम सेन जी तानसेन के पुत्र वंशीय प्रथम सितार वादक हुए है, यह तानसेन के पुत्र विलास खॉ के वशज मियॉ सुखसेन के पुत्र थे।

मियॉ रहीम सेन जी के पूर्व-पुरूषों में गुलाम सेन, सुख सेन (प्रथम) नूर सेन (प्रथम), बहादुर सेन (प्रथम), मोहम्मद खॉ, उनके पुत्र दूल्हे खॉ (मसीद खाँ के भांजे, रहीम सेन के ससुर) आदि के नाम प्राप्त होते हैं।

मियॉ रहीम सेन जी के पुत्रों में अमृत सेन, न्यामत सेन, लालसेन तथा एक कन्या थी।

मियॉ अमृत सेन उस्ताद दूल्हे खॉ को नाना और उस्ताद मसीद खॉ को बाबा कहते हैं।

अमृत सेन, लाल सेन और न्यामत सेन के कोई सन्तान नही थी। अतः मियॉ अमृत सेन ने अपनी बहन के लड़के हैदर बख्श के पौत्र वज़ीर खॉ के पुत्रों अमीर खॉ और निहाल खॉ को पुत्र मानकर सगीत की शिक्षा दी थी।

अमीर खॉ के दो पुत्र थे - फिदा हुसैन और फजल हुसैन, दोनों ही सितार वादक थे।

रहीम सेन के शिष्यों में जयपुर घराने के हुसैन खाँ भी एक प्राचीन सितारवादक हुए हैं।

जयपुर घराना

सुखसेन
रहीम सेन
हुसैन खॉं (शिष्य)
अमृत सेन (पुत्र)
लालसेन (पुत्र)
न्यामत सेन (पुत्र)
कन्या + वजीर खाँ
निहाल सेन (दत्तक पुत्र)
निहाल सेन
अमीर खाँ
कन्या
कन्या
फिदा हुसैन
फ़जल हुसैन
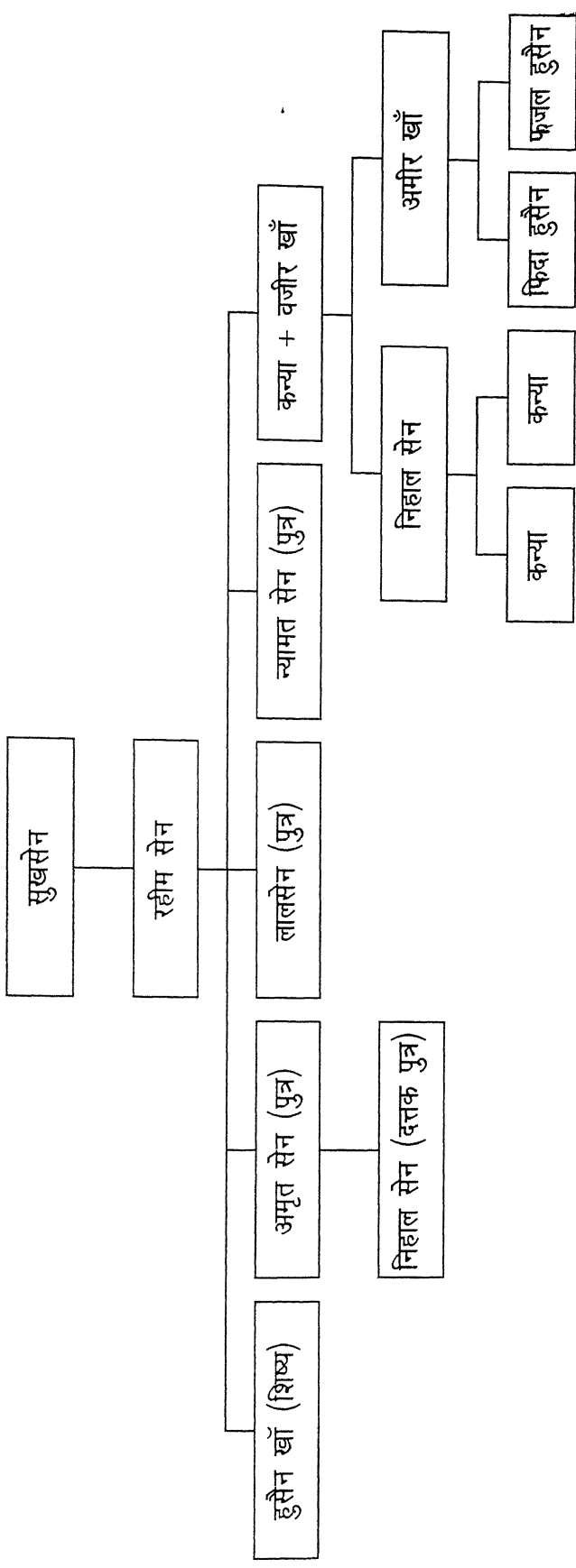
अमृत सेन के प्रमुख शिष्यों में न्यामत सेन, हैदर बख्श के पौत्र मम्मू खॉ, हाफिज खॉ, अमृत सेन के जीजा, अमीर खॉ, झझर के नवाब अलवर के राजा शिवदान सिह तथा सुदर्शनाचार्य शास्त्री के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अमीर खॉ जी के शिष्यों मे उनके दोनों पुत्र फिदा हुसैन, फजल हुसैन, ग्वालियर के राजकुमार माधवराव तथा लश्कर के श्री बालकृष्णपति बाजपेयी भीमपुरे, श्री पाद बुआ (बहरे बुआ), बरकतुल्ला खॉ, इमदाद हुसैन खॉ के नाम भी उल्लेखनीय है।

रामपुर का घराना
(तानसेन का कन्या वंश)

तानसेन के कन्यावश के विषय में वर्तमान विद्वान लेखक आचार्य कैलाशचन्द्र बृहस्पतिजी का विचार है कि तानसेन के सरस्वती नामक कोई कन्या थी ही नही। उनका विचार है कि सरस्वती मिश्री सिंह या नौबत खॉ आदि मात्र कल्पनाएं मात्र हैं।

परन्तु अनेक लेखकों ने सदारंग को तानसेन की कन्या वंशावली के अन्तर्गत माना है।

अत. निम्नलिखित कलाकारों को कन्यावंश का ही मानकर वर्णन किया गया है :

उमराव खाँ -

यह सितार के आविष्कारक खुसरो खॉ के एकमात्र पुत्र माने गए हैं। तानसेन की कन्यावंश के उस्ताद उमराव खॉ एक बड़े विद्वान हुए हैं। उनके पिता का नाम आचार्य बृहस्पति ने हैदर खॉ लिखा है, उमराव खाँ के पूर्वपुरूषों में जीवन शाह, प्यार खाँ (अंगलीकट), भूपत खाँ आदि के नाम प्राप्त होते हैं।

फिरोज खॉ (अदारंग सितार को फिरोज खानी गतों के प्रवर्तक) सदारग के भतीजे दामाद तथा शिष्य थे। यह गायक के अतिरिक्त वीणा वादन में भी दक्ष थे। यह प्रथम रूहेले नवाब अली मोहम्मद खॉ के पुत्र सादुल्ला खॉ के भी आश्रित रहे।

दरभंगा घराना (सितार)

बाबू खॉ (इन्दौर) -

आपका जन्म नरवर स्टेट में सन् 1893 में हुआ था। आप नरवर स्टेट के प्रसिद्ध बीनकार हसन खॉ के पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद बन्दे अली खॉ साहब के प्रमुख शिष्य उस्ताद मुराद खॉ से आपने बीन की शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त कर आप इन्दौर राज्य के दरबारी सगीतज्ञ के रूप में नियुक्त हुए। आप किराना घराने के मुख्य तंत्रकारो में गिने जाते थे। ठोंक में घसीट और झाला आपकी शैली की मुख्य विशेषताएं थी।

उस्ताद बाबू खॉ वीणा के अतिरिक्त रबाब, सितार और सरोद का भी वादन करने में सिद्धहस्त थे।

आपके मुख्य शिष्य है - बम्बई के उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खॉ साहब।

रामेश्वर पाठक -

श्री राजकुमार पाठक के घराने में श्री रामेश्वर पाठक एक प्रसिद्ध सितारवादक हुए। आपका जन्म नारायणपुर ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम अपूछ पाठक था जो दरभंगा घराने के प्रवर्तक राजकुमार पाठक के पुत्र थे। आपने भारत के अनेक संगीत समारोहों में अपना सितारवादन प्रस्तुत किया तथा आपके ग्रामोफोन रिकार्ड भी बने।

बलराम पाठक –

श्री बलराम पाठक अपनी एक विशिष्ट वादन–पद्धति (तीनताल के अतिरिक्त गतों का वादन) के लिए विख्यात है। आप दरभगा के श्री रामेश्वर पाठक के घराने के प्रतिनिधि थे। श्री बलराम पाठक ने सगीत की शिक्षा अपने पिता तथा चाचा प० गणेश पाठक से प्राप्त की थी।

श्री बलराम पाठक की कुछ विलम्बित गतें 11वी मात्रा से प्रारम्भ होती हैं जबकि समस्त विलम्बित गते 12वी मात्रा से प्रारम्भ होती है।

राग सिन्दूरा –

निस	रेप	ग	सरे	नि	स
दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
		३			

प	प	प	पनि	धनि	ध	मप	ग	सरे	निस
दा	दा	रा	दिर	दिर	दा	दिर	दा	दा·	रा·
x				२				०	

पन्नालाल बाजपेयी –

पूर्वी गत शैली के सितारवादकों में उस्ताद पन्नालाल बाजपेयी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप काशी में रहते थे और आपको सितार की शिक्षा जाफर खॉ के पुत्र उस्ताद निसार अली से प्राप्त हुई थी। आपने उस्ताद सादिक अली खॉ साहब से भी शिक्षा प्राप्त की थी। आप दो मिजराबों से सितार वादन करते है। आपके वादन में लय की काट, तराश व लय की बॉट अद्वितीय थी।

गोस्वामी पन्नालाल –

दिल्ली में सितार वादन को लोकप्रियता का दर्जा प्रदान करने का मुख्य श्रेय पन्नालाल गोसाई जी को है।

आपकी वादन की विशेषता थी कि आप गत वादन में तोडों का प्रयोग न करके बोलों को ही विभिन्न लयकारियों में प्रस्तुत कर लय की बॉट के आधार पर अपना वादन प्रस्तुत करते थे। आप 'नाद विनोद' नामक पुस्तक के रचयिता हैं।

वैद्य अर्जुन दास खन्ना –

अव्यावसायिक सितार वादकों में वैद्य अर्जुन दास भी एक ख्याति प्राप्त सितार वादक हुए है। आप उस्ताद निसार अली खॉ (जाफर खॉ के पुत्र) के शिष्य थे। आप पूर्वी बाज के मुख्य सितारवादकों में हैं।

आबिद हुसैन खॉ –

आपका जन्म सन् 1907 में हुआ। आप रजब अली खॉ के वंशज है। आप मसीतखानी गत शैली के विशेषज्ञ माने जाते है। आपके बाज का मुख्य अग ध्रुपद अग से आलाप और जोड माना गया है।

लखनऊ घराना

उस्ताद मोहम्मद हुसैन खाँ :

उस्ताद मो० हुसैन खॉ का जन्म लखनऊ में सन् 1870 में हुआ था। इनके पिता का नाम उस्ताद दूल्हे खाँ था। उस्ताद दूल्हे खॉ ध्रुपद, सादरा, होरी और खयाल गायक थे। उस्ताद मो० हुसैन खॉ के पूर्व-पुरूषों में मेहदी हसन खॉ, फिदा हुसैन खॉ, वारिस अली खॉ तथा गुलाम अब्बास खाँ आदि के नाम प्राप्त होते हैं।

उस्ताद मो० हुसैन खाँ को अपने मामा उस्ताद मेहदी हसन खॉ (जो हसन खाँ अम्बैठा वालों के शिष्य थे) से बीन की शिक्षा मिली थी तथा आपने गायन की शिक्षा अपने पिता दूल्हे खाँ से प्राप्त की थी। यह कुछ समय इटावा रियासत में रहे परन्तु यहाँ दिल नही लगा और कुछ ही समय बाद लखनऊ वापस चले आये

उस्ताद मोहम्मद हुसैन ख़ाँ का घराना

- मेहन्दी हसन खॉ
- गुलाम अब्बास खॉ
  - शिष्य, भाजव, दत्तक पुत्रः-
  - खलीफा मो० हुसैन खॉ (बीनकार)
- गुलाम वारिस खॉ
  - दूल्हे खॉ
    - पुत्र — खलीफा मो० हुसैन खॉ (शिष्य एव भतीजे)
    - पुत्र — रजा हुसैन खॉ
    - पुत्र — बाकर खॉ
      - अब्बास हुसैन खॉ
        - शिष्यः-
        - सिकन्दर हुसैन (शहनाई)
        - नवाबू खॉ (शहनाई)
        - अमीर अहमद (हार्मोनियम)
      - फ़ारूख खॉ
      - कन्या
    - पुत्र — ख़लीफा अहमद हुसैन खॉ
      - रहमत हुसैन खॉ
        - बशारत हुसैन
          - शिष्य.-
          - गोपाल चक्रवर्ती
          - भारती बोस
        - तजम्मुल खॉ
          - शिष्य.-
          - सन्तोष मालवीय
          - शम्भू गोस्वामी
          - दीपक मुखर्जी
          - रेखा निगम
          - कल्पना खन्ना
          - श्यामल देशपाडे
        - रियायत हुसैन
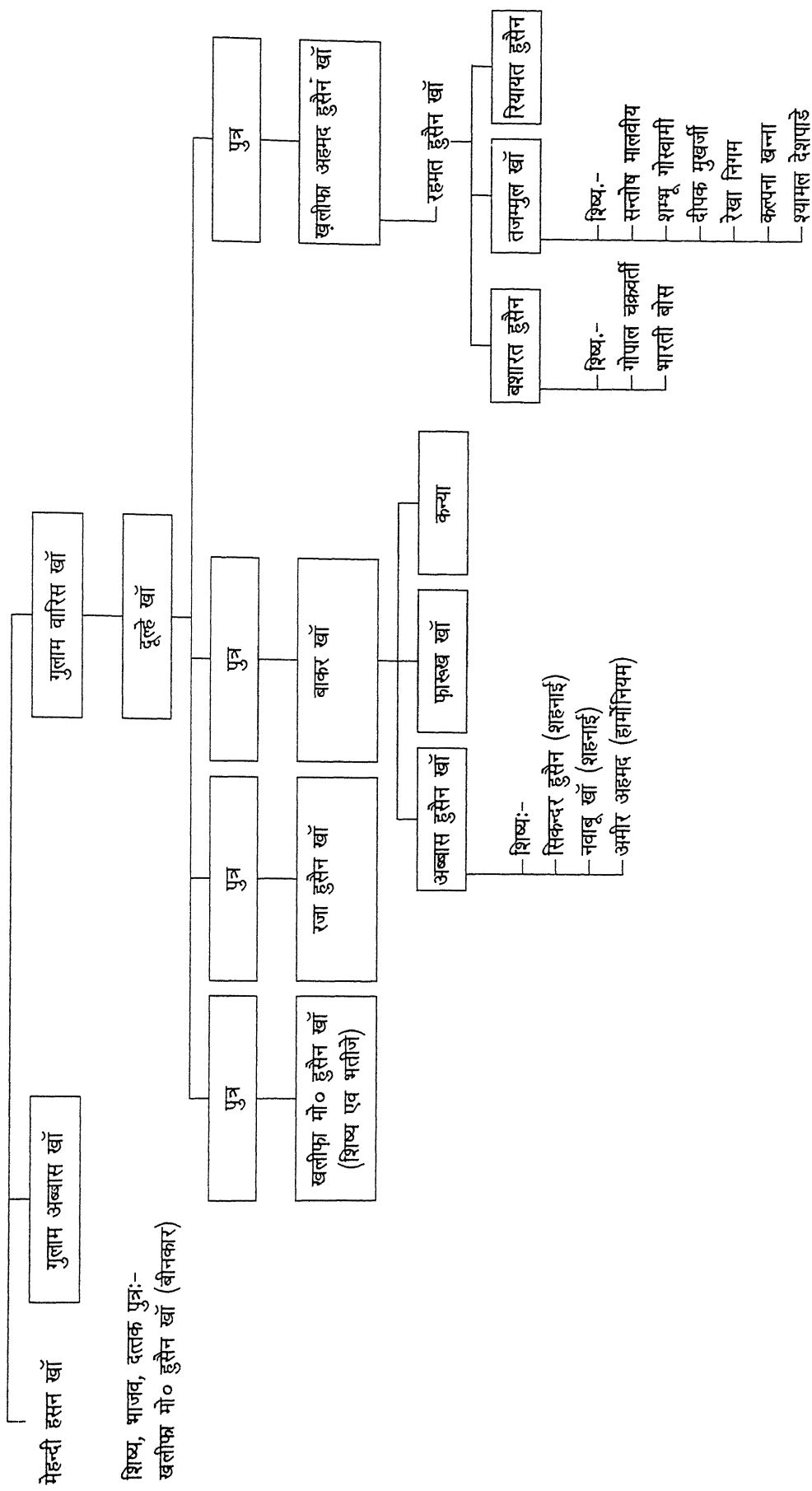
और यही रहे। आप बहुत ही स्वतन्त्र स्वभाव के थे। कुछ चुनिदा जगह ही आप अपना वादन प्रस्तुत करते थे। ठाकुर नवाब अली ने अनेकों बार इनसे इनका वादन सुना। ठाकुर नवाब अली ने अपनी पुस्तक "मारिफुन्न नगमात"[1] के दूसरे भाग में इनकी बनायी हुई अनेक रचनाओं को सग्रहीत किया। इस पुस्तक में अधिकाश रचनायें उस्ताद मो० अली खॉ (उस्ताद ननकू मिया बासत खॉ के पुत्र) की है। परन्तु गायक मो० हुसैन खॉ (लखनऊ) के नाम से बन्दिशें हैं वह मो० हुसैन खॉ बीनकार की बनायी हुई है।

उस्ताद मो० हुसैन खॉ के कोई सन्तान नही थी, आपने अपने भई खलीफा अहमद हुसैन के पुत्र रहमत हुसैन खॉ को गोद लेकर पुत्र के समान शिक्षा दी थी। आपको बीन और गायन के अतिरिक्त सितार वादन पर भी पूर्ण अधिकार था। बीनकार होने के नाते आपने कभी किसी सभा मे सितार वादन प्रस्तुत नही किया परन्तु अनेक लोगो को सितार की शिक्षा ढी थी जिनमें उस्ताद रहमत हुसैन खॉ, डी०एन० सान्याल, बशीर खॉ, टूलु दत्ता (सितार अध्यापिका – शशि भूषण इण्टर कॉलेज, लखनऊ) के नाम उल्लेखनीय है। आपका लखनऊ मे सन् 1962 में स्वर्गवास हो गया। उनकी यह रचना आनुवाशिक रूप से आज भी प्रचार में है:-

<u>गत यमन : रचनाकार उस्ताद मो० हुसैन खाँ</u>

ग	–	ग	रे	ग	म॑म॑	प	म॑	–	निनि	ध	प	म॑	गग	रे	ग
दा	–	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	–	रदा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
–	पप	म॑म॑	गग	रे–	रेनि	–रे	स	–	निनि़	ध़	नि़	–	रेरे	नि़	रे
–	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	–र	दा	–	रदा	दा	रा	–	दिर	दा	रा
x				२				०				३			

इस गत के तीन विभागों पर अनागत के कार्य पर बन्दिश किया गया है। यही इस गत की विशेषता है।

[1] मारिफुन्न नग़मात – 1924 प्रथम संस्करण, पृष्ठ–25

रजा हुसैन खॉं :

दूल्हे खॉं साहब के दूसरे पुत्र उस्ताद रजा हुसैन खॉं पहले लखनऊ में, और बाद में रामपुर रियासत में रहे। रामपुर के सूत्रों से ज्ञात होता है कि उस्ताद रजा हुसैन खॉं अपने समय के अच्छे खयाल गायक थे। इनके दो पुत्र थे – जिनमें बडे पुत्र अब्बा हुसैन खॉं उर्फ अब्बन खॉं ही सगीत व्यवसायी थे; यह भी खयाल गायक थे।

उस्ताद दूल्हे खॉं के तीसरे बेटे बाकर खॉं भी उच्च कोटि के गायक थे। युवावस्था में ही इनकी मृत्यु हो गई। उस्ताद दूल्हे खॉं के सबसे छोटे पुत्र खलीफा अहमद हुसैन खॉं थे।

रहमत हुसैन खॉं :

आपका जन्म लखनऊ मे 1915 में हुआ था। आपने बीन व सितार की शिक्षा अपने बडे चाचा खलीफा मो० हुसैन खॉं से प्राप्त की। आप 1943 से 1972 तक आकाशवाणी लखनऊ में स्टाफ-आर्टिस्ट पद पर रहे। सुगम संगीत में सितार वादन को उचित स्थान दिलाने के लिए भी आपने बहुत परिश्रम किया। आपने ठुमरी अग के आधार पर मध्यलय की सितारोपयोगी अनेक गतों की रचना की है। आप कम बोलो से युक्त ठुमरी अंग की गत बजाते थे। आपके वादन में विशेषकर मन्द्र स्वर के आलाप का बहुत्व रहता था तथा आप मध्यलय की गतें ही अधिक बजाते थे। इनकी गतों की मुख्य विशेषता गत का समापन तिहाई बनकर आना थी। आपके शिष्यों में विमल मिश्र, पावला सरकार, गौरीशंकर, सपना भट्टाचार्य, विमल कानूनगो, बालकृष्ण नायर आदि प्रमुख है। आपका 57 वर्ष की आयु में 13 दिसम्बर, 1972 को लखनऊ में स्वर्गवास हो गया।

गत गौड़ सारंग

ग	मम	रे	स	-	रेरे	ऩि	स	ग	रेरे	म	ग	प	म॑म॑	ध	प
दा	दिर	दा	दारा	-	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			
म॑	पप	ध	नि	स	म	प	ध	-	ग	म	रे	ग	-	-	ग
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	-	दा	रा	दा	दा	-	-	दा
०				३				x				२			
म	रे	ग	-	-	ग	म	रे	ग	-	प	-	रे	-	स	-
रा	दा	दा	-	-	दा	रा	दा	दा	-	-	दा	दा	-	दा	-
०				३				x				२			

गत का समापन तिहाई लगाकर किया गया है।

इस प्रकार की गतें गुलाम मुहम्मद और सज्जाद मोहम्मद खॉ के घराने में ही सुनने को मिलती है।

बशारत हुसैन खॉ - (सितार) :

आपका जन्म 1941 मे लखनऊ में हुआ था। आपने सितार की शिक्षा अपने बाबा तथा खलीफा मो० हुसैन खॉ से प्राप्त की। आप 12 वर्ष की कम उम्र से ही सितार के कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगे। आप आकाशवाणी के कलाकार रहे। आप नेरूबी में अपना सितार शिक्षा का स्कूल चला रहे है। आपके मुख्य शिष्यों में लखनऊ के गोपाल चक्रवर्ती, भुवन मोहिनी निगम, सुहासिनी आदि के नाम उल्लेखनीय है। आपकी शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त सितार में सुगम सगीत के प्रवर्तक है तथा धुन वादन में भी कुशल है। आप तराना अंग की रजाखानी गतें बजाते थे।

तजम्मुल खॉं :

आपका जन्म 24 अगस्त, 1945 को लखनऊ में हुआ था। आपने अपनी संगीत शिक्षा अपने पिता श्री रहमत हुसैन खॉ और बड़े भाई बशारत हुसैन से प्राप्त की तथा आपने उस्ताद करामत उल्ला खॉं के घराने के मुख्य शिष्य

इलाहाबाद के प्रो० बनवारी लाल जी से भी सितार की शिक्षा प्राप्त की। आपने 1956 से अध्यापक के रूप में अपना संगीत जीवन प्रारम्भ किया था। आपने "सप्ततन्त्रिका" दो भाग तथा संगीत के प्राचीन आधुनिक इतिहास पर एक पुस्तक की रचना की है। आप घरानेदार कलाकार होते हुए भी सगीत के शास्त्र पक्ष से भी पूर्णतया परिचित है।

आप मुख्य रूप से अध्यापक हैं। आपके मुख्य शिष्यों मे श्री सन्तोष मालवीय, शम्भू गोस्वामी : इलाहाबाद; दीपक मुखर्जी, शशि कश्यप : शिमला; बाबू खॉ : जौनपुर; अजीजुल हसन : कानपुर; रेखा निगम : लखनऊ; कल्पना खन्ना . काशिपुर आदि के नाम उल्लेखनीय है।

लखनऊ घराने के अन्य सितार वादक

नवाब हशमत जंग :

"लखनऊ के प्रमुख अव्यवसायिक सितार वादको में फरूखाबाद के रईस नवाब हशमत जंग बहादुर का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। आप वाजिद अली शाह कालीन उच्च कोटि के सितार वादकों में गिने जाते हैं। आपको सितार की शिक्षा तानसेन वशीय उस्ताद प्यारे खॉ से प्राप्त हुई थी। आपने ठुमरी अग की अनेक गतों की रचना की थी जो कालान्तर मे "पूरब बाज शैली" के नाम से लोकप्रिय हुई थी।[1]" आपकी शैली के प्रमुख अनुयायी में लखनऊ के स्व० रहमत हुसैन खॉ का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गत : बागेश्री – रचना : हशमत जंग

				म	धध	नि॒	स	नि॒	ध	–	म	ग॒	मम	ग॒	रे
				दा	दिर	दा	रा	दा	दा	र	दा	दा	दिर	दा	दा
			३				X				२				
–	सनि	–	सध़	–नि॒	स	–स '	ग॒	–	ग॒	म	–	म	ध	–	ध
–	दादां	–	दादा	रादा	दा	रा	दादा	र	दा	दा	रा	दा	दा	र	दा
०			३				X				२				

---

[1] लखनऊ की संगीत परम्परा – सुशीला मिश्रा, पृष्ठ 63

उपर्युक्त 'दा-र' बोलों के आधार पर गत की बन्दिश तैयार की गई है। इस गत की मुख्य विशेषता यह है कि गत की पहली आवृत्ति में गत सामान्य रूप से चलती है। परन्तु दूसरी आवृत्ति से गत का स्वरूप खुलता है। इस प्रकार की कई गतें आज भी प्रचार में है।

कुतुब अली (कुतुबुद्दौला) :

यह मूलरूप से बरेली के निवासी थे, परन्तु इनकी गणना वाजिद अली शाह के समय के सितार वादकों में लखनऊ के प्रमुख कलाकारों में की जाती है। इनको भी सितार की शिक्षा उस्ताद प्यारे खॉ से ही प्राप्त हुई थी। "मअदनुल मौसीकी" के लेखक मोहम्मद करम इमाम ने इनके वादन की बहुत प्रशंसा की है।

इनके वादन के रूप मिर्जा रहीम बेग लिखित "नगमा-ए-सितार" नामक पुस्तक से प्राप्त बन्दिश इस प्रकार है :-

पूर्वी बाज गत खमाज

सं	नि॒	ध	प	म	ग	स	स
दारादा	दारादा	दारादा	दारादा	द	दारादा	दा	दादादा
म	प	ध	नि	सं	नि	ध	प
दारा	दार	दा	दिर	दिर	दिर	दार	दार

यह गतें सुश्री सध्या अरोड़ा के शोध के प्रबन्ध से उद्धृत हैं। इस गत में बोलों के छन्द के रूप में प्रयोग किया गया है।

नवाब अली नकी खॉं :

नवाब अली नकी खॉ जो कि वाजिद अली शाह के वज़ीर थे, एक कुशल सितारवादक भी थे। यह भी उस्ताद प्यार खॉ के शिष्य थे।

अब्दुल गनी खॉ :

आप भी उ० प्यार खॉ के शिष्य थे, सेनिया घराने की ही एक शाखा "काल्पी घराने" के नाम से प्रसिद्ध थी - आप इसी घराने के वंशज थे। आपके पूर्वपुरूषों में आपके पिता आजम खॉ, इमाम खॉ, मेद खॉ तथा हुसैन खॉ के नाम प्राप्त होते है।

आप ध्रुपद शैली के बाज के विशेषज्ञ थे। आपके वादन मे आलाप के चारों चरण तथा जोड झाला लड़-गुथाव का सुन्दर मिश्रण था। आप मुख्यतः मसीतखानी गतें ही अधिक बजाते थे। आपकी द्रुत लय की गते भी मुश्किल होती थी।

आपके शिष्यों में लखनऊ के उस्ताद युसुफ अली खॉ का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

उस्ताद युसुफ़ अली खाँ :

लखनऊ के पुराने और लोकप्रिय सितार वादकों में उस्ताद युसुफ अली खॉ का नाम उल्लेखनीय है। आपको सितार की शिक्षा काल्पी घराने के उस्ताद गनी खॉ से प्राप्त हुई थी। आपके विषय में कहा जाता है कि आप स्वयं अपने हाथ से निर्मित सितार पर ही अपना वादन प्रस्तुत करते थे।

आपके बाज में पुरानी तन्त्रकारी का पूर्ण स्वरूप रखते थे। आलाप ध्रुपद अंग से करते थे पर ठुमरी अंग के आलाप और ठोंक झाले पर आपको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। मुख्य रूप से आप रजाखानी शैली के विशेषज्ञ माने गये है।

आपको 1958 में "पद्मश्री" की उपाधि से विभूषित किया गया।

आपके शिष्यों में पुत्र इस्मायल खॉ, उनके मित्र के पुत्र इलियास खॉ तथा नवीन चन्द्र पन्त आदि के नाम प्राप्त होते हैं।

उस्ताद इस्मायल खॉ :

आप युसुफ अली खॉ साहब के पुत्र है तथा उनकी वादन पद्धति के प्रवर्तक है।

गत भीमपलासी

म	गग	पप	मम	ग	-गरे	-रे	मम	ग-	गरे	-रे	गग
दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दिर	दा	-रदा	-र	दिर
३				x				२			
रे	-रेस	-स	रेरे	नि	सस	ग	म	प	-	पप	म
दा	-रदा	-र	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	-रदा	दा	दा
३				x				२			
-	पप	ग	म	प	निनि	सस	गंग	रें-	रेंस	-	सनि
-	रदा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-	रदा
३				x				२			
ध	पप	ध	म	-	पप	नि	सं	-	नि	सं	-
दा	दिर	दा	दा	-	रदा	दा	दा	-	दा	दा	-
३				x				२			

उपर्युक्त गत में मुख्य रूप से दिर दा-र के छन्द की आवृत्ति कर गत की बन्दिश की गयी है। 'दा-र दा-र' के बाद 'दिर' पर बल देकर गत बजाने की प्रथा अब लगभग समाप्त हो चुकी है। इस दृष्टि से यह एक दुर्लभ गत है।

उस्ताद इलियास खॉ :

आप बासत खॉ रबाबिए के घराने का वशज बताया है। उनका कहना था कि "मैंने सितार की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता सखावत हुसैन खॉ और अब्दुल ग़नी खाँ से प्राप्त की।" आपके पिता अब्दुल्ला खॉ के दामाद थे। आपका सरोदियों का घराना है। आपने युसुफ खॉ से भी सितार सीखा है। आप वीणा, रबाब, सुरसिंगार का मिश्रित बाज बजाते हैं।

अपने युग के प्रख्यात संगीतकार सरोद नवाज़ उस्ताद सखावत खॉ के सुपुत्र उस्ताद इलियास खाँ वर्तमान सितारवादकों में अपना अलग ही मुकाम रखते थे। उन्हें तानसेन परम्परा का 'प्रखर नक्षत्र' कहा गया है। आपका जन्म सन्

1924 के लगभग हुआ। बासत खॉ, प्यार खॉ और जाफर खॉ जैसी महान सांगीतिक विभूतियों द्वारा इलियास खॉ को संगीत की तालीम मिली थी। आपके नाना उस्ताद करामतुल्ला खॉ और असदुल्ला खॉ कौकब अपने जमाने के दिग्गज सरोदवादक थे, इनसे भी इलियास खॉ को सगीत उच्चस्तरीय शिक्षा मिली।

स्व० उस्ताद इलियास खॉ का बाज शुद्ध ध्रुपद शैली का बाज है। इनके आलाप वादन में मीड और गमक का काम अधिक होता है। यह अपने वादन में राग के शुद्ध स्वरूप को बडी सुन्दरता से प्रस्तुत करते हैं। राग में आलाप के बाद जोड का काम भी ध्रुपद शैली के ही समान कठिन और प्राचीन है। पहले स्थायी, संचारी, अन्तरा और आभोग के ठाह में जोड बजाते है। धीरे-धीरे इसकी लय तेज़ करते जाते है और अन्त में सुरसिंगार और रबाब का काम भी जोड में दिखाते है। जोड के बाद फिर अन्तरा मे झाले के विभिन्न रूपों का प्रयोग दारादादा, रादादादा, रारादादा, दारादा, रादादारा इत्यादि करते हैं।

आलाप, जोड और झाला के बाद मसीतखानी बाज का प्रयोग करते हैं। बाराबर की लय में विभिन्न मिजराबों का प्रयोग करते हुए गत की बन्दिश के अनुसार ही उन्हें बजाना तथा गत को ही विभिन्न मिजराबों द्वारा बदल कर बजाना इनकी विशेषता है। आप तोडों को गमक के साथ तथा 'दिर दिर' का प्रयोग अत्यधिक रूप में गतादि में करते हैं।

स्वयं उस्ताद इलियास खॉ अपनी शैली के विषय में कहते है -

> "आलाप, जोड, झाला, ठोंक, लडगुथाव में उन सब मिजराबों व नियमों का विस्तार करता हूॅ जो सेनियों की परम्परागत तन्त्रबाज की शैली में रबाब, सुरसिंगार, बीन आदि में बजाया जाता रहा है। सेनिया वंशीय गतों की विशेषताओं के अनुसार मैं अपने पूर्वजों से प्राप्त उन गतों को जो कि 64 मात्राओं की होती हैं, जिनकी 4 आवृत्तियों के बाद सम आता है बहुत ही सहजतापूर्वक बजाता हूॅ। लखनऊ की पूरब बाज की गतों को जो कि ठुमरी तराने में बॅधी

हुई है और जो 150 वर्ष पहले से तन्त्र में बजने लगी थी, मै अपने सितारवादन में प्रयोग करता हूँ। आजकल दादरा, कहरवा में जो बजता है मै उसे नहीं बजाता।”

इलियास खॉ जीवन भर सगीत के प्रति समर्पित रहे। भातखण्डे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ मे सितार के प्रोफेसर पद पर रहकर आपने छात्रों को खुले दिल से शिक्षा प्रदान की तथा आकाशवाणी, दूरदर्शन और बडे-बडे संगीत सम्मेलनों में बजाकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की। अनेक विदेशी सगीतकारों ने भी उस्ताद से सीखा।

2 मार्च, 1989 को लखनऊ में उस्ताद इलियास खॉ का देहान्त हो गया। आपके एकमात्र पुत्र इदरीस खॉ भी योग्य संगीतकारो में स्थान रखते है।

किराना घराना (वाद्य)

नज़ीर खाँ :

आपके तीन पुत्र थे - छम्मन खॉ, दबीर खॉ तथा दिलदार खॉ। नजीर खॉ ने अपना अधिकांश समय ग्वालियर में व्यतीत किया। उसके बाद यह जयपुर, जोधपुर तथा इन्दौर आदि स्थानों में भी रहे। अन्त में आप जोधपुर नरेश के आश्रित हो गए। आपका सन् 1910 में आगरे में स्वर्गवास हुआ। वज़ीर खाँ के दूसरे पुत्र नसीर खॉ के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नही हुई। वज़ीर खाँ के तीसरे पुत्र सगीर खॉ के लिए मात्र इतनी ही जानकारी मिलती है कि इन्होंने बंगाल के कुछ रईस जैसे देवेन्द्र मोहन ठाकुर, वीरेन्द्र किशोर रायचौधरी आदि को संगीत की शिक्षा दी थी।

नजीर खाँ के पुत्र दबीर खाँ वर्तमान समय में प्रसिद्ध बीनकार माने जाते हैं। नज़ीर खाँ के शेष दो पुत्रों छम्मन खाँ और दिलदार खाँ के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नही हुई।

बन्दे अली खाँ :

किराना घराने के विषय में यह माना जाता है कि यह मुख्य रूप से गायकों का ही प्रसिद्ध घराना माना गया है। परन्तु गुलाम जाकिर खॉ के पुत्र बन्दे अली खॉ जैसे वादक "वाद्य सगीत" में किराना घराना के प्रथम प्रतिष्ठाता माने गये है। आपने अपनी मेहनत और ज्ञान से पूरे भारत में प्रसिद्धि पायी। इनको बीन की शिक्षा अपने पिता, चाचा और निर्मल शाह से प्राप्त हुई।[1] इनके पूर्वपुरूषों में रहीम अली खॉ का नाम उल्लेखनीय है। बन्दे अली खॉ की मात्र दो पुत्रियॉ थी जिनका विवाह मुहम्मद जान खॉ के दोनों पुत्रों जाकिरूद्दीन और अलाबन्दे से हुआ था।

यह दोनों भाई मियॉ आलम सेन जी के शिष्य थे। वर्तमान समय में जाकिरूद्दीन और अलाबन्दे की गणना बहुत ही गुणी कलाकारों में की जाती है।

मलिका जान (आगरा), गिरिजा शंकर चक्रवर्ती, गफुर खाँ, प्यारे साहब, मौजुद्दीन खॉ (ठुमरी) तथा बशीर खॉ (हारमोनियम) का नाम उल्लेखनीय है।

यह तो विदित है कि हारमोनियम वादक मुख्य रूप से गायक ही होते थे और इन वादकों ने गायन शैली के आधार पर ही सितार में वादनोपयोगी गतों की भी रचना की है। आज से कुछ वर्षों पूर्व हारमोनियम का संगीत वाद्य के अतिरिक्त स्वतन्त्र-वादन के रूप में भी प्रयोग होता था। भइया साहब 'गणपतराव' के शिष्य बशीर खॉ कलकत्ते में ही रहे थे और जीवन के अन्त भाग में यह अपने जन्मस्थान लखनऊ चले आए थे। यहॉ इनके अनेक शिष्य हैं।

गुलाम मोहम्मद खाँ सज्जाद मोहम्मद खाँ :

तन्त्रवादकों मे इन पिता-पुत्रों, का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। इन दोनों ने सुरबहार और सितार की वादन पद्धति में विशेष रूप से बहुत

---

[1] सगीतज्ञों के सस्मरण, पृष्ठ 160

योगदान दिया, जिसका अनुसरण कर अनेक वादकों ने ख्याति पायी। बॉदा निवासी गुलाम मोहम्मद ने सितार वादन पर अद्‌भुत अधिकार प्राप्त कर लिया था। इनका सितार बीन व रबाब से कम नहीं था। इनकी ठोंक इतनी प्रचण्ड और स्पष्ट थी कि उमराव खॉ रबाब वादक के अतिरिक्त अन्य किसी की नही थी।

उस्ताद गुलाम मोहम्मद खॉ तानसेन के पुत्र वशीय प्यार खॉ और कन्या वशीय उमराव खॉ से शिक्षा प्राप्त की। अत इनको ध्रुवपद और वीणा की पूर्ण शिक्षा प्राप्त हुई थी।

बन्दे अली खॉ के मुख्य शिष्यों में वहीद खॉ, मुराद खॉ, अब्दुल अजीज खॉ (विचित्र-वीणा), अमदाद खाँ, भइया गणपत राव, रजब अली खॉ, रहीम खॉ (बीन), हैदर बख्श आदि के नाम प्राप्त होते है। बन्दे अली खॉ के मुख्य शिष्य वहीद खॉ के पुत्रों में मजीद खॉ, लतीफ़ खॉ, सद्‌दल खॉ, गुलाम कादिर खॉ और हमीद खाँ के नाम प्राप्त होते हैं। वहीद खॉ के बडे पुत्र मजीद खॉ के एकमात्र पुत्र मोहम्मद शफी बीनकार व सितार वादक के रूप मे प्रसिद्ध हुए हैं।

मुराद खॉ अपने समय के शीर्षस्थ सितारवादक हुए हैं। इनके पुत्र निसार खॉ भी विख्यात कलाकार थे। श्री मुराद खॉ के शिष्यो में बाबू खॉ (इन्दौर - सितार : अब्दुल हलीम जाफर खॉ के गुरू), मुशर्रफ खॉ (अहमदाबाद), श्री कृष्णराव पण्डित (कोल्हापुर), श्री बन्दे अली खाँ के शिष्यों में हैदर बख़्श, सारंगी-वादक अपने समय के उच्चकोटि के कलाकार थे। आपने रजब अली खॉ साहब के अतिरिक्त आबिद हुसैन, विमल मुखर्जी आदि को भी शिक्षा दी।

उस्ताद बन्दे अली खाँ के शिष्य भइया गणपत राव के शिष्यों में गौहरजान (कलकत्ता), मोतीबाई (बनारस) प्रमुख हैं।

गुलाम मोहम्मद खॉ ने सितार के ही समान परन्तु उससे वृहद्‌ आकार के एक वाद्य का आविष्कार किया था। इससे पहले सितार में पांच ही तार होते थे।

आपने इस वाद्य में वीणा के आधार पर चिकारी के तारों का संयोजन कर इस आविष्कृत वाद्य का नाम "सुरबहार" रखा।[1] इस वाद्य पर वीणा और ध्रुवपद के समान आलाप और जोड बजाने की प्रथा कायम थी।

गुलाम मोहम्मद खॉ और सज्जाद मोहम्मद खॉ सुरबहार पर ध्रुपद और वीणा के नियमो का कठोरता से पालन करने वाले श्रेष्ठ विद्वानों में गिने जाते है। गुलाम मोहम्मद खॉ और सज्जाद मोहम्मद खॉ ने सितार की कई गतों की रचना की थी जो आज भी कलकत्ते के वादको के पास धरोहर के रूप से चली आ रही है। इन दोनो के पिता-पुत्रों के शिष्यों में योगेश चक्रवर्ती, भोला नाथ चक्रवर्ती (दरभंगा), अशोक गोस्वामी, शम्भू गोस्वामी, पन्नालाल भट्टाचार्य (पटना), राम चन्द्र सिन्हा (राची) आदि के नाम उल्लेखनीय है।

श्री सज्जाद मोहम्मद खॉ उस्ताद बासत खॉ के कलकत्ता निवास के समय उनके सम्पर्क में रहे थे और बासत खॉ साहब ठुमरी गायन शैली से पूर्णरूप से परिचित थे क्योकि उनके आश्रयदाता नवाब वाजिद अली शाह की ठुमरी के प्रति अधिक रूचि थी। इन्ही कारणों से सज्जाद मोहम्मद खॉ और तत्कालीन सितार वादकों की रचनाओं में बाए हाथ का कार्य अधिक दिखाई देता है और रचनाओं में बोलों का भी प्रयोग कम ही पाया गया है।

मथुरा घराना

पान खाँ :

15वी सदी के प्रसिद्ध गायकों में इनका नाम प्राप्त होता है। यह सितार के भी अच्छे वादक थे तथा सूबेदार नवाब नबीर खाँ के दरबारी संगीतज्ञ थे।

---

[1] सगीत कोष, पृष्ठ-91

मथुरा घराना
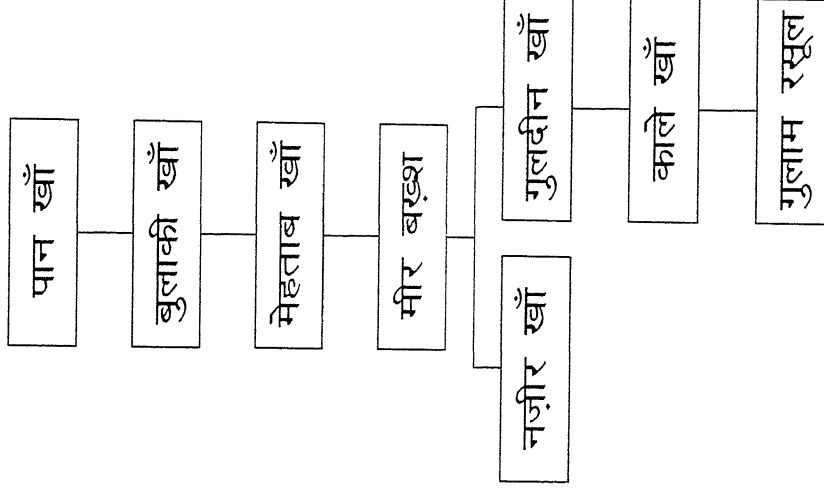
बुलाकी खॉ :

यह पान खॉ के पुत्र थे। इनको गायन और सितार के क्रियात्मक पक्ष के अतिरिक्त शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। इनके एकमात्र पुत्र मेहताब खॉ मथुरा के प्रसिद्ध गायकों में थे।

मीर बख्श खाँ :

यह मेहताब खॉ के पुत्र थे और मथुरा घराने के प्रसिद्ध सितार वादकों में से थे। यह बूँदी रियासत में महाराज बख्त सिह के आश्रय में थे।

गुलदीन खॉ :

यह मीर बख्श के पुत्र थे और एक अच्छे गायक भी थे। इन्होंने अनेक स्थानों में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया और अन्त में गुजरात के लूनावडा के महाराज के आश्रित रहे और वही उनका स्वर्गवास भी हुआ।

नज़ीर खाँ :

यह भी मीर बख्श खॉ के पुत्र थे। इनको अपने पिता के अतिरिक्त अमीर बख्श गोंदपुरी से जयपुर में सितार की शिक्षा प्राप्त हुई थी। यह संगीत के अव्यवसायी कलाकार थे, इन्होंने किसी रियासत में नौकरी नही की और पूरा जीवन भ्रमण कर व्यतीत किया। 1890 में हैदारबाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

इनके बाज के विषय में कहा जा सकता है कि दाहिने हाथ का काम अधिक था और दिर-दिर के बोल का प्रयोग गमक व सपाट दोनों प्रकार की तानों में करते थे व झाले में भी दिर-दा दिर-दा बोल अधिक प्रयोग करते थे।

काले खाँ :

यह गुलदीन खॉ के पुत्र थे। इनका जन्म 1860 में मथुरा में हुआ था। इन्होंने गायन और सितार की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की थी। यह गायक

और सितार वादक होने के साथ-साथ फारसी और हिन्दी के कवि भी थे। फारसी में "मुशी" तथा हिन्दी में "स्वरपिया" इनका उपनाम था। इनके द्वारा रचित ख्याल, ठुमरी और सरगम आज भी प्रचार मे है।[1] लूनावडा के राजा आपके शिष्य थे, अत· आप उन्हीं के आश्रित रहे। इनके एकमात्र पुत्र गुलाम रसूल खॉ अच्छे गायक और हारमोनियम वादक के रूप में विख्यात हुए। गुलाम रसूल बडौदा में महाराजा जियाजी राव गायकवाड के प्रयासों से भारतीय सगीत पाठशाला के अध्यापक पद पर नियुक्त रहे। तत्पश्चात् बडौदा विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए।

मथुरा के अन्य सितारवादक

फैयाज खॉ :

यह मथुरा के गुलाम हसन खॉ के पुत्र थे और वही इनका जन्म हुआ। यह प्राचीन कच्छुवा सितार बजाते थे। यह रियासत अलीपुर के आश्रित थे। इनका काल 1870 के आस-पास माना जाता है।

मुन्नन खॉ :

मथुरा के सितार वादकों मे आप भी ख्यातिप्राप्त कलाकार हैं। यह सितारवादक होने के साथ-साथ अच्छे गायक भी थे। इनको सितार की शिक्षा अपने पिता के अतिरिक्त इनके मामा रजब अली खॉ से प्राप्त हुई थी। यह मुर्शिदाबाद राज्य के आश्रित सगीतज्ञ रहे हैं।

उस्ताद रजब अली खाँ की वंशावली

01. उस्ताद रजब अली खाँ :

प्राचीन सितारवादक रहीम सेन, अमृत सेन के समकालीन कलाकारों में उस्ताद रजब अली खॉ का नाम भी बडे आदर से लिया जाता है। मुख्य रूप से

---

[1] संगीतज्ञों के संस्मरण, पृष्ठ-203

आप बीनकार थे परन्तु दिलरूबा, सितार व गायन पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। इनको बीन की शिक्षा हसन खॉ अम्बेठे वाले और बन्दे अली खॉ (किराना घराना) से तथा गायन की शिक्षा इनायत हुसैन खॉ (तामझामिय) से प्राप्त हुई थी। रजब अली खॉ का जन्म अलीगढ में हुआ था परन्तु इनका सारा जीवन जयपुर नरेश महाराजा राम सिह के दरबार मे व्यतीत हुआ।

खॉ साहब कुशल रचनाकार भी थे। इन्होंने गायन की अनेक बन्दिशो तथा सितार की कई गतों की रचना की है जो आज भी उनकी शिष्य परम्परा में सुरक्षित है।[1]

कहा जाता है कि उस्ताद रजब अली खॉ, उस्ताद मुशर्रफ अली खॉ और उस्ताद सादिक अली खॉ द्वारा रचित बन्दिश दिल्ली के उस्ताद असद अली खॉ के पुत्र एवं शिष्य परम्परा में सुरक्षित है तथा लखनऊ के उस्ताद मोहम्मद हुसैन खॉ के पुत्र, पौत्र व शिष्यों के पास है। लखनऊ में यह लोग इन बन्दिशों को स्वय भी बजाते थे और अपने शिष्यों को भी सिखाते थे।

<u>गत रागेश्री</u>

ध	मगरेस	नि	ध	स	गमगरे	स	निध	नि	मग	मनिध	-
दा	दारादारा	दा	दा	दा	दारादारा	दा	दारा	दा	दारा	दादारा	-
३				x				२			
सं	नि	ध	म	ध	मगरेस	नि	ध	स	गमगरे	स	निध
दा	दा	रा	दा	दा	दारादारा	दा	दा	दा	दारादारा	दा	दारा
३				x				२			
नि	धम	धमगनि	धमगस	गमधनि	सं	निध	म				
दा	दारा	दारादारा	दारादारा	दारादारा	दा	दारा	दा				
३				x				२			

(मसीतखानी शैली) की बन्दिशों में यह एक विचित्र प्रकार की गत है। इसमें पहली विशेषता यह है कि इसमें किसी भी स्वर पर "दिर" बोल का प्रयोग नही हुआ है। दूसरी विशेषता इसकी लय है इसमें एकगुण, दोगुण और चौगुण की

---

[1] सगीतज्ञों के संस्मरण, पृष्ठ 194

लय का प्रयोग हुआ है। "गतबन्धन" से यह आभास नही होता कि यह यह मध्यलय में बज सकती है तथा दूसरे अन्य गतों से यह बात सामने आती है कि पूरब के क्षेत्र में मसीतखानी शैली की गतों में कण और कृन्तन जैसे सौन्दर्य उपकरणों के समाविष्ट करने की प्रथा प्रचलित थी।

जयपुर घराने के वादक कलाकार शिष्यों में श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री और श्री बालकृष्ण पति वाजपेयी भीमपुरे विशेष आदर के पात्र है।

श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री :

इनका जन्म संवत् 1926 में जगराव में हुआ था। यह श्री बशीधर आचार्य के पुत्र थे। यह रामानुज सम्प्रदाय के थे। 1945 में यह जयपुर के सुप्रसिद्ध सितारवादक मियॉ अमृतसेन के शिष्य हुए तथा जयपुर में ही श्री सुन्दर जी से साहित्य का पाठ लिया। मियां अमृतसेन तथा उनके कुटुम्बी उस्ताद हाफिज खॉ जी की इन पर विशेष कृपा रही और इन्हीं से आपको सितारवादन की पूर्ण शिक्षा प्राप्त हुई। आप दर्शन तथा वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे।

श्री सुदर्शनाचार्य ने "संगीत सुदर्शन" में मियां रहीम सेन, अमृत सेन के समय में प्रचलित बाज का पूर्ण परिचय तथा प्रचलित गतों का संग्रह प्रस्तुत किया है। उदाहरण स्वरूप हम इस कृति की कुछ गतें, तोडे और फिक्रें उस समय के बाज के स्वरूप के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्री सुदर्शन ने अनेक गतों के साथ रचनाकारों का नाम नहीं दिया है परन्तु यह स्पष्ट लिखा है कि उनकी पुस्तक में संग्रहीत बन्दिशें मियां रहीम सेन, अमृत सेन तथा उन्ही के वंश की हैं।

अत: जो गत हैं उनका चयन, उन गतों में प्रयुक्त बोलों के चलन लय की बांट, लड़-गुथाव और गतबधन के आधार पर किया है।

आपने अपनी पुस्तक मे सैनीबाज को ही प्रस्तुत किया है। पृष्ठ 139 पर "सैनी सितार" शब्द का भी प्रयोग किया है इससे यह प्रतीत होता है कि सेनिया का सितार भी आकार-प्रकार में भिन्न होता होगा।

श्री सुदर्शन ने अपनी पुस्तक 'सगीत सुदर्शन' के पृष्ठ 56 पर राग खट की एक गत की स्वरलिपि दी है। इस गत की मुख्य विशेषता "डाडाडा" और "डिड डाडा" के बोल है। इस प्रकार गतबधन आज प्राय लुप्त हो चुका है। गत के बाद शास्त्री जी ने इस राग को खुसरो (सितार स्रष्टा) प्रदत्त राग बताया है। जिससे वह शका उत्पन्न हुई कि यह दो आवृत्ति की गत खुसरो खॉ की ही हो क्योकि अमृत सेन जी से पूर्व की गतें अधिक आवृत्ति की नही होती थी और गतों को ही विभिन्न लय से बजाकर वादन समाप्त कर दिया जाता था। अतः हम इस गत का संकलन इसकी प्राचीनता और बोलों के गठन के आधार पर कर रहे हैं।

<u>राग खट</u>

							डिड	डा	डिड़	डा	डा
							11	3,11	11	11	11
								३			
डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डिड़	डा	डा	डा	
13	11	8	8	2,8	8	6	9	9	9	8	
x				२				०			
							डिड़	डा	डिड़	डा	ड़ा
							6	8	6	9	8
								३			
डा	डिड़	डा	ड़ा	डा	डिड़	डा	डा	डा	डा	डा	9
9	8	6	8	6	4	5	6	8	9	10	
x				२			०				

गत की पहली आवृत्ति में केवल 5 स्वरों से गत का बंधान किया गया है तथा दूसरी आवृत्ति में अन्य स्वरों के आधार पर और अधिक सजाया है।

इसी पुस्तक के पृष्ठ 63 पर भैरवी की एक गत है। इसे सम से आरम्भ किया गया है तथा "डाडाडाड़ा" के आधार पर इसको बाँधा गया है। इस समय

के किसी वादक के द्वारा इस प्रकार की बन्दिश सुनने का अवसर नही मिलता। यह एक दुर्लभ रचना मानी जा सकती है।

गत भैरवी

डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डा	डिड	डा	डिड	डा	डा
9	8	8	8	19	9	9	9	11	10	10	8	9	10	11	11
X				२				०				३			

तोडा :

डा	डिड	डा	डा	डा	डा	डिड	डा	डा	डा	डा	डा	डिड	डा	डिड	डाडा
8	6	5	4	4	6	5	6	8	9	10	11	13	15	16	15,11

इसी पुस्तक मे पृष्ठ 67/68 पर राग गुणकरी की एक गत भी एक अप्राप्य रचना है। इस गत में मुख्य रूप से "डा डिड डा डा डा डा डा डिड़ डा डिड डा ड़ा डा डिड डा डा" इस प्रकार मिजराब के उलट-फेर से गतबन्धान को प्रस्तुत किया गया है।

यह सभी तत्कालीन बाज का रूप दर्शाते है। इससे हमे मिया रहीम सेन तथा अमृत सेन जी के समय के प्रचलित बाज का अनुमान लग सकता है कि उस समय किस प्रकार के बोल प्रचलित थे।

श्री बालकृष्ण पति वाजपेयी भीमपुरे :

आपका जन्म लश्कर (ग्वालियर) में हुआ था। आप ललितापति शास्त्री के पुत्र थे जो ललित कलाओं में अत्यधिक रूचि रखते थे। संगीत में रूचि होने के कारण उन्होंने इनको 1903 में वहीं के एक प्रसिद्ध उस्ताद कासिम खॉ का शिष्य बना दिया जिनसे इनको सितार की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त हुई। बाद में आपको पंडित किशन जी (जयपुर वाले) से सितार की शिक्षा मिली तत्पश्चात् आपने भाऊका विश्वर जी से भी शिक्षा प्राप्त की थी।

1907 में श्री भीमपुरे जी ने लश्कर में ही दोनों घरानों के उस्ताद खॉं जी से विधिवत सितार की शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ किया अमीर खॉं जी के दोनों पुत्रों फिदा हुसैन और फजल हुसैन ने भी इनकों अनेक बंदिशें सिखाई। इस

प्रकार आपने कई उस्तादो से सितार की शिक्षा प्राप्त की, शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् 1930 "सितार की पहली पुस्तक" की रचना की उसके बाद 1933 में "सितार की दूसरी पुस्तक" 1934 में "सगीत परिचय अमृत", 1935 मे सितार की तीसरी पुस्तक की रचना की। इन कृतियों का आज ऐतिहासिक महत्व है।

श्री भीमपुरे जी ने अपनी तीनों पुस्तकों की भूमिका में यह लिखा है कि इन पुस्तको में सगृहीत रचनाएं उ० कासिम खॉ, पडित किशन जी, उस्ताद अमीर खॉ, फिदा हुसैन और फजल हुसैन द्वारा सिखाई गई है। परन्तु भीमपुरे जी ने किसी गत विशेष के लिए अपने गुरूओं का नाम नही लिखा है।

इन पुस्तकों मे से उस समय प्रचलित बाज के उदाहरण स्वरूप कुछ गत उनको सीधी-आडी फिक्रे और तोडे संकलित किए है ताकि आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व सितार के बाज का स्वरूप तथा प्रचलित वादन पद्धति का अनुमान लग सके कि किस प्रकार फिक्रो का स्थान आज तान-तोडों ने ले लिया।

गत देसी

											स	रे	म	प	नि	
											दिर	दा	दिर	दा	रा	
												३				
ध	प	प	प	प	म	म	प	ग	रे	स						
दा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	दिड	दा	दा	रा						
x				२				०				३				

गत की सीधी-आड़ी

												ग	ग	ग	रे	स
												दिर	दा	दिर	दा	रा
													३			
रे	नि	स	ध	नि	स	स	रे	नि	स	रे	म	प	नि	सं रें	गं	
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	डा	रा	
x				२				०				३				
रें	सं	सं	रें	सं	नि	ध	प	(खाली पर आ मिले)								
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा									
x				२				०				३				

फिक्रा :

नि स	रे म	स रे	म प	रे म	प नि	म प	नि	सं
डाडिड	डाडा	डाडिड	डाडा	डाडिड	डाडा	डाडिड	डा	डा
रे रें	सं रें	नि स	ध प	प म प	प म	ग रे	स नि	
डाडा	राडिड	डाडिड	डाड़ा	डाडिड	डाडा	डाडिड	डाडा	
स नि	रे स	म रे	प म	नि प	स नि	रें सं	गं रे	
डाडिड	डाडा	डाडिड़	डाड़ा	डाडिड	डाडा	डाडिड	डाड़ा	
स	नि	ध	प	म	ग	रे	स	
डा	डिड	डा	डा	डा	डिड़	डा	डा	

फिक्रा : "सितार की तीसरी पुस्तक", पृष्ठ 4

म	प	नि	ध	प	म	ग	रे
डिड	डिड	डिड	डिड	डिड	डिड	डिड	डिड
स	नि	नि	सं	ग	रे	सं	नि
डिड़	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
ध	प	म	ग	रे	स	स	नि
डिड	डिड	डिड	डिड़	डिड	डिड़	डिड	डिड
रे	स	म	रे	प	म	नि	प
डिड	डिड	डिड	डिड	डिड	डिड़	डिड	डिड
सं	नि	रे	सं				
डिड	डिड	डिड	डिड़				

दुआ लगाकर सम मे आ मिले

उपर्युक्त गत, तोडा व फिक्रे में डा और डिड़ का ही प्रयोग किया गया है तथा तिहाई और दुआ का भी वादन लिखा है। इससे यह प्रतीत होता है कि तिहाई के अतिरिक्त दुहाई की भी प्रथा आरम्भ हो चुकी थी। परन्तु दुआ वादन आधुनिक समय में विलुप्त हो गया है।

गत पीलू : सीधी–आड़ी "सितार की तीसरी पुस्तक" – पृष्ठ 16

			स	|	स	स	नि	स
			डिड़	|	डिड	डिड़	डा	डिड़
					३			
रे ग	रे ग	रे ग	रे ग	|	स	म	मपध	प
डा	डा	डा	डा'	|	रा	दि	ड़	डा
x					२			
रे	रेगम	ग						
दि	ड़	डा						
०								

इस गत की सीधी–आडी में बोलों का वही प्रयोग है जो पूर्व गत में था। इस गत के फिक्रों में भी "दा दिड डा रा" औग "डिड डिड" का ही प्रयोग किया गया है।

देसी पीलू आदि गतों–फिक्रों के अवलोकन से यह बात सामने आयी है कि उस समय के बाज में लयकारी का अधिक महत्व था तथा वादन मे कण–मीड–खटका का प्रयोग होता था जो कि ध्रुपद अंग के प्रभाव को दर्शाता है।

यमन की इस गत में बोलों का विचित्र स्वरूप रखा गया है। 'डिड' और 'डाड' का भी प्रयोग किया गया है।

उदाहरण : यमन गत

											स	नि़	ध़	स	रे
											दिड	दा	दिर	दा	रा
												३			
ग	–	–	ग	ग	ग	ग	रे	ग–	गध	–ध	प	ग	रे	स	रे
दा	ऽ	ऽ	दिर	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	डऽ	डाड	दिर	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
ग	रे	–	नि़	रे	ध़	नि़	रे	स	–	–					
डा	रा	ऽ	डाड	दिर	डा	दिड़	डा	दिड़	डा	रा					
x				२				०							

अब हम पूर्वी गतों को लिपिबद्ध कर रहे हैं जिससे पता चल सके कि पूर्वी बाज में गतों की बन्दिश और बढ़त का क्या स्वरूप था।

गत काफी :

ग	–	रे	स	रे	ग	प	प	म	ग	रे	स	नि	स	रेस	रे
दा	–	दा	र	दा	दा	दार	दार	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	दार	दा
x				२				०				३			
प	नि	सं	रे	प	नि	स	रे	स	नि	नि	प	नि	स	ग	म
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	दार	दार	दा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
म	प	म	ग	ग	नि	ध	प	म	ग	रे	स	सं	नि	ध	प
डार	डा	दिर	दिर	दा	रदा	दा	दा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दा	दार
x				२				०				३			

उपर्युक्त गत में 'दार दार' का विशेष बधान है और पूरी गत मे इस बोल का प्रयोग किया है।

केदार की इस गत में जो बोल प्रयुक्त हुए है, उस प्रकार के छन्द युक्त बोलो की गते मुश्ताक अली खॉ आदि सेनी घराने के प्रमुख शिष्य भी बजाते है। पुरानी बन्दिश के रूप में इसका उदाहरण प्रस्तुत है -

गत केदार

गम	गम	म	म	-	ध	प	प	ग	म	रे	स
डा	-	-	डा	ड	डा	डा	डा	डा	डिड	दिड	दिड
x				२				०			

ऩिस	सरे	रे	स
डा-	डडा	-ड	डा
३			

सारांश :

उपरोक्त विवेचन से यह विदित होता है कि वास्तव मे सितार के प्रथम मौलिक बाज, जिसके सूत्रकार सेनी घराने के पूर्व-पुरूष उस्ताद मसीद खॉ थे, उसी बाज को विकसित और प्रचारित करने का पूर्ण श्रेय उस्ताद अमृत सेन और रहीम सेन के घराने के सितार वादकों को है। इस घराने के सितार वादकों ने सितार के प्रथम मौलिक बाज में वीणा वादन की पृष्ठभूमि को अंगीकृत करते हुए सितार के एक पृथक बाज की स्थापना की। इन लोगों ने ध्रुपद और वीणा वादन के नियमों को सितार में समाविष्ट करने का सफल प्रयोग किया। सितार में मसीतखानी शैली के आधार पर गतों का निर्माण एवं प्रचार किया। मियां रहीम सेन से पूर्व मसीतखानी शैली की 12वी मात्रा से प्रारम्भ करने अर्थात् 5 मात्रा का मुखड़ा होने का मुख्य नियम था; परन्तु मियां अमृत सेन जी ने अनेक ऐसी गतों का निर्माण किया जो सम से शुरू होती थीं। गतों की सूक्ष्म लयकारियाँ दिखाते हुए वैचित्र एवं नवीनता का सृजन मियां अमृत सेन और रहीम सेन के बाज की विशेषता मानी गयी है।

आज के समान सेनिया बाज में तानों की प्रथा नहीं थी। सर्वप्रथम मियां अमृत सेन जी ने गत के साथ बधे हुए सुचारूपूर्ण एवं सुनियोजित "फिक्रे" बजाने की प्रथा चलायी।

सेनिया बाज में विलम्बित लय का प्राधान्य, रागदारी का प्राधान्य, ताल का प्राधान्य है तथा 'डाड, डाड़, डाडा' आदि बोलों को विभिन्न छन्दों में प्रयोग करने की विशेषताऍ उल्लेखनीय है।

उस्ताद छज्जू खॉ के पुत्र उस्ताद प्यार खॉ के शिष्यों में उस्ताद बरकत अली उर्फ सावलिया एक प्रसिद्ध सितार वादक हुए। लेखकों का मत है कि यह ईरान के निवासी थे।[1]

इनके छोटे भाई उस्ताद पीर खाँ अपने समय के गुणी कलाकारों में से थे।

उस्ताद पीर खॉ के एक मात्र पुत्र उस्ताद इज्जत खॉ के दो पुत्र थे तुराब और तुल्लन खॉ।

तुराब खाँ के पुत्र रहमत खॉ और हामिद हुसैन खॉ थे जो इस घराने के अन्तिम सितार वादकों में माने गए है।

<u>उस्ताद हामिद हुसैन खाँ</u> :-

इनका जन्म इटावा में हुआ था, यह इटावा धराने के प्रसिद्ध वादक उस्ताद हुसैन खॉ के सम्बन्धी थे।

उस्ताद हामिद हुसैन खॉ इसी घरानेदार बाज के अनुयायी और प्रतिभाशाली अनुवादक व टीकाकार थे।[2] आपको संगीत की पूर्ण शिक्षा अपने बुजुर्गो से प्राप्त हुई थी, आप सेनिए, तन्त्रकारी परम्परा के जाने माने वादक थे। लखनऊ के सितारवादकों में आपका सर्वोच्च स्थान है। आपके वादन में आलाप,

---

[1] सितार मार्ग, भाग तीन – श्रीपद बन्द्योपाध्याय, पृष्ठ 114

[2] हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न – सुशील चौबे, पृष्ठ 184

बरकत अली उर्फ सांवलिया खाँ की वंशावली

सांवलिया खाँ

पीर खाँ

इज्जत खाँ

उ० तुराब खाँ

उ० तुल्लन खाँ

उ० रहमत खाँ

उ० हामिद हुसैन खाँ
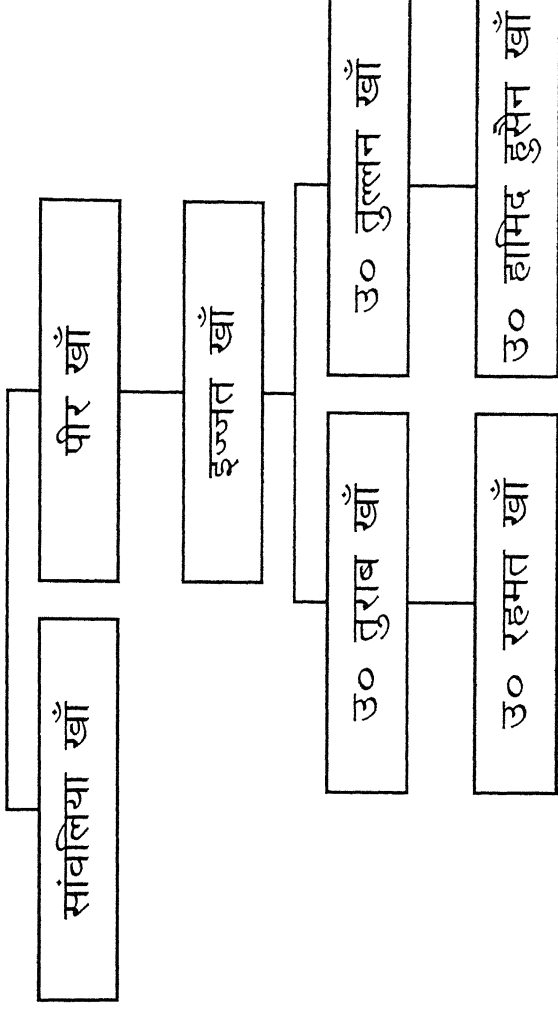
जोड ठोंक-झाला, लडी-गुथाव तथा क्रमबद्ध तोडों आदि के पूर्ण दर्शन होते थे आपके वादन में राग का व्यवस्थित रूप प्राप्त होता था। आप अधिकतर बिहाग, बागेश्री, काफी, देस, खमाज, तोडी, भैरवी, आसावरी आदि रागों का ही वादन करते थे - ऐसी जानकारी प्राप्त होती है।

आपने सितार वादन के सुविस्तृत व क्रमवद्ध विकास व शिक्षण हेतु 'असली तालीम सितार' नाम पुस्तक की भी रचना की।

आप रजाखानी गतो का भी वादन करते थे, परन्तु विलम्बित वादन क्रिया के वे अद्वितीय वादक माने जाते थे। आप बहुत समय तक भातखण्डे सगीत महाविद्यालय, लखनऊ में प्राध्यापक-सितार पद पर कार्यरत रहे।

उस्ताद सांवलियाँ दास अल्हैया बिलावल मध्यलय (सितारखानी)

- असली तालीम सितार, पृष्ठ संख्या-५८

ग	मम	ध	ध	-	प	म	प	ग	-	-	रे	नि	रेरे	स	स
दा	दिर	दा	दा	ऽ	र	दा	रा	दा	ऽ	ऽ	दा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			

इस गत में 'ग' पर सम तथा 'निरेस' की संगति से यमनी संगीत की बन्दिशें कम ही सुनने को मिलती है।

गत अल्हैया बिलावल - द्रुत लय

ग	पप	ग	प	-	नि	ध	नि	सं	-	ध	प	ध	नि	ध	प
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	रा	दा	रा
०				३				x				२			
ध	निनि	धध	पप	म-	मम	-रे	ग-	ग	-	मम	गग	रे	-	रे	स
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दा	ऽ	दिर	दिर	दा	ऽ	र	दा
०				३				x				२			
-स	स-	ग	ग	म	रेरे	गग	पप	ध-	धनि	-	निस	धनि	धप	मग	मरे
ऽर	दाऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा	दारा	दारा	दारा	दारा
०				३				x				२			

इस गत में बोलों का प्रयोग एवं नियम रबाबियों का अनुसरण है। रबाब वादकों की गतों में भी 'दारा दा दिर दिर दिर दा-रदा' तथा 'दिर-दिर-दिर

दा–रदा–रदा' आदि बोलों का यही नियम रहता है। इस गत की गत भी तीनो आवृत्ति में बोलों को उसी ढग से बाधा गया है।

'असली तालीम सितार' के पृष्ठ 186 पर मारवा राग की एक गत है जिसके रचनाकार ने वक्र स्वरों को 'दा रा' और 'दा–र' में बाटकर गत की बन्दिश की है। वर्तमान में इस प्रकार की गत प्रायः लुप्त हो चुकी हैं। इस तरह हम पाते है कि गतों के विभिन्न बोल युक्त बधान में क्रमिक परिवर्तन हुए है।

प्रस्तुत राग यमन की गत का वादन हामिद हुसैन खॉ द्वारा भी किया जाता था और उन्होने अपने शिष्यों को भी सिखार्यी थी। यह गत आज भी लखनऊ में प्रचार में है।

यमन – द्रुत गत

म	पप	निनि	धध	प–	पम	–	मग	प	–	रे	रे	ऩि	रेरे	स	स
दा	दिर	दिर	दिर	दा–	रदा	–	रदा	दा	–	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			
म़	ध़ध़	ऩिऩि	रेरे	ग–	गम	–	मप	ग	म	ग	रे	ऩि	रे	स	स
दा	दिर	दिर	दिर	दा–	रदा	–	रदा	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	रा
०				३				x				२			

इस गत में शुद्ध मध्यम का भी प्रयोग किया गया है जबकि वर्तमान समय में राग यमन में शुद्ध म का प्रयोग वर्जित है। इस कारण भी यह एक विशेष रचना मानी जा सकती है।

श्री अब्दुल अजीज के अनुसार 'उस्ताद अधिकतर धीमी लय पसन्द करते थे और शागिर्दों को भी धीरे-धीरे रियाज़ करने पर आमादा करते थे।

अन्य प्रसिद्ध सितार वादक

बरकतउल्ला खॉ :

यह अपने समय के उच्च कोटि के सितार वादक हुए है। यह मैसूर के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी रहे थे। अच्छे वादक होने के साथ-साथ बहुत अच्छे शिक्षक भी थे। इनके शिष्यों की सख्या बडी विशाल है। आपके प्रमुख शिष्यों में बनारस निवासी उस्ताद आशिक अली खॉ, इनके पुत्र मुश्ताक अली खॉ तथा अभयाचरण चक्रवर्ती के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[1]

ग्रामोफोन रिकॉर्ड सख्या-पी-62 मे प्राप्त खॉ साहब की राग भूपाली की मसीतखानी की गत शैली से मालूम होता है कि खॉ साहब ने गत का केवल स्थायी भाग ही दो बार बजाया है और दूसरी आवृत्ति से पहले चार मात्रे का तोडा फिर आठ मात्रा का फिर 11 मात्रा का तोडा... इस क्रम से गत को केवल 'प ग ग' सम का भाग ही बजाकर तोडे बजाना प्रारम्भ कर दिया है। बीच-बीच में तोडे के समान 'दा र दा दा र दा' तथा 'दा रा दा दा' बोलों को लयबद्ध प्रयोग किया है तथा 'दिर दिर' का भी यथेष्ट प्रयोग किया है। कई स्थानों पर मिजराब को विभिन्न लय में भी प्रस्तुत किया है। अन्त में तोड़ा लेकर वादन समाप्त कर दिया, झाला नहीं बजाया जैसा कि बुजुर्ग सितारवादकों द्वारा पहले सितार में मात्र गत-तोडा ही बजाया जाता था, इस बात की पुष्टि खॉ साहब के इस रिकॉर्ड से हो जाता है। यह सभी विशेषताएँ तन्त्र अंग को दर्शाती हैं जिसमें मिजराब के बोलों को महत्व दिया गया है।

आशिक़ अली खाँ :

सेनिया घराने के एक विशिष्ट संगीतज्ञ नायक धुन्धु खॉ का नाम संगीत के इतिहास में विशेष स्थान रखता है।, धुन्धु खॉ के घराने में वारिस अली खॉ (बीनकार) अकबर अली खॉ (टप्पा गायक), निसार अली खाँ (ध्रुपद गायक),

---

[1] हमारा आधुनिक सगीत, पृष्ठ-134

बरक़त उल्ला ख़ाँ का शिष्य समुदाय

अमीर खाँ
(जयपुर घराना)

शिष्य
बरक़त उल्ला खाँ

- शिष्य
  अभयाचरण चक्रवर्ती
- शिष्य
  आशिक़ अली खाँ
  - मुश्ताक़ अली खाँ
  - जी०एन० गोस्वामी
  - अमिय गोपाल भट्टाचार्य
- शिष्य
  मुश्ताक़ अली खाँ
  - निखिल बैनर्जी
  - देवब्रत चौधरी
  - अरूण कुमार चैटर्जी
  - अशोक घोष
  - निताई चन्द्र बसु
  - निर्मल कुमार
  - नृपेन्द्र गुहा
  - हीरेन्द्र कान्त लहरीचौधरी
  - सुभाष मिश्र
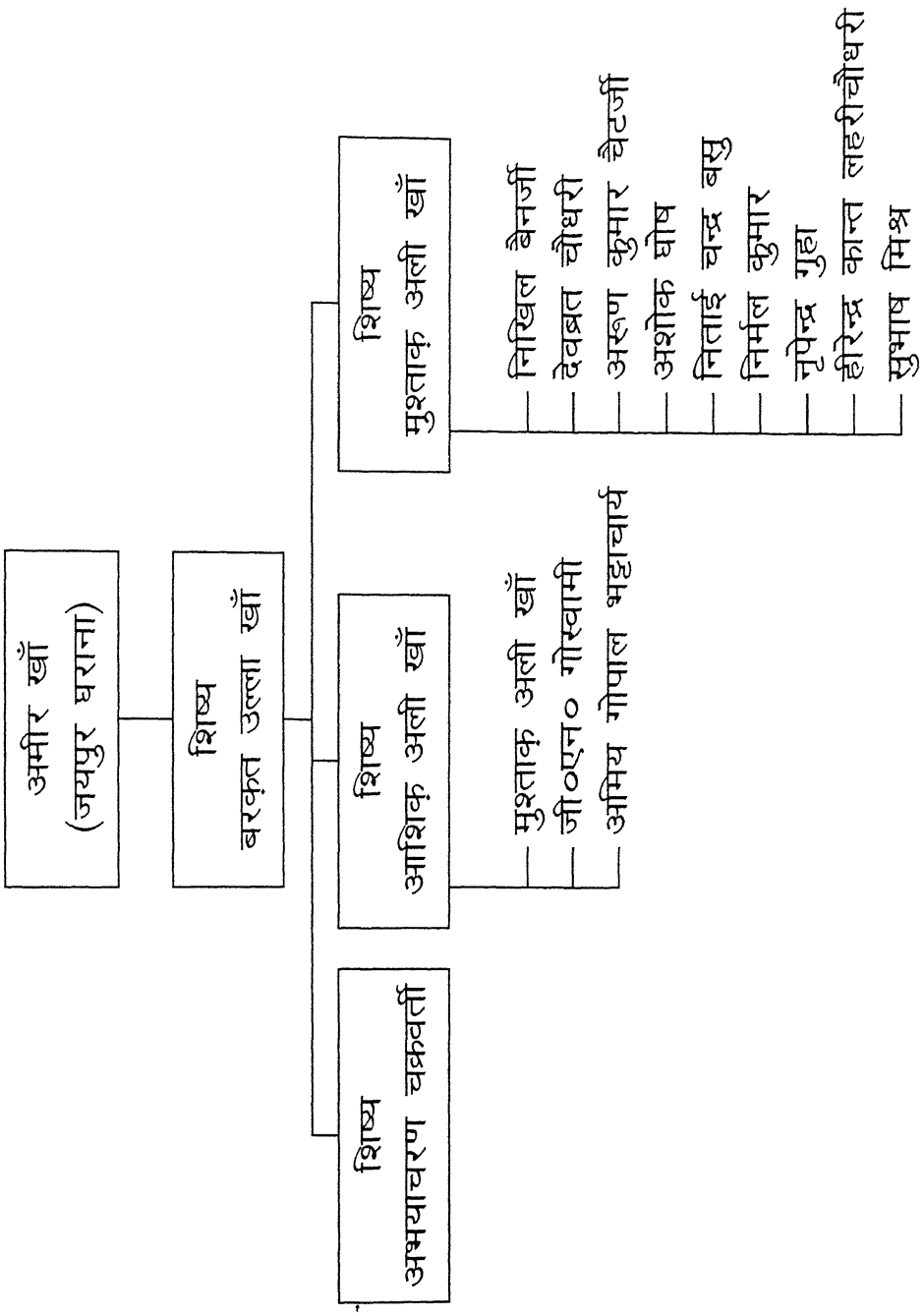
सादिक अली खॉ (ख्यालिए) आदि कलाकार इसी घराने मे हुए है। उस्ताद आशिक अली खॉ इसी घराने के वशज थे। आपने सितार की शिक्षा जयपुर घराने के शिष्य, प्रख्यात सितारवादक उस्ताद बरकतुल्ला खॉ से प्राप्त की थी। गायक होने के नाते आपने सितार में गायकी अगों को भली-भांति मिश्रण कर अपने वादन को प्रभावशाली बनाया।

आपके वादन में आलाप, जोड और विलम्बित क्रिया का प्राधान्य था तथा सितार के सभी अगों पर आपको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। आपने परम्परागत वादन विधि का प्रयोग करते थे। आप अपने समय के उच्च कोटि के विलम्बित गत शैली के विशेषज्ञ माने गए है। आपने अपने एकमात्र पुत्र मुश्ताक अली खॉ के अतिरिक्त अमिय गोपाल भट्टाचार्य तथा लखनऊ के जी०एन० गोस्वामी (वायलिन) आदि को भी शिक्षा दी थी। अमिय गोपाल भट्टाचार्य के मुख्य शिष्य श्री राम चक्रवर्ती (बनारस) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस घराने की गत का उदाहरण -

मंधनीस | नि धध प मंगमंध
३

ध गमं पमं
नि ध प पप | मं रेरे ग गमंपमं | गरेनि़ रे स
X २ ०

यह यमन की गत प्रायः पूर्णतया मींड से ही बजाया जाता है मुखडा तथा सम के भाग को भिन्न-भिन्न ढंग से बजाकर बढत किया जाता है। इसमें छोटे-छोटे काम (स्वर समूह) उसमें करते थे, गत को खाली ढांचे की तरह प्रयोग नहीं करते थे, अर्थात् गत को ही अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है।

गत केदार, रचनाकार आशिक़ अली खॉ

स रेरे स म | - ग प - | मं ध प - | म रेरे स नि़

स रेरे स म | - ग प - | मं ध प - | म पप धध संसं

ध धप प प | ध - संध म | -म ग ध प | म रेरे स नि़

इस गत की विशेषता है कि इसमें सम का स्थान छुपा हुआ है। उस समय मुखडा या सम को छिपाने का रिवाज भी था। इस गत में भी यही है कि सम समझना कठिन है। इस का सम 'सरेरेस' पर है। इस प्रकार 'सम' को छुपाकर तबलावादक को दुविधा में डाला जाता था।

मुश्ताक़ अली खाँ :

मुश्ताक अली खॉ के पिता आशिक अली खॉ उच्च्य कोटि के सितारवादक थे। आपने अपने पिता के अतिरिक्त बरकतुल्ला खॉ से भी कुछ दिन सितार की शिक्षा प्राप्त की थी। आप अपनी छोटी आयु में ही भाग्य के भरोसे कलकत्ता चले गए थे। वहॉ आप श्यामल घोष के मकान पर रहे और कलकत्ते में अमीर खाँ सरोदिया के सम्पर्क में भी बहुत दिन रहे। तत्पश्चात् कठोर साधना और आनुवांशिक प्राकृतिक गुणों के कारण वाद्य सगीत में वह अपना उच्च्य स्थान ग्रहण करने में सफल हुए। आप सितार के अतिरिक्त सुरबहार वादन में भी पूर्णरूप से दक्ष थे। आपके मुख्य शिष्यों में निखिल बैनर्जी, देबू चौधरी, अशोक घोष, अरूण कुमार चैटर्जी, निताई चन्द्र बसु, निर्मल कुमार गुहठाकुरता, नृपेन्द्र गुहा, हीरेन्द्र कान्त लहरीचौधरी तथा लखनऊ की सुषमा मिश्रा (वायलिन) आदि के नाम उल्लेखनीय है।

श्री सुरेश चन्द्र मिश्र के अनुसार, "जो गतें मुश्ताक अली खॉ साहब बजाते थे वह रजाखानी गतें कहकर बजाते है। उनकी मसीतखानी शैली की भी गते हैं, मगर रज़ाखानी शैली की गतें ही अधिक बजाते है और उनकी गतें लम्बी होती हैं। तीन आवृत्ति की तो ज़रूर होती है।"

अभ्याचरण चक्रवर्ती (शिष्य उस्ताद बरक़तुल्ला खाँ) :

"आप सितार और बांसुरी के एक अच्छे कलाकार हुए है। आपने मुर्शिदाबाद के विख्यात सितारवादक श्री कासिम अली खाँ से भी सितार की शिक्षा प्राप्त की थी। आपका वादन बड़ा आकर्षक था। आप गतों के साथ तोड़ों का

प्रयोग नहीं करते थे। बल्कि जयपुर बाज के अनुसार गतों के बोलो का ही भिन्न-भिन्न लय में अनेक तरह से बजाते थे।[1]" आप मसीतखानी शैली के ही विशेषज्ञ थे।

सारांश :

उपरोक्त वर्णनों से यह स्पष्ट होता है कि श्री बरकतुल्ला खाँ और उनके शिष्यों द्वारा सितार के बाज में गायन और वीणा वादन के नियमों का समावेश कर सितार के बाज को एक नया आयाम प्रदान किया।

सेनिया के बाज मे विलम्बित लय का प्राधान्य रहता है। परम्परानुसार वादन करते हुए बरकतुल्ला खॉ और उनके शिष्यों ने सितार वादन क्रिया को उन्नत अवस्था प्रदान करने हेतु पूर्ण प्रयास किए जो प्रशंसनीय हैं। इस घराने के वादकों द्वारा सितार के बाज सम्बन्धी किये गये कार्य आने वाली पीढियों के लिए मार्गदर्शन स्वरूप है।

बरकतुल्ला खॉ का शिष्य परम्परा और नायक धुन्धु खॉ के वंश के वर्तमान प्रतिनिधि के रूप में उस्ताद मुश्ताक अली खॉ और उनका शिष्य समुदाय आज भी सितार वाद्य की परम्परा को बनाए हुए है।

नियामत उल्ला खाँ का घराना

बासत खॉ के प्रमुख शिष्यों में नियामत उल्ला खॉ एक उच्च्च कोटि के सरोदवादक हुए है, जो कि बासत खॉ के शिष्य थे। इनके दो पुत्र असद उल्ला खाँ और करामत उल्ला खॉ तथा एक कन्या थीं। इनके पुत्र असद उल्ला खाँ 'कौकभ मियां' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके तीन पुत्र सनाउल्ला, अली उल्ला तथा बाबू उल्ला और एक कन्या थीं।

---

[1] सितारमार्ग - भाग-३ . श्रीपद बन्द्योपाध्याय, पृष्ठ-108

नियामत उल्ला खाँ का घराना

नियामत उल्ला खॉ

असद उल्ला खॉ
- सना उल्ला खॉ
- अली उल्ला खॉ
- बाबू उल्ला खॉ
- कन्या

करामत उल्ला खॉ
- शिष्य
  - चुन्ने खॉ (शिष्य)
    - प्रो० बनवारी लाल (शिष्य)
      - बलदाऊ श्रीवास्तव
      - सतीश चन्द्र
      - तजम्मुल खॉ
      - बलराम सिह
      - शरण शकर श्रीवास्तव
      - अरूण कुमार किश्र
- शिष्य
  - कालीचरण राय
  - काली पाल
  - ननीगोपाल मोतीलाल
  - मुनीम जी (इलाहाबाद)
  - गगन बाबू (वायलिन)
  - नीलू बाबू (हार्मोनियम)
  - प्रो० बनवारी लाल (सितार -इलाहाबाद)

कन्या
- इश्तियाक अहमद
- बहन
- भाई
  - रफीक उल्ला (हार्मोनियम)
  - शफीक उल्ला (सितार)
- बहन
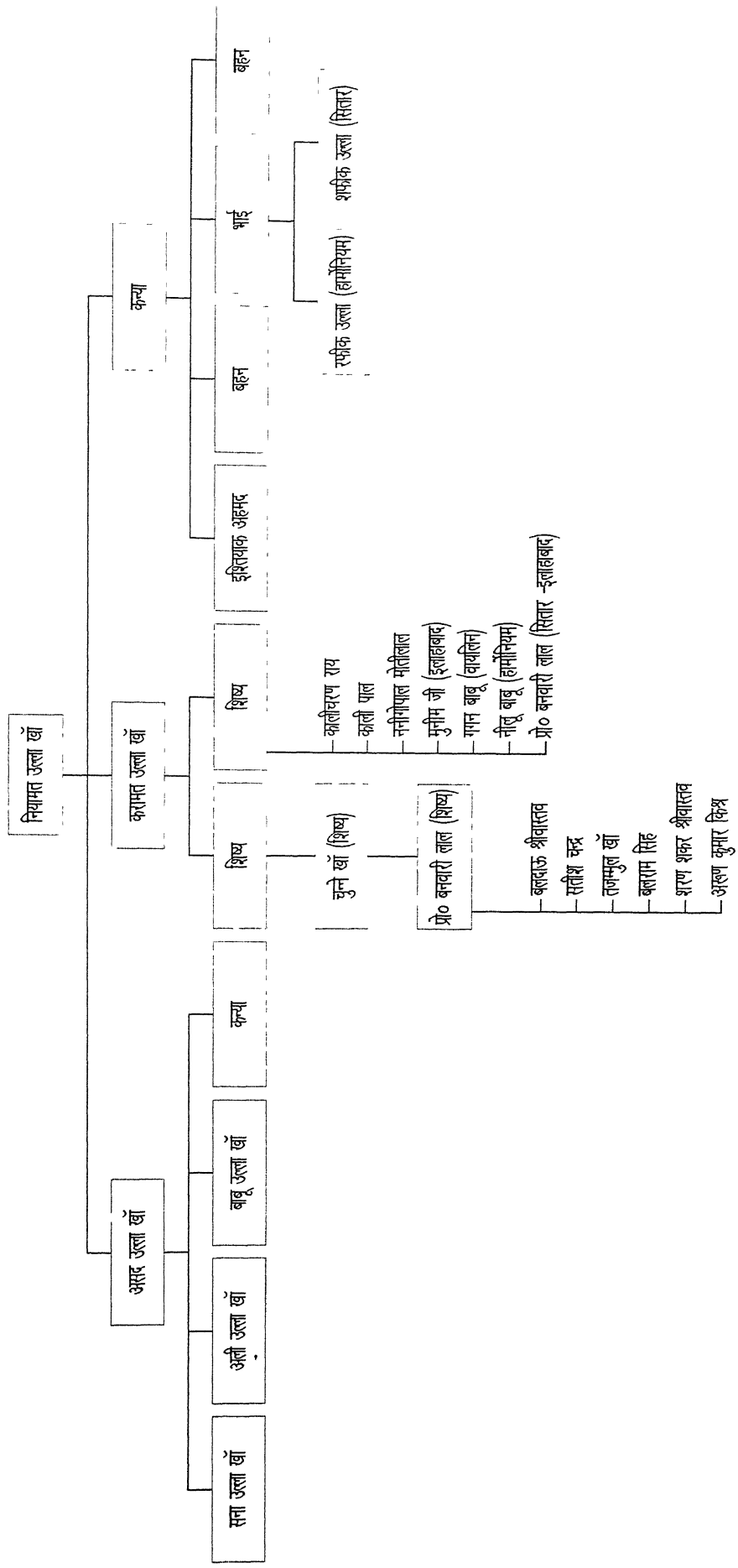
असद उल्ला :

आप उस्ताद नियामत उल्ला के पुत्र है। असद उल्ला खॉ के मुख्य शिष्यों में उनके पुत्रों के अतिरिक्त कलकत्ता के श्री ज्ञान प्रकाश मुखर्जी, धीरेन्द्र नाथ बसु तथा ननीगोपाल मोतीलाल के नाम प्राप्त होते है।

असद उल्ला खॉ के पुत्रों के वैवाहिक जीवन के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। असद उल्ला खॉ के पुत्र अलीउल्ला खॉ के शिष्य पुलिन दास का नाम प्राप्त होता है। पुलिन दास की शिष्या जया बसु वर्तमान में अच्छी वादिका के रूप में प्रसिद्ध हुईं।

करामत उल्ला खाँ :

नियामत उल्ला खॉ के पुत्र करामत उल्ला खॉ भी अपने समय के एक मशहूर सरोद वादक हुए है। गायन की अपेक्षा इनका वादन तन्त्रकारी से अधिक प्रभावित था। यह एक अच्छे वादक होने के साथ-साथ एक अच्छे शिक्षक भी थे। इनके मुख्य शिष्यों में इलाहाबाद के लक्ष्मण दास मुनीम (मुनीम जी), गगन बाबू (वायलिन), नीलू बाबू (हार्मोनियम), बनवारी लाल जी (सितार), कालीचरण राय, ननी गोपाल, मोतीलाल (सितार/सरोद) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उस्ताद करामतउल्ला खाँ के घराने के अन्य कलाकारों ने उस्ताद रफ़ीकउल्ला खाँ (हार्मोनियम) और शफीकउल्ला (सितार) के नाम भी प्राप्त होते हैं। निम्न गत की स्वरलिपि उस्ताद करामतउल्ला खॉ के बाज के रूप में प्रस्तुत है :-

राग गारा

–	ध़	–	नि़नि़	स	रेरे	ग	म॑	ग॒	–	रेग॒	स	–	रेरे	नि़	स
ऽ	दा	ऽ	रदा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दारा	दा	ऽ	दिर	दा	रा
–	स	–	रेरे	स	नि़नि़	ध	प	ध	–	पप	ध	–	पप	म	–
ऽ	दा	ऽ	रदा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	रदा	दा	ऽ	रदा	दा	ऽ

इटावा घराना

साहबदाद खाँ
इमदाद खाँ
करीम खाँ
इनायत खाँ
वहीद खाँ
विलायत खाँ
इमरत खाँ
हफीज खाँ (मस्ताना)
हजीज खाँ
शुजात़ खाँ
निशात खाँ
इरशाद खाँ
शाहिद परवेज

–	ध़	–	नि़नि़	ध़	नि़	स	–	–	ध़	–	नि़नि़	स	रे	ग	–
ऽ	दा	ऽ	रदा	दा	रा	दा	ऽ	ऽ	दा	ऽ	रदा	दा	रा	दा	ऽ
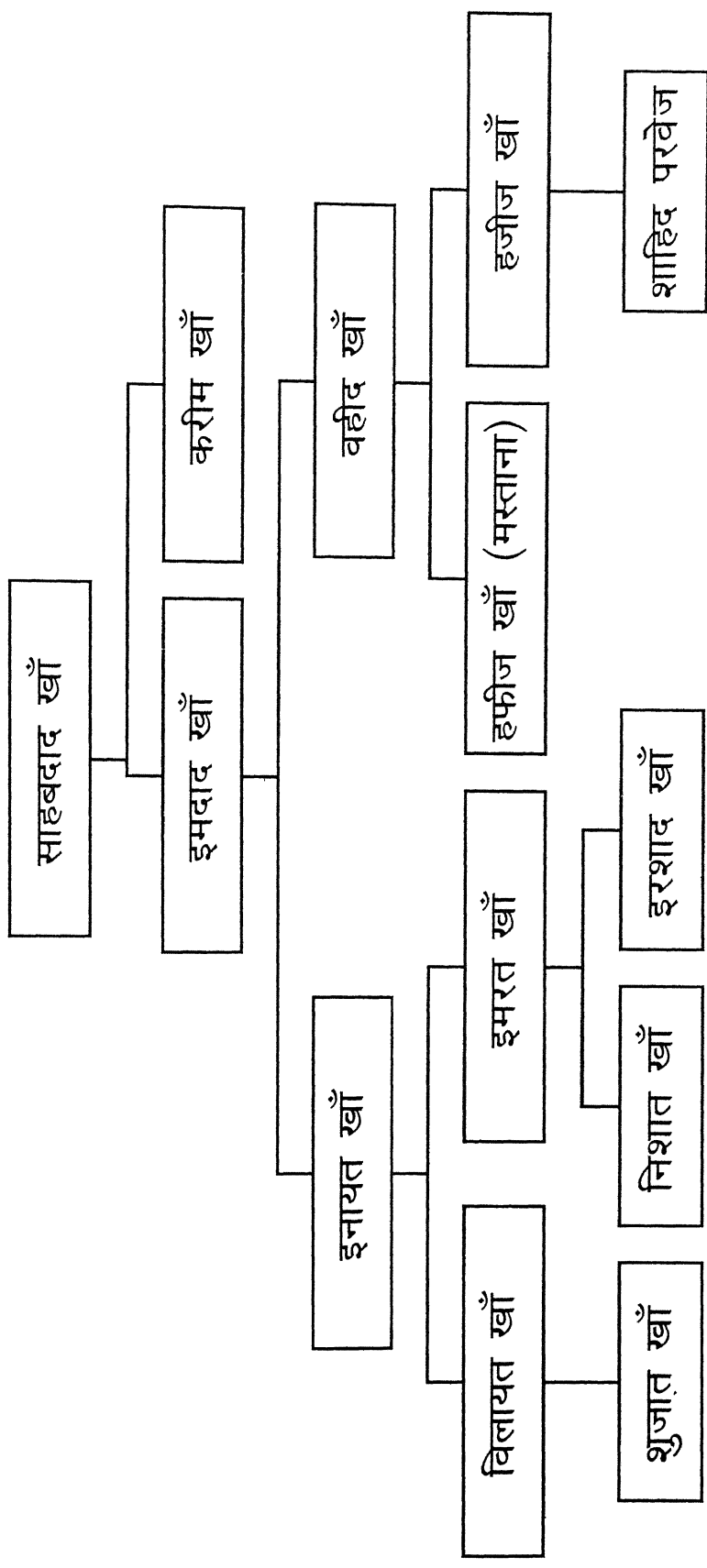
–	ध़	–	नि़नि़	स	रेरे	ग	म	ग	–	रे	गग	ग	रेरे	नि़	स
ऽ	दा	ऽ	रदा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा

आजकल इस प्रकार के बधान की इतनी लम्बी गत सुनने को नहीं मिलती। आज यह एक अप्राप्त रचना है।

इटावा घराना

सितारवादन पद्धति को परिष्कृत कर वाद्य सगीत जगत् में सितार वाद्य को सर्वोच्च स्थान दिलाने तथा लोकप्रिय व वादनोपयोगी बनाने में जिन घरानों ने सहयोग किया है उसमें प्रथम श्रेणी मे इटावा घराना उल्लेखनीय है।

साहबदाद खाँ :

इनके पिता का नाम तुराब खॉ था। इनके पूर्व पुरूषों में सुरजन सिंह का नाम प्राप्त होता है। उस्ताद साहबदाद खॉ, हद्दू खॉ के साले के पुत्र थे और वही इनका पालन-पोषण भी हुआ। साहबदाद के दो पुत्र (१) करीमदाद (बचपन में ही मृत्यु), (२) इमदाद खॉ थे।

साहबदाद खॉ साहब को नत्थू खॉ, हद्दू खॉ, हस्सू खॉ और मियॉ मौज खाँ से गायन की शिक्षा तथा निर्मल शाह से बीन की शिक्षा प्राप्त की थी तथा आपने अपने समय के सुप्रसिद्ध सुरबहार वादक उस्ताद गुलाम मोहम्मद खॉ को भली-भाँति सुना था और उनसे प्रेरणा भी पायी थी।

श्रीपद बन्ध्योपाध्याय ने अपनी पुस्तक "सितार मार्ग भाग-3" के पृष्ठ सं०-103 पर साहबदाद खाँ साहब को सारंगी वादक ही लिखा है। कु० रजनी

श्रीवास्तव ने अपने वाद्य निपुण सम्बन्ध में लिखा है कि इटावा घराने के अधिकाश सितार वादक अच्छे सारगीवादक भी थे।

श्री विमलकान्त राय चौधरी ने अपनी पुस्तक सगीत कोष के पृष्ठ स०-90 पर लिखा है कि "गुलाम मोहम्मद खॉ ने सुरबहार वाद्य का आविष्कार करके इस पर चिकारी के तार संयोजित किए।" तरबों वालीबात श्री चौधरी ने भी नही लिखी है। अतः सुरबहार में तरबों के सयोजन के संबंध में यह अनुमान है कि "साहबदाद खॉ सारंगी वादक होने के नाते सारंगी की तरबों की प्रतिध्वनि (echo) से परिचित थे" अधिक नयायसंगत प्रतीत होता है। अतः सुरबहार वाद्य में तरबों की कल्पना सम्भवतः साहबदाद खॉ साहब की ही थी।

करीमदाद खाँ :

साहबदाद खॉ के पुत्र करीबदाद खॉ की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो गयी थी।

इमदाद खॉ :

इनके पिता का नाम साहबदाद खॉ था। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में सन् 1848 में हुआ था। उस्ताद इमदाद खाँ के समय कुछ सितारवादक मात्र मसीतखानी गत बजाते थे और कुछ वादक पूर्वी बाज ही बजाते थे। एक ही वादक द्वारा दोनों शैलियो को बजाने की प्रथा नहीं थी। इमदाद खॉ ने इसका सफल प्रयोग किया।

इमदाद खाँ ने सितार वादन में सर्वप्रथम आलाप, जोड़े एवं झाला, तत्पश्चात् क्रमशः मसीतखानी व रज़ाखानी गत बजाकर उसमें विभिन्न प्रकार की तानें व तिहाइयों के पश्चात् झाला बजाकर वादन समाप्त करने की एक सुचारू पद्धति कायम की। प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण योगदान था।

इन समस्त प्रयोगो के फलस्वरूप जिस वादन पद्धति का उदय हुआ, वह इटावा परम्परा का बाज या (इमदाद खानी बाज) के नाम से प्रसिद्ध हआ। कहा जाता है कि इमदाद खानी बाज शब्द का प्रचार 1930 से श्री विमलकान्त रायचौधरी द्वारा किया जाना आरम्भ हुआ था। यह बाज विशेष कर बगाल में अधिक लोकप्रिय हुआ और लगभग वर्तमान के सभी वादको ने इसका अनुसरण किया है।

उस्ताद इमदाद हुसैन खॉ अपनी कला और साधना से 72 वर्ष की आयु तक संगीत जगत् को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते रहे। इनके जीवन का अन्तिम समय इन्दौर राज्य में व्यतीत हुआ और वही सन् 1920 में इनका देहान्त हो गया। इस घराने के बाज के रूप में कुछ रचनाएं खॉ साहब, विलायत खॉ, उस्ताद इमरत खॉ, श्री अरविन्द, इमरत खॉ के पुत्र इरशाद खॉ, शाहिद परवेज (वहीद खॉ के पौत्र) आदि वादकों से प्राप्त हुई है जिनमें पीलू, खमाज, भैरवी, बिहाग, जौनपुरी, यमन, काफी, बागेश्री, दरबारी, शंकरा आदि गते हैं। खॉ साहब ने कुछ गतें गाकर सुनाई। जिस प्रकार ठुमरी गायक लय बढ़ाकर ठुमरी का बोल बनाते हैं उसी तरह उस्ताद झाले को तरह-तरह से बजाकर श्रोताओं को चकित कर देते हैं।

अपने शोध प्रबन्ध में सुश्री संध्या अरोडा ने लिखा है कि 'इमदाद खॉ साहब ने अपने बाज में ठुमरी अंग पूरी तरह से प्रयोग किया, उन्होंने चाचर दीपचन्दी आदि तालों में गायी जाने वाली ठुमरियों को छोटे-छोटे रागों जैसे पीलू, खमाज, झिंझोटी, काफी में गतों की बन्दिश करके उनका प्रयोग किया। अपनी गतकारी और आलाप आदि में इस गायकों के अंग को तंत्र वाद्य के कायदों के अन्तर्गत बहुत खुबसूरती से सम्मिलित किया था।

इनायत खॉ :

इनायत खॉ सन् 1924 मे परिवार को लेकर स्थायी रूप से गौरीपुर चले आए और गौरीपुर के दरबारी वादक हो गए।

गत, तोडा और झाले के काम के लिए आप अद्वितीय वादक थे। इनका द्रुतलय का काम बहुत ही मनोग्राही था। तिहाइयों में यह श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर देते थे। गतों को समाप्त करते समय क्रमवार 'सात धा' बजाकर गत समाप्त करते थे, यह इनकी निजी विशेषता थी। आप अपने पिता के समान ही प्रतिभावान कलाकार थे, किन्तु दृष्टिकोण मे आधुनिकता थी। वे कलात्मक सौन्दर्य और माधुर्य के पक्ष में थे। वे स्वर माधुर्य हेतु काफी राग में भी तीव्र मध्यम का प्रयोग करते थे। इस बात की पुष्टि इनके ग्रामोफोन रेकार्ड से हो सकती है। खॉ साहब का यमन, खमाज, पीलू, भैरवी, बिहाग, बागेश्री, काफी, जौनपुरी, मुल्तानी आदि रागों पर पूर्ण अधिकार था।

आपने अनेक लोगों को शिक्षा दी, जिनमें अमियकान्त भट्टाचार्य, क्षेमेन्द्र मोहन ठाकुर, जौन गोमस, जितेन्द्र मोहन सेन गुप्ता, ज्योतिश चन्द्र चौधरी, डी०टी० जोशी, कल्याणी मलिक, प्रकाश चन्द्र सेन, विपिन चन्द्र दास, विमल कान्त राय चौधरी, मनोरजन मुखर्जी, श्रीनिवास नाग, श्रीपति दास आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सारांश -

संक्षेप में यदि इमदादखानी बाज का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि उ० इमदाद खॉं और इनायत खॉ ने सितार में ख्याल गायकी शैली का प्रचलन किया। यह सुरबहार में ध्रुपद शैली की आलाप बजाते थे पर ध्रुपद के समान मुर्कियों का प्रयोग नही करते थे। इनकी आलाप शैली सादगी लिए हुए थी तथा लम्बी मीडयुक्त हुआ करती थी। यह मध्य में आलाप बजाते थे और अतिद्रुत लय में उल्टा झाला तथा अति जोड़ बजाते थे। 'उल्टा झाला' इस शैली की मुख्य

पहचान थी। इसमें पहले चिकारी के तार में 'रा' या अपकर्ष प्रहार किया जाता था तत्पश्चात् तीन बार बाज के तार में 'दा' बजाया जाता है ताकि झाला बजाते समय ज्यादा से ज्यादा समय तक बाज तार पर ठहरा जा सके तथा साथ ही साथ बाए हाथ का भी अधिकाधिक प्रयोग कर मीड और मुर्कियों का प्रयोग किया जा सके। इस घराने मे सपाट और छूट की तानों का बाहुल्य है।

इनायत खॉ एक महान कलाकार थे। यद्यपि वे सगीत के क्षेत्र में अपने पिता की संगीत-प्रतिभा के ही प्रतिरूप थे, किन्तु उनके दृष्टिकोण तथा कलाकृतियों में कुछ आधुनिकता थी। वे कलात्मक सौन्दर्य और माधुर्य के लिए रागों की परम्परागत रूढियो का परित्याग करने के पक्षधर थे। उदाहरण स्वरूप वे स्वरमाधुर्य हेतु 'काफी' में 'तीव्र-मध्यम' का प्रयोग करते थे। एकबार उनके आश्रयदाता ने उनसे पूछा कि क्या 'तीव्र-मध्यम' का प्रयोग 'काफी' में हो सकता है? इनायत खॉ ने उत्तर दिया "नही," आश्रयदाता ने पुनः प्रश्न किया "फिर आप क्यों ऐसा करते हैं?" इसपर वे बोले "काफी मे कडी (तीव्र) मध्यम लगाकर मुझे सात 'गोल्ड-मेडेल' मिले है, फिर मै क्यों नही लगाऊँगा?" इनायत खॉ का यह प्रयोगवादी दृष्टिकोण जीवन भर रहा।

केवल यही नही, वे 'भूपाली' में 'शुद्ध-मध्यम' का प्रयोग करते थे। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार के नवीन प्रयोगों से रागों की मौलिकता को ठेस लगती थी। किन्तु फिर भी उनमें एक विशेष माधुर्य होता था। उनके ऐसे प्रयोग साहसिक, माधुर्ययुक्त और भली-भांति संयोजित होते थे। इस बात की पुष्टि इनायत खॉ के कुछ ग्रामोफोन रेकार्डो से हो सकती है।

10 नवम्बर 1938 को इलाहाबाद से कलकत्ता लौटते समय 11 नवम्बर को प्रातः 4 00 बजे इनायत खॉ का देहान्त हो गया। कहते हैं कि केवल कलकत्ते में इनायत खाँ के दो सौ शागिर्द थे। आप सम्पूर्ण भारत में विख्यात थे, आपकी लोकप्रियता का कारण आपकी ईश्वर प्रदत्त अलौकिक प्रतिभा थी।

इस प्रकार इस घराने के सभी कलाकारों ने सगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया है। यदि हम इसके विकास का अध्ययन करे तो पाते हैं कि सितार वादन की प्रारम्भिक शैली में दाहिने हाथ का काम मुख्य था बाए हाथ का काम अपेक्षाकृत कम था। फिर एक समय आया जब दोनों हाथ काम करने लगे। दाहिने हाथ से लय युक्त काम या Rhythm पैदा होता था और बाए हाथ से स्वर-संवाद या Melody बजाया जाता था। परन्तु इमदाद खॉ साहब दांए हाथ का काम बहुत ज्यादा करते थे। आज के समय में दाहिने हाथ का काम वैसा ही है परन्तु बाए हाथ का काम बहुत बढ गया है। गायकी अंग की शुरूआत इनायत खाँ साहब से हुई। इन्होंने तरब में भी तरक्की की और तिहाई बजाने का भी प्रचलन किया। धीरे-धीरे दांए और बांए - दोनों हाथों का काम बढ गया।

जिन चीजों को साहबदाद ने शुरू किया इमदाद खाँ ने उसे आगे बढाया। इनमें कडा रियाज, सफ़ाई, पखावज के बोलों को दांए हाथ से बजाने की कोशिशें, आलाप में ध्रुपद अंग की मीड होती थी। इनायत खॉ के समय मे शैली तथा सितार की आवाज में थोडा परिवर्तन आया। श्री अरविन्द पारीख के अनुसार "इनायत खाँ की शैली भक्तिरस प्रधान थी।" इन्होंने सितार में ख्याल अंग की मुर्की प्रचलित की। तीन-चार स्वरों की मीड, बोल का पेचीदा काम, मध्यम गति की रज़ाखानी की गते। इनायत खॉ ने झाला की विशिष्ट शैली प्रचलित की जिसपर लगभग सभी कलाकार चल रहे हैं। इनायत खॉ के भाई वहीद खॉ की भी गायकी अंग की शैली है पर इनकी शैली सादी परन्तु असरदार थी, वे भी बहुत रियाज़ी थे।

इसके बाद विलायत खॉ ने इस घराने में सर्वाधिक नाम कमाया। जब यह ११ वर्ष के थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। बाद में उनके चाचा वहीद खाँ साहब ने बड़ी लगन से सितार क़ी तालीम दी। नाना बन्दे हुसेन खाँ, मामा जिन्दे हुसैन खाँ ने उन्हें गाने की तालीम दी। इसके अतिरिक्त उस्ताद रजब अली खाँ, उस्ताद अल्लादिया खाँ, पं० भास्कर राव जी, वहीद खॉ, फैय्याज खॉ, उ० अब्दुल करीम खाँ आदि कलाकारों से भी अपने आपने तालीम ली।

विलायत खॉ साहब ने सितार के जोडी के तार में से एक तार निकाल कर उसके स्थान पर ब्रास की पचम रख दी। पहले उनके सितार में पॉच तार हुआ करती थी। बाद में उन्होंने एक तार और बढा दिया और अब उनके सितार में छः तार हुआ करता है।

सितार वादन मकी शैली में आपने गायकी अंग जोडकर इसकी वादन शैली में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है। मिजराब के 'स्ट्रोक' से 'टोनल क्वालिटी' तक को बदल दिया ताकि सितार में 'दा' के प्रहार से 'अ' जैसी आवाज निकले।

विलायत खॉ साहब एक साक्षात्कार में कहते है, "सितार को एकदम गला बना देना यह काम हो सका मेरे नाना तथा मामा के कारण। मेरे मामा जिन्दे हुसैन खॉ साहब उन्होंने मेरे दादा (साहबदाद खॉ) को सुना है और इनायत खॉ को तो सुना ही है, वहीद खॉ (चाचा) को भी सुना है, इधर वह खुद सितार भी जानते थे और गाना तो गाते ही थे। रियाज के समय मुझे भी बैठा लेते थे। वह गाना सुन-सुनकर रूपक, धमार, यह सब सुनकर मेरे मन मस्तिष्क पर इनका बहुत ही अनुकूल असर पड़ा जो बाद में प्रयोगों के माध्यम से उजागर हुआ। फिर जो तालीम गाने और सितार में मिला था उसी को लेकर रास्ता ढूंढ रहा था। तीन-चार स्वरों के मीड से कोई बढ नही रहा है किन्तु 'आ ऽऽऽ' ये सब वादन में नही हो रहा है, अतएव पूरे Structure में धीरे-धीरे विवर्तन लाकर सितार को नए ढग से प्रस्तुत किया। 1964-65 में वास्तव में सितार का स्वरूप ही बदल गया। सितार देखने पर ऊपर से वैसा ही है लेकिन मेरे पिता के सितार और मेरे हाथ के सितार, अर्थात् पहले के और आज के सितार में measurement, तबली, तुम्बा, डांड, मीड, तारगहन, जवारी, तालबृज, जवारी फाइलिंग, स्ट्रोक सब बदल गया। पूरा panorama ही बदल गया। एक ऐतिहासिक बदलाव आ गया, जिसमें हीरेन राय और दिल्ली विकी राम का बहुत बड़ा योगदान है। लेकिन Ultimate Vilayat Khan, perfect playing बाज, मिज़ाज और सौन्दर्य के एकीकरण से जो शिल्पी बना और ज़माने को नया सुर दिया वह विलायत खॉं 60's में बने।"

श्री अरविन्द पारिख विलायत खॉ के विषय में कहते है, “विलायत खॉ के वादन–शैली में कई क्रमिक परिवर्तन आए है। 1955-60 में सितार का ढांचा बदला। मिजाज, टोन भी बदला। पचम–खरज बदल का स्टील का लगाया। ग–प का नया सवाद सितार में आया। सितार के आकार में तब्दीली आयी। विलायत खॉ बाए हाथ को बहुत आगे तक ले गए। एक प्रहार में कई Notes (स्वर) बजाने लगे थे – यह जो गायकी का Style है। इनायत खॉ दो तुम्बे का सितार बजाते थे, विलायत खॉ ने ऊपर का तुम्बा निकाल दिया, Pitch को C-Sharp पर fix किया, तबली मोटी कर दी, गमक बजाने के लिए ‘ब्रिज’ को ऊँचा किया, तारगहन मोटी और मजबूत की, जर्मन सिल्वर ‘ग’ को जोड़ा। ग–प को मारवा जैसे रागों में म–ध में मिलाने पर सितार छेडने से ही राग का स्वरूप निकल आता था।

श्री अरविन्द पारिख के अनुसार विलायत खॉ ने गत काम को चार हिस्सों में बॉटा है। पहले भाग में अलकार सहित खूबसूरती उत्पन्न करना, दूसरे में बहलावे का काम, तीसरे भाग में लय बढा कर दाहिने हाथ के विभिन्न बोलों का प्रयोग करना, चौथे भाग में बोल के साथ छोटी–छोटी ताने जिसे तानों की ओर जाने का दरवाजा कह सकते हैं। पुराने ढंग के वादन को ही ढांचा बनाया। दाए हाथ के बोलों को तबला–पखावज से लेकर बनाया। बांए हाथ से गायकी का काम जिसमें गायकी अंग की मुर्की एवं बहलावे का काम, मीड़। यह तोड़े के लिए ‘स’ की जमीन बनाते है। यह मीड में एक flow लाए। खाली इस continuity से ही गायकी अंग नही बनता, एक मीड़ से कई स्वर निकालने के अलावा सुर को छोडना, फिर उभारना – यह भी गायकी है; उचक कर सुर को पकडना, Volume बदलना भी गायकी है। जोड–आलाप जो ध्रुवपद के नोम–तोम है। राग दरबारी का नोम–तोम फैय्याज खॉ की खास थी, वही बातें विलायत खाँ में भी दिखती है। सपाट, छुट, कृन्तन, तन्त्र की इन चीजों को भी गायकी ढंग से करते हैं।

साहबदाद खॉ, इमदाद खॉ, इनायत खॉ और विलायत खॉ इन चार पुरूषों की सितार वादन पद्धति ने भारत वर्ष में एक विशिष्ट सितार वादन धारा को जन्म दिया है।

वर्तमान समय में इस घराने के पुत्र एवं पौत्रों में विलायत खॉ, इमरत खॉ, विलायत खॉ के पुत्र शुजात खॉ, इमरत खॉ के पुत्र निशात खॉ, इरशाद खॉ, विलायत खॉ की बहन के पुत्र रईस खॉ, वहीद खॉ के पौत्र तथा अजीज खॉ के पुत्र शाहिद परवेज आदि वादक अपने पूर्व पुरूषों की वादन पद्धति को स्वयं अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा समृद्धशील कर रहे हैं। इस घराने की शिष्य परम्परा भी बडी विशाल है। इस घराने के अन्य मुख्य शिष्यों में जोन गोमस के शिष्य सुनी मिजा। श्री डी०टी० जोशी के शिष्य पुलिन बिहारी देव वर्मन, विभुति भूषण चैटर्जी, जितेन्द्र मोहन सेन गुप्ता के शिष्य अमृत लाल बैनर्जी, ज्योतिष चन्द्र चौधरी के शिष्य मनोरंजन लहरी, श्याम विनोद घोष, विपिन चन्द्र दास के शिष्य मतिलाल सरकार, यामिनीकान्त पाल, विमल कान्त राय चौधरी के शिष्य अनिल कु० बैरागी, उत्पल सरकार, मतिलाल सरकार, मिनसी पाल, कमल राय, काशीनाथ भट्टाचार्य, किशोरकान्त बागची, कृष्णा सरकार, निखिलेश भवानी, मनोरजन मुखर्जी के शिष्य चितरंजन मुखर्जी (पुत्र) लक्ष्मी चक्रवर्ती श्री निवास नाग के शिष्य अनिल राय चौधरी, काशी नाथ मुखर्जी श्रीपति दास के शिष्य दिलीप बसु आदि कलाकार आज भी सगीत के क्षेत्र में यथा योग्य अपनी सेवाएं अर्पित कर संगीत के उत्थान में संलग्न है।

मैहर घराना

इस घराने का नामकरण मध्यप्रदेश के मैहर नामक स्थान पर हुआ। इस घराने के संस्थापक थे उस्ताद अलाउद्दीन खॉ। मैहर घराने को घराने की संज्ञा देने पर काफी मतभेद है क्योंकि उस्ताद अलाउद्दीन खॉ संगीतज्ञों के परिवार के नही थे तथा वह बहुत से वाद्यों को बजाने में निपुण थे परन्तु मुख्य रूप से

अलाउद्दीन ख़ाँ का घराना

- साद
  - समीरूद्दीन
  - आफ़्ताबुद्दीन
  - अलाउद्दीन
    - अली अक़बर
      - आशीष
      - ध्यानेश
      - कन्या
      - प्राणेश
      - समरेश
      - लाजवन्ती
      - राजेश
      - दिनेश
      - शोभावती
      - मीनू
    - अन्नपूर्णा (पुत्री)
      - शुभेन्दु शंकर
    - रविशंकर (दामाद)
      - अनुष्का शंकर
  - नायब अली
  - आयत अली
    - बहादुर ख़ाँ
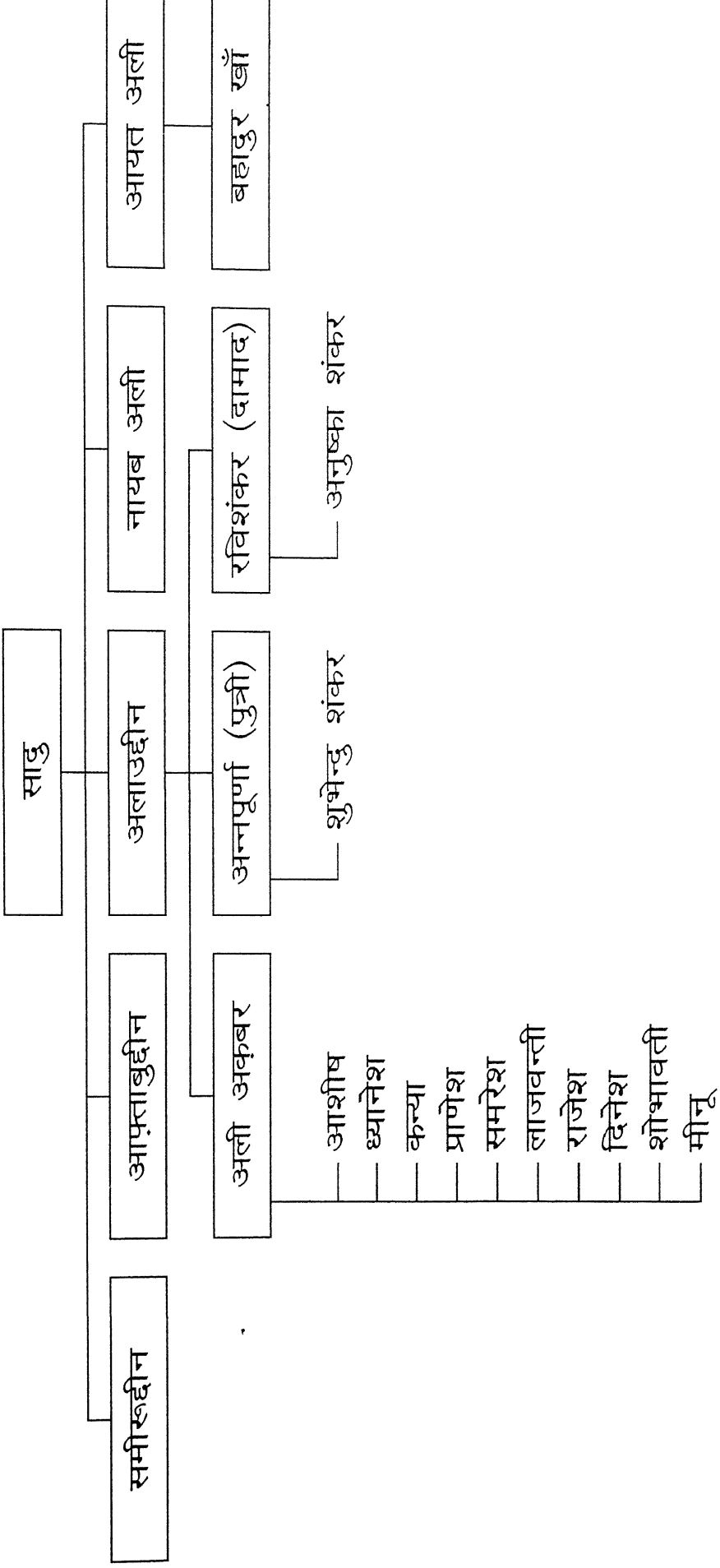
उस्ताद अलाउद्दीन खॉ सरोद तथा वायलिन ही बजाते थे। आपने अपने वादन में ध्रुपद अग का आलाप तथा ख्याल अग की गतों का प्रयोग किया। आप विभिन्न प्रकार की तालो का भी प्रयोग करते थे तथा लोकधुनों को भी बजाते थे। उस्ताद अलाउद्दीन खॉ साहब ने प्रारम्भिक पॉच वर्ष तक अहमद अली खॉ साहब से सरोद सीखा। चक्रदार गतें, तरानों के बोल की लडी जैसे गत की शैली अलाउद्दीन खॉ साहब के वादन मे अहमद अली खॉ साहब की है। इसके उपरान्त ३३ वर्षो तक इन्होंने मोहम्मद वजीर खॉ बीनकार से बीन अंग का आलाप लिया। इन सब अंगो पर स्वयं अभ्यास करके मीड व कृन्तन को प्रत्येक स्वर पर दिखाना, झाला में विविध अलंकार योजना, झाला के अन्तर्गत मीड का कठिन काम, ठोक झाला के अनेक रूप, प्रत्येक स्वर को गोलाकार रूप में निकालना इत्यादि इस घराने की विशेषताऍ बन गई। इस घराने मे चिकारी को कम छेडकर दूसरे, तीसरे और चौथे तार को छेड कर वादन में एक नया आयाम लाया गया है। इस घराने के प्रमुख कलाकार श्री अली अकबर खॉ, प० रविशकर, प० निखिल बैनर्जी, दामोदर लाल काबरा, शरण रानी आदि उल्लेखनीय कलाकार है।

मैहर घराने के अन्य सितारवादकों में कार्तिक कुमार, दीपक चौधरी, इन्द्रनील भट्टाचार्य, जया बसु, ज्योतिन भट्टाचार्य, शमीम अहमद, पं० उमाशकर, जमालुद्दीन भारतीय, इन्द्राणी चक्रवर्ती, निर्मल कुमार रायचौधरी आदि हैं।

स्व० पण्डित निखिल बैनर्जी :

स्व० पण्डित निखिल बैनर्जी का जन्म 14 अक्टूबर 1931 को हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता श्री जितेन्द्रनाथ बैनर्जी से मिली। ततूपश्चात् पण्डित जी की प्रारम्भिक शिक्षा सरोदवादक श्री राधिका मोहन मोइत्रा से प्राप्त हुई। मुश्ताक अली खॉ से भी पं० निखिल बैनर्जी ने कुछ समय तक शिक्षा ग्रहण की।

पण्डित जी ने 7 वर्षो तक मैहर मे रहकर बाबा अलाउद्दीन खॉ से शिक्षा ग्रहण की। पण्डित रविशकर आपके गुरू भाई थे परन्तु निखिल जी की वादन शैली उनसे भिन्न थी। इन्होंने अपनी एक विशिष्ट वादन-शैली निर्मित की। आलाप, बॉट, लयकारी, उपज - सभी में निखिल जी ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया।

उनके वादन में गायकी शैली परिलक्षित होती है। पं० रविशंकर जी से भी उन्होंने कुछ समय तक तालीम ली। उसके बाद उस्ताद विलायत खॉ के वादन की छाप भी निखिल जी की शैली पर थी। उनके वादन में सन् 1950 के लगभग गायकी अग की छाप स्पष्ट होने लगी जो पं० अमीर खॉ के गायन का प्रभाव था और अन्त में समग्र रूप से निखिल जी की वादन शैली पर अमीर खाँ के गायन की स्पष्ट छाप देखा जाता है। सेनिया घराने की सुडौल, निपुण तन्त्रकारिता में विलम्बित ख्याल का मन्द्र प्रवेश इसी प्रभाव को दिखाता है। निखिल जी के तानों में अमीर खॉ के वैशिष्ट्य 'मेरूखण्ड' का प्रभाव था। निखिल जी के वादन की प्रमुखता थी मीड अग की तान तथा उनके जैसी मधुरता अन्यत्र दुर्लभ थी। इनके वादन में स्वर की चैन, शुद्धता और गम्भीरता थी, आलाप की गहराई, तार पर मिजराब के प्रहार की मिठास आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उनको एक अलग मुकाम पर पहुॅचाती है। आप बन्द जवारी का प्रयोग करते थे तथा अतिद्रुत में झाला बजाते थे। गमक का अद्भुत प्रयोग उनकी वादनशैली की एक और विशेषता थी। कहा जाता है कि निखिल जी की वादन शैली में पं० रविशंकर, अली अकबर और उ० विलायत खाँ के गुणों का समन्वित रूप था।

ऐसी बहुमुखी प्रतिभावान कलाकार का मात्र 55 वर्ष की उम्र में 27 जनवरी 1986 को देहान्त हो गया।

वे सितार वादन में नव चैतन्य ले आए, नया दृष्टिकोण लाए, एक नई शैली दी जो अनुकरणीय है।

*** *** ***

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

आधुनिक कलाकार एवं वादन शैली

इस अध्याय में सितार के कुछ आधुनिक कलाकारों की शैलियों के बारे में चर्चा की गई है कि किस प्रकार इन्होंने परम्परागत सितार वादन शैली को आधुनिक रूप देकर नई वादन शैली को जन्म दिया। इनमें मुख्य है प० रविशकर, उ० विलायत खॉ, उ० हलीम जाफ़र खॉ, प० बुद्धादित्य मुखर्जी, इत्यादि।

पण्डित रविशंकर

पं० रविशकर ऐसे सगीतकार है जो आधुनिक शास्त्रीय संगीत में पिछली आधी शताब्दी से हिन्दुस्तानी संगीत का आदर्श बने हुए हैं। डॉ० मुकेश गर्ग के अनुसार "रविशंकर का सितार आधुनिक युग का नया सौन्दर्यशास्त्र है, क्या राग क्या ताल, क्या लयकारी - सबकी मानो वह कसौटी हैं"[1] सितार वाद्य को देश-विदेश में लोकप्रिय बनाने तथा उसमें मौलिक कल्पनाओ के सृजन का श्रेय पं० रविशंकर को ही है। इनकी वादन शैली उत्तर तथा दक्षिण भारतीय वीणा की यन्त्रकारी, कत्थक नृत्यों के छन्दों के अंग, सितार पर बीन अंग का आलाप, जोड़ की शैली की जैसी उदात्तता और गरिमा रविशंकर ने दी उसका कोई सानी नही। दो-दो, तीन-तीन सुरों की छोटी-छोटी मीड के साथ मिजराब और कृन्तन के काम का जैसा सर्जनात्मक मेल उन्होने किया वह अद्भुत है।

गायन की भाति सितार में सबसेकठिन काम मन्द्रतम व तारतम स्वरों का स्पर्श है और यही काम इनके वादन की विशेषता है। लरज-खरज में अति मन्द्र का उनका आलाप तो कभी-कभी बीन की भव्यता को भी पीछे छोड़ देता है।

---

[1] सगीत, अप्रैल-1992

विलम्बित से लेकर अतिद्रुत तक उनके दॉए-बॉए हाथों की उंगलियों का तालमेल विस्मयजनक है।

पण्डित जी की पिछली पीढी के सितारवादकों में जो कलाकार आलाप बजाता था उसका आलाप में ही नाम होता था। गत बजाने वाले की इज्जत गत में ही होती थी। इसी प्रकार ठुमरी में ठुमरी बजाने वाले का नाम हुआ करता था। पण्डित जी ने इन सबका समन्वय कर दिया जिससे कि आलाप, जोड, गत, ख्याल, ठुमरी, धुन, लयकारी, तैयारी, सवाल-जवाब, दक्षिण भारतीय रागों का प्रयोग कर एक अभिनव शैली श्रोताओं को प्रदान की, जो कि उस जमाने में बिल्कुल नई बात थी।

रविशंकर की वादनशैली में ताल-लय का वर्चस्व है। इसके लिए दॉए हाथ की कारीगरी को उन्होंने काफी बढाया, मिजराब के काम में आज जो इतनी बारीकी और विविधता दिखाई देती है उसमें पण्डित जी का भारी योगदान है। ढेरों किस्म की तिहाइयों, लयकारियो के विचित्र प्रयोगो और हर दर्जे की तैयारी से उन्होंने सितार की पुरानी दुनिया बदल कर रख दी। तबलावादकों का सम्मान बढाने में भी पण्डितजी की लडन्त और सवाल-जवाब भरी वादनशैली का निर्णायक योगदान रहा है।

आपको भारत सरकार की ओर से सर्वश्रेष्ठ उपाधि 'भारत रत्न' से भी सम्मानित किया गया है।

विलायत खॉं

सितार वादक के रूप में उस्ताद विलायत खॉं का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। आप अधिकांश मसीतखानी गत् शैली को ही प्रस्तुत करते हैं। विलम्बित लय में तानों के विभिन्न प्रकारों का वादन आपकी विशेषता है। आप गतकारी से पूर्व अपने वंशजों के समान आलाप, जोड़, विस्तार सुन्दरतापूर्वक करते हैं, तत्पश्चात् मसीदखानी और रज़ाखानी गतें बजाते हैं। आपकी गतकारी में लय का विचित्र

कार्य रहता है। जिसमें फिरत की तान, कूटतान, गमक तथा मीडयुक्त स्वरावली का क्रमानुसार वादन रहता है। आपके रजाखानी गतों की लय तेज होती है, जिसमें सपाट तानो का प्रयोग गमक, लागडाट, कण तथा जमजमा आदि के दर्शन होते है। अन्त मे आप झाले के विभिन्न छन्दों के प्रयोग के साथ उलट झाले का कुशलतापूर्वक प्रयोग कर श्रोताओं को चकित कर देते है। आप अधिकांश प्रचलित राग जैसे- मधुवन्ती, केदार, पूरिया धनाश्री, ललित, शुद्ध सारंग, तोड़ी, मुल्तानी, कल्याण, मियॉ मल्हार, जैजैवन्ती आदि का ही वादन करते हैं। आपने मियामल्हार जैसे गायकी अग के राग में भी अपनी कलाका कुशल प्रदर्शन कर यह सिद्ध कर दिया है कि सितार पर (सभी प्रकार) के रागों की अवतारणा सम्भव है।

उस्ताद हलीम जाफ़र खाँ

अब्दुल हलीम जाफर खॉ इस देश के चुने हुए प्रतिष्ठित कलाकारों में से एक है। मसीतखानी और रजाखानी बाजो को समेटते हुए खाँ साहब ने एक स्वतन्त्र शैली की प्रतिष्ठा की जिसे 'जाफरखानी बाज' के नाम से जाना जाता है। खॉ साहब इन्दौर के बीनकार घराना के प्रतिनिधि कलाकार है जिसको इन्होंने अपनी विद्वता एव शिक्षा से एक नया रूप दिया। इनके वादन मे बीन अंग के आभास मिलने के कारण एक पुरातन वातावरण एवं वैचित्र्य प्राप्त होता है किन्तु इनकी बन्दिशें अत्यन्त सूझपूर्ण एवं जटिल होती है। बीनकारी की पुरानी शैली में जब इनके अपने प्रयोग सम्मिलित होते हैं तब आधुनिकता के ऐतिहासिक सन्दर्भ में उनकी रचनाओं की सार्थकता सिद्ध होती है।

खॉ साहब की वादन शैली की विशेषता है दोनों हाथों की तैयारी की स्पष्टता एवं माधुर्य का समन्वयन। वैसे तो प्रथानुसार सितार वादन में गत के पूर्व आलाप, जोड़, झाला क्रमशः बजाया जाता है किन्तु जाफरखानी बाज में गत के पूर्व इन्होंने झाले का समावेश नही किया है। इनका कहना है झाले का राग के अन्तिम चरण में बजाया जाना ही उपयुक्त है क्योंकि इसी के साथ राग अपने

चरमोत्कर्ष बिन्दु को स्पर्श कर लेता है। यही पर लय का अन्तिम पडाव भी आ जाता है तथा इसके बाद इसी राग को नये सिरे से बजाने का कोई औचित्य नही है। गत के पूर्व के झाले के स्थान पर इन्होंने रागालाप के जोड में नई सीढियॉ जोड दी हैं।

जाफरखानी बाज पूर्णतः स्वर उद्दोलन (Harmonics) से भरा होता है। इन्होंने इस बाज में विलम्बित गत मे सोलह मात्राओं के भरण में बॉए हाथ के काम को बढा दिया है जिससे एक मात्रा और एक मिजराब में चार, छह, आठ, सोलह स्वरो का भरण खटका, मुर्की, जमजमा और छपका अंग, यह विलम्बित मे 'जाफरखानी बाज' है। जाफरखानी शैली अत्यन्त वैयक्तिक है जिसका आसानी से अनुसरण नही किया जा सकता। वादन शैली जटिल होते हुए भी हृदयग्राही है कल्पना माधुर्य का अति उत्तम सामन्जस्य है।

खॉ साहब की शैली में विभिन्न तकनीकों का समावेश है। इस बाज में दॉए हाथ के बोलों को काफी वजन के साथ बजाया जाता है। विलम्बित गत और ठुमरी अंग के गतों में इस शैली का स्वरूप सबसे ज्यादा निखरता है। खॉ साहब बजाते समय बॉए हाथ के अनुसार दाहिने हाथ के बोल निश्चित् करते हैं।

खॉ साहब अपने वादन में Resonance या अनुरणन का अभिनव प्रयोग करते हैं। इस तकनीक में तरब के तारों को छेडकर राग को प्रारम्भ करने के बजाए प्रतिध्वनि (echo) से प्रारम्भ करते है। वे दो प्रकार से प्रतिध्वनि का प्रयोग करते है :-

(१) साधारण प्रतिध्वनि
(२) मीड़ प्रतिध्वनि

बाज के तार को मध्यम मानकर बाकी परदों की व्यवस्था की गयी है तथा सभी सुरों के लिए परदे लगे होते हैं। "Jaffer Khani Baj Innovation in Sitar

Music" में कहा गया है कि जब बॉए हाथ के तर्जनी उगली से बाज के तार को किसी एक परदे को, जैसे 'म' का परदा, दबाया जाता है और उस तार को दॉए हाथ से छेडा जाता है तो सितार में 'म' स्वर बजता है लेकिन बॉए हाथ की उगली को न दबाकर बल्कि हल्का सा मध्यम के परदे पर स्पर्श करके मिजराब द्वारा तार को छेडा जाता है तो एक सप्तक ऊपर के मध्यम की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पडती है। प्रत्येक तार में ऐसे तीन बिन्दु होते हैं जहॉ पर इस तरह से प्रतिध्वनि उत्पन्न करना सम्भव है।

मीड़ प्रतिध्वनि :

जाफरखानी बाज के अनुसार सर्वप्रथम तार सप्तक के रे स्वर के परदे पर बाज के तार में मिजराब से 'दा' का प्रहार करते ही तुरन्त एक हल्का सा प्रहार जो कि एक मात्रा से कम समय में किया गया, इसके साथ ही मध्य सप्तक के 'रे' के परदे पर 'रे ग म' मीड लिया जाता है। इस तरह जब उगली कही रहती हो और ध्वनि कही और से आती हुई प्रतीत हो यह जाफरखानी बाज की एक मुख्य विशेषता है।

छपका अंग :-

यह मन्द्र एव अतिमन्द्र सप्तक मे ही प्रयुक्त होती है। इस अग के अन्तर्गत बॉए हाथ की उंगलियों से बाज के तार को छेडकर तुरन्त जोड़ के तार को छेडा जाता है और फिर दोनों तारों में ५ से १६ स्वरों का समूह एक ही प्रहार से बजाए जाते है। जब यही क्रिया दो के स्थान पर तीन तारों में किया जाता है तो वह जोड-छपका अंग कहलाता है।

उचट् लड़ी :-

एक ही प्रहार से चार स्वरों के बजाने को उचट कहते हैं। इसी प्रकार एक के बाद एक कई बार लगातार इस क्रिया को किया जाए तो वह उचट-लड़ी कहलाता है।

कॉर्ड तकनीक :-

इस क्रिया के अन्तर्गत अत्यन्त सावधानी से दो तारों को एक साथ बजाया जाता है।

गत-भरन :-

इसमें राग के स्वरूप को उजागर करने के लिए मिजराब से विभिन्न प्रकार के बोलों का सहारा लिया जाता है। यह काम एक स्वर से दूसरे स्वर को बजाने के बीच के समय की पूर्ति विभिन्न बोलो के माध्यम से किया जाता है। इसे ही गत भरन कहते है। इसमें चिकारी का प्रयोग नही किया जाता है।

गत अंग चाल :-

यह गत भरन अंग जैसा ही है। गत भरन मे मिजराब के बोल निश्चित् होते है परन्तु गत अग चाल मे मिजराब के बोल बदल जाते है।

भरण चाल :-

इसमें चिकारी के माध्यम से गत में भराव किया जाता है।

गत तोड़े :-

इसमें गत की चाल से दुगुन और तिगुन में मिजराब के बोलों का प्रयोग होता है और पेंचीदे तिहाइयों का प्रयोग होता है।

आपने जोड तथा गत में विषम जातियों के तालों का प्रयोग किया तथा तबला वादक को वादन में प्रोत्साहन देकर लडन्त जैसी रोचक क्रिया भी की। इसमें दोनों वादक एक साथ सम दिखाते है। आपकी गतें एक या दो आवर्तन तक ही होती है। अतिद्रुत लय के झाला वादन के समय भी स्वरों की स्पष्टता आपके वादन की ख़ास विशेषता है। आप ठोंक झाला भी अवश्य बजाते हैं जिसमें चिकारी का प्रयोग कम होता है।

वर्तमान सितारवादकों में उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खॉ का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। खॉ साहब ने कुछ पुराने रागों का भी पुनरूद्धार किया है, जैसे – चम्पाकली, अरज, श्याम केदार, हिजाज, राजेश्वरी, फरगना तथा दक्षिण के कुछ राग नई साज–सज्जा में पेश किए है, जैसे – कीरवाणी, बसन्त मुखारी, लतागी, हेमावती, षष्मुखप्रिय, कनकागी इत्यादि।

आपकी अपनी रचनाएँ है – चक्रधुन, शरावती, कल्पना, मध्यमी, मजामिरी, छेडछाड, खुसरूवाणी।

आपने संगीत पर अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं – अंग्रजी और उर्दू में उन्होने अमीर खुसरो की सातवी शताब्दी पर कई लेख लिखे हैं। एक पुस्तक खुसरोशनासी – 'नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इण्डिया' द्वारा प्रकाशित हुई है। आप देश–विदेश में अनेक ख्याति अर्जित कर चुके है। आप देश के सर्वोत्कृष्ट सितारवादकों में एक है।

पण्डित बलराम पाठक

श्री बलराम पाठक की सितार की शिक्षा अपने पिता पं० रामगोविन्द पाठक से हुई जो कि कासिमबजार के दरबारी संगीतज्ञ थे। पण्डित जी की सात पीढ़ियों से सगीत चला आ रहा है। आपके परिवार में वीणा, सुरबहार और सितार प्रमुख वाद्य रहे हैं।

पाठक जी जब १६ वर्ष की उम्र के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। अतः सम्पूर्ण परिवार का दायित्व पाठक जी के कन्धों पर आ पडा। पाठक जी की शिक्षा–दीक्षा का प्रारम्भिक स्तर इनके पिता के कठोर अनुशासन के अन्तर्गत हुआ। पण्डित जी को इतना रियाज़ करना पड़ता था कि १४ दिनों में ४ नम्बर के बाज का तार टूट जाए। परन्तु आपके सागीतिक जीवन में दुःख एवं बीमारी के कारण अनेक रूकावटें आयी। उनका सांगीतिक जीवन जब चरमोत्कर्ष पर था उसी समय पाठक जी 'रयूमेटिक आर्थराइटिस' (Rheumatic Arthritis) से पीड़ित

हो गए जिसके कारण पाठक जी के लिए थोडी देर तक भी सितार बजाना दूभर हो गया। यह ५०-६० का दशक था जबकि पण्डित जी अपनी बीमारी से लाचार थे और उनके दो प्रतिद्वन्दी प० रविशंकर और उ० विलायत खॉ अपने वादन से सम्पूर्ण विश्व में अपना झण्डा गाड रहे थे। सितारवादन में अति तेज लय की ताने और तैयारी की चीजें, जिनपर बीमारी से पहले पाठक जी का अधिकार था, बीमारी के कारण अब वह यह सब बजाने में असमर्थ हो गए परन्तु इनसे निराश न होकर पाठक जी ने अपने लिए एक दूसरी शैली का निर्माण किया जिसमें अत्यन्त कठिन मीड और खनक का भरपूर प्रयोग था। इस शैली से पाठक जी ने अपने लिए एक विशिष्ट शैली निर्मित की। इसमें तानों की अपेक्षा बोल-तानों की विविधता होने लगी तथा खरज के तार का अधिक मात्रा में प्रयोग करने लगे और तेज रफ़्तार की चीजों के बजाए 'हारमनी' जैसी चीजों को अधिक बजाने लगे। इन सब चीजों से पाठक जी की एक नवीन शैली विकसित हो गई।

पण्डित जी एक उदारवादी सगीतज्ञ थे। वे हमेशा नई चीजों को अपनाने और प्रयोग करने में विश्वास करते थे। एक बार छत्तीसगढ़ के किसी लोकधुन से प्रभावित होकर आपने उसके आधार पर एक राग का निर्माण किया जिसका नाम 'लीलावती' रखा। आप उत्तर भारत के अग्रणी कलाकारों में थे जिन्होंने दक्षिण भारतीय संगीत के कुछ पहलुओं को उत्तर भारतीय संगीत में लाने का प्रयास किया। आपको अनेक कर्नाटकी रागों का ज्ञान था और आपने उन रागों को मंच पर भी बजाया, जैसे - चारूकेशी, सम्मुखप्रिय, लतांगी, चालनट इत्यादि।

उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ

उस्ताद मुश्ताक अली खॉ का जन्म २६ जून, १६११ ई० में बनारस में हुआ। आपको सितार वादन की शिक्षा अपने पिता उस्ताद आशिक़ अली खॉ से प्राप्त हुई जो कि उस्ताद बरक़तुल्ला खॉ के शिष्य थे। इन्होंने सेनियों की वादन परम्परा को जीवित रखा।

उस्ताद मुश्ताक अली खॉ की मसीतखानी शैली से सेनियों की प्राचीन शैली का बोध होता है। आप बहुत कठोरता से वादन में परम्परागत शैली का निर्वहन करते है। आप अपने आलाप शैली के लिए मुख्य रूप से जाने जाते है जिसमे आलाप तथा जोड अग शैली में सितार तथा सुरबहार दोनों वाद्यों को ही बजाते है, जिसमें जमजमा सूत को बहुत सफाई केसाथ पेश करते हैं। परन्तु आप सितार अग की तानों में कृन्तन, जमजमा आदि का प्रयोग बहुत कम करते है। इनके वादन में रागों की शुद्धता पूर्णरूप से विद्यमान रहती है।

आलाप तथा जोड करने के बाद आप विलम्बित गत शुरू करते है जिसमें सम्पूर्ण गत को बजा लेने के बाद गत को कई प्रकार की गतकारी तथा गत-बहलाव करते हैं। तत्पश्चात् फिक्रें तथा उपज तोड़े बजाते है। बिना तिहाई के कुल्फीदार ताने बजाते है। प्राचीन जयपुर के सेनियों द्वारा मसीतखानी गतों में तिहाई का प्रयोग बिल्कुल नही किया जाता था तथा सितार में केवल तीनताल का ही प्रयोग किया जाता था क्योंकि तीनताल को एक सम्पूर्ण ताल माना जाता था जिसमे कि सितार के सभी प्रकार के बोल समाविष्ट हो सकता है। मसीतखानी गत के पश्चात उस्ताद मुश्ताक अली खॉ रजाखानी गत बजाते हैं। इसमें तोडों में विभिन्नता प्रस्तुत करने की कला एवं कुशलता खॉ साहब की गतकारी का प्रमुख अंग है। आप प्रारम्भ में छोटे-छोटे तोडों का प्रयोग करते हैं जिनकी लम्बाई धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इनका प्रारम्भिक स्थान लय, छन्द व गत से मिलने का ढंग अन्य विशेषता है। विभिन्न लयकारियों एवं छन्दों की विविधता से अलंकृत आलाप के लयबद्ध अंग में पहले गति धीमी रहती है एवं अन्त तक पहॅुचते-पहॅुचते गति भी चरम सीमा को छू लेती है। उसके बाद गतकारी प्रारम्भ होती है। गतकारी के पश्चात झाले के विविध प्रयोग में बड़ा वैचित्र्य दृष्टिगत होता है। खॉ साहब ने रजाखानी गत की शिक्षा कलकत्ता के सरोद नवाज़ उस्ताद आमीर खॉ से ली।

खॉ साहब सेनियों की खास चीज़ ढड्डा वाणी तथा रसलवाणी का भी प्रयोग करते हैं। खाँ साहब की वादन शैली ध्रुपद अंग से प्रभावित है।

पं० देबू चौधरी

आधुनिक समय के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में देबू चौधरी (देवब्रत चौधरी) का नाम लिया जाता है। पण्डित देबू चौधरी की प्रारम्भिक शिक्षा स्व० पॉचूगोपाल दत्त से प्राप्त हुई। तत्पश्चात् उस्ताद मुश्ताक अली खॉ से तालीम मिली जो कि सितार के प्राचीन पारम्परिक स्वरूप को अपने वादन में बनाए रखने के लिए विख्यात है। इस घराने की खास बात यह भी है कि यह घराना आठ पुश्तों से सितार वादन के लिए अपने समय में प्रसिद्ध रहा है। प्राचीन परम्परानुसार इस घराने मे आज भी १७ परदो का प्रयोग किया जाता है। कोमल 'ग' तथा कोमल 'नि' के परदे नही लगाए जाते। इन स्वरों को मीड के सहारे उत्पन्न किया जाता है। पण्डित देबू चौधरी इस धारा को अपने वादन में बखूबी बनाए हुए हैं।

पण्डित चौधरी के वादन की सर्वप्रमुख विशेषता पुराने तन्त्र अंग को बरकरार रखते हुए सौन्दर्य तथा माधुर्य का अभूतपूर्व सम्मिश्रण है। पण्डित जी की ७ स्वनिर्मित रागे है जिनके नाम हैं - विश्वेश्वरी, पलाश सारंग, अनुरंजनी, आशिकी ललित, स्वानन्देश्वरी, कल्याणी बिलावल तथा शिवमंजरी।

भारतीय शास्त्रीय सगीत को विश्व व्यापी बनाने के लिए प्रो० देबू चौधरी ने दुनिया भर के सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों में गए तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई महोत्सवों मे अपना वादन प्रस्तुत कर लोगों को मोहित किया। आपके अनेकों कैसेट, रिकॉर्ड हैं जो कि भारत, यू०के०, अमरीका आदि देशों में अपना स्थान बनाए हुए है। आप भारत सरकार की ओर से दिए गए कई महत्वपूर्ण पदों पर विराजमान है तथा आप दिल्ली विश्वविद्यालय में संगीत के विभागाध्यक्ष तथा 'संगीत तथा ललित कला संकाय' के डीन के पद पर आसीन रहे हैं। इस प्रकार प्रो० चौधरी का इस क्षेत्र में अद्वितीय योगदान है। आपने एक पुस्तक भी लिखी है जिसका नाम Sitar and its techniques है, जो कि संगीत प्रेमियों में बहुत प्रचलित है।

हमीद खाँ तथा छोटे रहिमत खाँ

उस्ताद हमीद खॉ एव छोटे रहिमत खॉ ग्वालियर घराने के तन्त्रशैली से सम्बन्धित है। ग्वालियर घराने की तन्त्रशैली चार सौ साल पुरानी है। उस्ताद हमीद खॉ का जन्म १६५१ में तथा उस्ताद छोटे रहिमत खॉ का जन्म १६५६ को हुआ। इनके पिता अब्दुल करीम खॉ थे। दोनों भाइयों को सगीत की शिक्षा–दीक्षा अपने पिता से प्राप्त हुई।

इनके पितामह रत्नरहिमत खॉ (१८६३) अपने समय के मूर्धन्य कलाकारों में थे। आपने एक शैली निर्मित की जिसमें बीन की वादन तकनीक को सितार की वादन तकनीक के साथ मिलाया तथा आधुनिक खयाल गायन की कुछ विशेषताओं को सितार में शामिल किया। इन्ही विशेषताओं को इनके पौत्र हमीद खॉ एवं छोटे रहिमत खॉ ने अपना वादन शैली बनाया।

उस्ताद हमीद खॉ कर्नाटक विश्वविद्यालय में संगीत के आचार्य पद पर आसीन है। आपके वादन की मुख्य विशेषता पारम्परिक वादन शैली तथा टीप का अनूठापन है। इनके वादन की रिकॉर्डिग में सितार की आवाज़ बॉए स्पीकर से आती हुई प्रतीत होती है। इसके विपरीत छोटे रहिमत खॉ के सितार की ध्वनि दॉए स्पीकर से आती हुई सुनाई देती है। छोटे रहिमत खाँ गोवा के कला अकादमी में शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं तथा देश–विदेश में अनेकों कार्यक्रम दे चुके हैं।

उस्ताद निशात् खाँ

उस्ताद निशात् खॉ सितार के प्रसिद्ध घराना इमदादखानी घराने के हैं। इनके पिता मशहूर सुरबहार एवं सितारवादक उस्ताद इमरत खॉ हैं जो उस्ताद विलायत खाँ के छोटे भाई हैं तथा उस्ताद इनायत खाँ के पुत्र हैं। उ० इनायत खाँ के पिता उ० इमदाद खाँ तथा उ० इमदाद खॉ के पिता उ० साहबदाद खाँ

थे। इस घराने के सभी व्यक्तियों का सितारवादन में अभूतपूर्व योगदान रहा है। इस प्रकार निशात् खॉ को सगीत विरासत में मिली।

प्रारम्भ मे निशात् खॉ को घराने की रीति के अनुसार सितार तथा सुरबहार - दोनों वाद्यों की शिक्षा दी गई। जब तक कि उन्होंने स्वयं को मुख्य रूप से सितारवादक बनाने का दृढ निश्चय न कर लिया। निशात् खॉ ने अपने ४ वर्ष की आयु मे मंच पर पहला कार्यक्रम दिया और १६ वर्ष की उम्र में सितार कार्यक्रम देते हुए विश्व यात्रा की और खुद को यथा योग्य साबित किया।

निशात् खॉ ने सगीत को एक पवित्र धरोहर समझ कर इस कला के संरक्षण को अपना धर्म समझा। निशात् खॉ अपने वादन के ज़रिए अपने घराने की खूबियों को लोगों तक पहुँचाना चाहते है साथ ही विभिन्न प्रकार के प्रयोग करने में भी नही चूकते। इन्होंने 'फ्यूजन' में भी महत्वपूर्ण कार्य किए और इस दिशा में भी अपनी छाप छोडी। इन्होंने जॉन मैक लाफलिन, फिलिप ग्लास, लूसियानो पावारोटी तथा पाको पेना के साथ कई 'फ्यूज़न संगीत' का सृजन किया।

एक नामी घराने के होने के कारण निशात् खॉ को बार-बार उनके पूर्व-पुरूष महारथियों से तुलना का सामना करना पडता था इस कारण अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए इन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई। इसके लिए इन्होंने चार साल का 'चिल्ला' किया जिसमें इन्होंने आलाप-जोड़ तथा झाला में एक अपनी शैली निर्मित की। निशात् खॉ के वादन में मिठास तथा सौन्दर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है जिसमें खासतौर से मीड़ का काम अद्वितीय है। इनके अनुसार यह जान-बूझ कर कोई प्रयोग नही करते बल्कि वह वही बजाते है जो इनका दिल कहता है। यह अपने पूर्वजों की शैली को पूरी ईमानदारी तथा हठता के साथ निभा रहे हैं।

उस्ताद शुजात् खॉ

उस्ताद शुजात् खॉ अति समृद्ध सितारवादकों के घराने से सम्बन्धित है। इन्होंने अपने पिता उस्ताद विलायत खॉ से सगीत की शिक्षा प्राप्त की। उस्ताद शुजात् खॉ की वादन परम्परा इमदादखानी घराने का है। इमदादखानी घराना ग्वालियर के बीनकार घराने की एक शाखा है। शुजात् खॉ के प्रपितामह उस्ताद इमदाद खॉ इस घराने के सस्थापक है। इस घराने की खूबियॉ, जैसे - खयाल शैली की विशेषताओ का सितार वाद्य में बडी ही संजीदगी से बजना है। यह बात उस्ताद शुजात् खॉ के वादन के विषय में भी लागू होती है।

उस्ताद शुजात् खॉ की सितार की शिक्षा ३ वर्ष की उम्र में ही शुरू हो गई थी। एक बहुत छोटे आकार का सितार इनके लिए बनवाया गया जिसपर शुजात् रियाज करते थे। ६ वर्ष की उम्र से ही शुजात् खॉ ने जलसों में बजाना प्रारम्भ कर दिया था। शुजात् खॉ ने देश-विदेश में बहुत से कार्यक्रम प्रस्तुत किए है।

पण्डित बुद्धादित्य मुखर्जी

पं० बुद्धादित्य मुखर्जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता श्री विमलेन्दु मुखर्जी से प्राप्त की। इन्होंने उ० इनायत खॉ से शिक्षा प्राप्त की। श्री बुद्धादित्य मुखर्जी ने 12-13 वर्ष की आयु से मच पर कार्यक्रम प्रस्तुत करना शुरू किया।

"समयचेतना-१६६६" अक में सुनीरा कासलीवाल द्वारा लिए गए साक्षात्कार में श्री मुखर्जी ने अपने घराने के विषय में कहा है कि "संगीत तो करने वाले का होता है, ऐसे कई लोग हैं जो घराने का नाम जोड़े हुए है पर संगीत में उनकी कोई खास हैसियत नहीं है। अन्ततः संगीतकार का व्यक्तित्व और उसकी कला का महत्व होता है। वैसे देखा जाए तो पिता जी ने इनायत खॉ साहब के शिष्य से सीखा, इसलिए घराना तो वही हुआ।"

आपके विचार से गुरू सिर्फ तकनीक सिखाता है, खडे होने के लिए वह जमीन भर देता है, आगे उडना कलाकार की जिम्मेदारी है। उसे अपनी स्वतन्त्र बुद्धि विकसित करनी होती है, अपनी शैली और व्यक्तित्व विकसित करनी होती है। घराना तो सिर्फ बुनियाद होता है।

पं० मुखर्जी का मानना है कि गाना जानना बजाने के लिए जरूरी है क्योंकि उसी के अन्दाज़ पर बजाना है। अगर मन में गाना न रचा बसा हो तो जो कुछ बजायेंगे वो सूखा वादन होगा, वह भी सही दिशा में नहीं होगा। आपके पसन्दीदा गायक है उ० बडे गुलाम अली खॉ, फिर कुमार गन्धर्व। रियाज़ के विषय में आपका कहना है कि मन और अगुली को एक करने के लिए चाहिए रियाज। यदि कहा जाए कि रियाज़ ही सगीत है, तो भी गलत नहीं होगा। रियाज एक सुन्दर कलाकृति के लिए जरूरी साधन है।

गायकी अग के बारे में आपका मानना है कि गायन से कई गुना ज़्यादा मुश्किल काम है वाद्य बजाना। गाने में लगातार आवाज का साथ रहता है। सितार या सरोद जैसे 'स्ट्रोक' वाले वाद्यों में यह सहूलियत नहीं है इसीलिए सितार या सरोद में गायकी बजाके निकालना एक बड़ी उपलब्धि है। हालांकि थोडी–बहुत गायकी अंग सभी घराने के वादक बजाते हैं लेकिन इमदादख़ानी घराने की खासियत यह है कि उसमें गायकी पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके लिए उसमें कई तरह की तकनीक इजाद की गई है। आप अपनी वादन पद्धति को ख़्याल अंग न कहकर गायकी अंग की मानते हैं क्योंकि आपके मत से ख़्याल अंग तो उसका सिर्फ एक भाग है। ख्याल अंग से कहना एक हद तक गलत नहीं होगा पर ख्याल में आलाप-जोड होता नहीं है। गायन में आलाप जोड़ होता है – ध्रुपद अंग में। ध्रुपद के लम्बे-लम्बे मींडों का तो आलाप में प्रयोग होता है अब देखना यह है कि सितार कितनी प्रबलता से गा रहा है – पॉच फीसदी या पचासी फीसदी, यानि जब लगने लगता है कि एक व्यक्ति गले की अपेक्षा सितार से गा रहा है तो इसे हम गायकी अंग कहते है।

ताल के विषय में आप कहते है कि “मै एकताल, आडा-चौताल भी बजाता हूँ, लेकिन तीनताल मुझे अधिक आकर्षित करता है। इसके विभागों में एक समरूपता है, परन्तु कुछ विषम प्रकृति के तालो में गीतात्मकता टूटती है जटिलता आ जाती है। इसे सुनने और बरतने में मुझे समरूपता की हानि लगती है, यह निश्चय ही मेरी राय है।” इस प्रकार प० बुद्धादित्य मुखर्जी ने कुछ पहलुओं पर अपने मत प्रकट किए। प० बुद्धादित्य मुखर्जी की राग भीमपलासी पर एक बन्दिश इस प्रकार है .

राग भीमपलासी : तीनताल [1]

– बुद्धादित्य मुखर्जी

स्थायी :

स	नि	स	–	नि	ध	प	–	–	मग	–	म	पनि	प	सं	–
०				३				x				२			
सं	नि	सं	–	नि	ध	प	–	–	मग	मग	म	प	–	स	–
०				३				x				२			
संनि	निसंरे	नि	सं	–	नि	ध	प	–	ग(प)	–	मम	ग	रे	स	–
०				३				x				२			
नि	स	ग	ग	म	म	प	प	निनि	पम	गम	पनि	संनि	धप	मग	रेस
०				३				x				२			
–	सं	नि	सं	–	नि	ध	प	–	ग	–	म	प	–	सं	–
०				३				x				२			

[1] प्रस्तुत गत “संगीत” मासिक पत्रिका द्वारा प्राप्त

अन्तरा .

प पप प प	- म निप गम	प प नि प	नि स स -
०	३	x	२
नि - स ग	रे[स] रे स -	नि - स -	नि ध प म
०	३	x	२
प सस नि ध	प ग - म	प ग - मम	ग रे स -
०	३	x	२
नि़ सस ग ग	म म प प	निनि पम गम पनि	सनि धप मग रेस
०	३	x	२
- स नि स	- नि ध प	- ग[म] - म	प नि प सं -
०	३	x	२

तन्त्रीवाद्य, विशेषकर सितार में स्थापित परम्परा और आधुनिक समय में जो शैलीगत परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं इस सम्बन्ध में प्राप्त शास्त्रोक्त जानकारी के अतिरिक्त एक प्रश्नावली के तहत कुछ विद्वानों से उनके ज्ञान और अनुभव के आधार पर कुछ तथ्य संकलित किए गये है। इस सकलन के क्रम में प्रश्नावली से हटकर भी कुछ पहलुओं पर विचार किया गया है। इस सन्दर्भ में मूल प्रश्नावली इस प्रकार रही :-

प्र०-१ आपकी वादन शैली किस घराने से सम्बद्ध है?

प्र०-२ आपके विचार से तन्त्रीवाद्यो/सितार मे कौन-कौन से घराने हैं?

प्र०-३ आपके घराने की मुख्य विशेषताऍं क्या है, तथा आपकी स्वय की वादन-विधि के विषय मे कुछ बताएँ।

प्र०-४ आज के परिदृश्य मे 'तन्त्रीवाद्यो' (सितार, सरोद) की वादन शैली, सम्बन्धित घरानों की विशिष्टताओं का पूर्णतः पालन करती है या नहीं?

प्र०-५ प्रश्न-(३) के उत्तर मे वे क्या कारण है जो इस स्थिति को प्रभावित करते है?

प्र०-६ क्या तन्त्रीवाद्यो के घरानो मे प्रारम्भिक स्तर से ही शिक्षण-विधि अथवा शिक्षण-सामग्री मे कुछ मूलभूत अन्तर होते है? यदि 'हॉं' तो किस प्रकार के?

प्र०-७ आपके विचार से तन्त्रीवाद्य के आधुनिक कलाकारो मे कौन-कौन से कलाकार परम्परागत शैली का निर्वहन कर रहे है?

प्र०-८ तन्त्रीवाद्यो मे शैलीगत प्रस्तुति मे वे कौन से तत्व है जो एक घराने से दूसरे घराने को पृथक करते है?

प्र०-९ भविष्य मे तन्त्रवाद्यो मे परम्परानुसार शैली को बरकरार रखने के लिए आपके क्या सुझाव है?

प्र०-१० उपर्युक्त के अतिरिक्त यदि कुछ और विचार हो तो कृपया उन्हें भी अवश्य सम्मिलित कर इस प्रश्नावली को पूर्णता प्रदान करें।

साक्षात्कार : पं० मणिलाल नाग

कोलकाता

पण्डित मणिलाल नाग के अनुसार भारत में जितने भी घराने है सभी के मूल में 'दिल्ली' घराना है। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद कलाकार विभिन्न प्रान्तों के राजा-महाराजाओं के दरबार में आमन्त्रित होकर बस गये।

इसी समय बंगाल के बॉकुडा जिले के विष्णुपुर के राजा वीर रघुनाथ सिह बहादुर दिल्ली के उस्ताद बहादुर हुसैन खॉ को, जो कि तानसेन के वंशज थे, उन्हे अपने दरबार में आमन्त्रित कर लाए। यहाँ आकर इनके सुप्रसिद्ध शिष्यों में थे - रामशरण भट्टाचार्य और गदाधर चक्रवर्ती। इनके शिष्यों में थे अनन्तलाल बन्द्योपाध्याय, यदुभट्ट, क्षेत्रमोहन गोस्वामी (दण्डमात्रिक स्वरलिपि के स्रष्टा) आदि। अनन्तलाल बन्द्योपाध्याय के पुत्र थे' संगीताचार्य रामप्रसन्न बन्द्योपाध्याय, गोपेश्वर बन्द्योपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय - सभी अपने समय के सुप्रतिष्ठित कलाकार थे।

विष्णुपुर घराने की विशेषता है उसका ध्रुपदाग का प्रयोग। ध्रुपद की विशिष्टताओं पर आधारित वादनशैली और गत बजाते समय विभिन्न अलकार, मीड़ तथा कृन्तन का प्रयोग। सर्वप्रथम कृन्तन का प्रचलन विष्णुपुर घराने में ही किया गया। मेरे पिता स्व० गोकुल नाग ने मेरे पितामह स्व० गोबिन्द चन्द्र नाग के निकट कई वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सगीताचार्य रामप्रसन्न बन्द्योपाध्याय के पास काफी समय तक ध्रुपद गान, ख्याल, बीन, सुरबहार, सितार, इसराज, तबला, पखावज जैसे वाद्यों पर अपना अधिकार प्राप्त किया। विष्णुपुर की प्रधान विशेषता यही रही है कि इस घराने के सभी कलाकार ध्रुपद गायन के क्षेत्र मे विशेष परदर्शी थे तथा इसके साथ ही सगीत वादन का भी निरन्तर अभ्यास जारी रखा। मुझे भी प्रारम्भ में ध्रुपद गायन की अभ्यास अपने पिता के दिग्दर्शन में करना पडा तथा कई सालों तक मैने ध्रुपद गायन भी किया। किन्तु गले से सम्बन्धित असुविधाओं के कारण अब नही गाता हूँ। कभी-कभी सुरबहार भी बजाता हूँ। मेरे पिता के गुरू स्व० रामप्रसाद बन्द्योपाध्याय ने उस समय के महाराजा (कलकत्ता के) सौरेन्द्रमोहन ठाकुर के लखनऊ के प्रख्यात कलाकार सज्जाद मुहम्मद खॉ (जो कि बीन, सुरबहार और सितार के उत्कृष्ट कलाकार थे), उनसे दीर्घकाल तक शिक्षा प्राप्त की। इन्ही सज्जाद मुहम्मद खाँ से उस्ताद अलाउद्दीन खॉ साहब ने भी कुछ समय तक शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन खॉ साहब विष्णुपुर के प्रख्यात संगीतज्ञ गदाधर चक्रवर्ती के भतीजे नित्यानन्द चक्रवर्ती से सितार और सुरबहार की शिक्षा प्राप्त किया। उस्ताद विलायत खॉ के पितामह उस्ताद इमदाद खॉ की वादन शैली भी सज्जाद मुहम्मद के वादनशैली से प्रभावित हुई। वस्तुतः विष्णुपुर घराने की प्रधान विशेषता ध्रुपद शैली का आलाप एवं गत में विभिन्न प्रकार के बोलों का सम्मिश्रण तथा बड़ी गतों का बजाने का ही प्रचलन था।

०२. सितार एवं सरोद के अनेक घराने ही प्रचलित हैं। सितार में अमीर खुसरो के समय से ही सेनी घराना यथा अमृत सेन, रहीम सेन, निहाल सेन, जयपुर घराना, लखनऊ, दिल्ली, विष्णुपुर, इमदाद खाँ घराना, अलाउद्दीन खाँ या

मैहर घराना, बनारस का घराना (आशिक अली खॉ, पुत्र मुश्ताक अली खॉ) समयाभाव के कारण विस्तार से इस विषय पर चर्चा नही कर सका।

०३. आज के युग में बहुत से कलाकार अपने घराने की विशेषताओं को बरकरार नही रख पा रहे है इसका कारण है शिक्षा एव धैर्य का अभाव। थोडा-बहुत सीखकर ही अधिक नाम और लोकप्रियता की चाहत। पहले ऐसा नही था।

मेरे प्रश्नों के उत्तर में प० मणिलाल नाग जी की कृपा से उनके यह अमूल्य विचार मुझे उनक पत्र के माध्यम से प्राप्त हुआ।

साक्षात्कार : प्रो० एस०के० बैनर्जी
रीवा

विचार :

घराना कैसे हुए और आज के दिन में कितने घराने हैं? २००१ में कोलकाता, मुम्बई, दिल्ली एवं विदेशी बस और इनके अलावा जो है, पके फल की तरह हैं, ज्यादा से ज्यादा २०-२५ साल के लिए हैं।

प्रश्न : ऐसा होने का क्या कारण है? क्यों ऐसा होगा कि कुछ सालों के बाद घराने नही रहेंगे?

विचार :

Indian Music, particularly Indian Classical Music, without a spiritual background is only a physical and mental exercise इसे exercise करके पैसा कमाओं, मस्त रहो बस यही हो गया है आजकल और यह शुरू हुआ है तानसेन के समय से।

एकबार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में एक सेमिनार में ठाकुर जयदेव सिंह ने मुझसे पूछा कि भारतीय संगीत का पतन कब से शुरू हुआ, तो मैंने

कहा कि एक व्यक्ति ने एक सन्यासी से सगीत सीखा और बाजार में जाकर अपना नाम किया, वही से शुरू हुआ deterioration यही से घराना शुरू हुआ और घराने का अर्थ है capitalism, we all are capitalists और India में जिन्होंने सगीत को अपनाया उसमें दो प्रकार के लोग है - "saints and saintly persons" वह तीन व्यक्ति है जिन्हें saintly कह सकते हैं, वे है भातखण्डे, विष्णु दिगम्बर और बाबा अलाउद्दीन। इन्ही का दिया आज हम खा रहे है, बाकी सब बेकार है।

विचार :

घरानों में तीन प्रकार से शिक्षा दी जाती है - आम, खास और खासुल्खास; मतलब जो एकदम मुख्य हो अर्थात् लडका या पोता हो।

प्यार खॉ-जाफर खॉ ने मिलकर एक वाद्य बनाया जिसका नाम दिया सुरसिंगार। प्यार खॉ उम्र में छोटे थे लेकिन जाफर खॉ से पहले इनका देहान्त हुआ। परन्तु इनकी मृत्यु के समय इनको दफनाने जाफर खॉ नही गये। इसका कारण था कि अपनी विधवा बहन के पुत्र को प्यार खॉ ने शिक्षा देना स्वीकार किया क्योंकि प्यार खॉ निःसन्तान भी थे। इस लडके का नाम था बहादुर हुसैन। इसपर जाफर खॉ ने कहा कि यह तुमने क्या किया? क्योंकि बहन तो अब दूसरे घराने की हो गयी।

तानसेन घराने की यह परम्परा रही है कि हर दिन में तीनों चीजों को सीखना है। दिन के चौबीस घण्टे में तीन बार वीणा, गाना और मृदंग। उनकी पुत्री के घराने के लोग वीणा पर specialize करते थे और पुत्र के घराने के लोग गाने में महारथ हासिल करते थे। आजकल तो उन कलाकारों का नाम होता है जो मीडिया का सहारा लेते है। इन्ही सब कारणें से अली अकबर खॉ साहब ने भारत छोड़ा और आजकल जो घरानेदार कलाकार हैं वे दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और विदेश में हैं।

अमजद अली खॉ ने परम्परागत कोई बाज नही रखा। उनके बडे भाई थे मुबारक अली जो अपने पिता हाफिज अली की शैली का अनुसरण करते थे।

आजकल सुनने में अच्छा लगे ऐसा बजाते है। तन्त्र अग की चीजे कम हो जा रही है। हल्के हाथ से मीड बजाते है तो लोग कहते हैं "वाह क्या मीड है।" पर इससे असली चीज की gravity कम हो रही है।

पहले घराना maintain होता था ३ चीजों से – बन्दिश, बढत और बरतावा। आज सभी वादन वादन की मूलभूत चीज़ों से हटकर मधुर और आकर्षक चीजें बजाना अधिक पसन्द करते हैं।

साक्षात्कार : डॉ० वीरेन्द्र कुमार

<u>गुरू नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर</u>

<u>विचार</u> :

सेनिया घराना है पहला तो जयपुर का फिर जयपुर से निकलकर दिल्ली मे आ गया। इनमे मसीत खॉ, फिरोज आदि आते हैं। कुछ जयपुर से लखनऊ चले गए। इस तरह से अलग-अलग जगह चले गए पर मुख्यतः जो सितार का घराना है वह सेनियों का ही है। फिर सेनियों से अलग होते-होते इसकी विभिन्न शाखाएँ जो थे, वे बदलते चले गए।

प्रश्न : मसीतखानी बाज से पहले क्या बजा करता था इस बारे में कुछ अगर बताएँ...

<u>विचार</u> :

फिरोज़खानी : ध्रुपद शैली से इसको बजाते थे। इसके साथ पखावज बजता था। मुख्य रूप से इसके साथ चारताल बजती थी। बँधा-बँधाया

system था। धीरे-धीरे जब बदलाव आया तो तबला बजना शुरू हुआ तब मसीतखानी गतें बजनी शुरू हुयी।

प्रश्न : इस समय कौन-कौन से घराने है ?

विचार :

घराने अगर देखें तो इन्दौर घराना, सेनिया घराना, मैहर घराना... सेनिया घराना अगर लें तो इसमें देबू चौधरी जी, इनका claim था कि सेनियों का असली वारिस मैं हूँ। फिर लखनऊ घराना है, विष्णुपुर मे मणिलाल नाग है इनके जो वारिस थे यह सब वही के थे। प्रभावित तो सेनियों से थे। सब फिर जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न जगहों पर जाकर बस गए। राजाश्रय प्राप्त होता था इसी राजाश्रय से ही इनका नाम बनता और बदलता था, जैसे किसी राजा के दरबार से उनका नाम जुड जाता था जिससे उनकी शान बढती थी। जैसे इनायत खॉ साहब कभी ये इटावा में रहे, कभी बनारस मे भी रहे। ज्यादातर यह बंगाल के गौरीपुर state में रहे तो गौरीपुर दरबार से इतनी ख्याति इन्होंने प्राप्त की कि लोगों ने इनको गौरीपुर का इनायत खॉ कहना शुरू कर दिया। इस तरह से घराना बनता चला गया पर हालाकि घराना तो वही पिछला चला आ रहा है।

प्रश्न : फिर भी वह कौन सी ऐसी चीजे हैं जो एक-दूसरे को अलग करती है?

विचार :

सितार पर ऐसा है कि कुछ कलाकारों ने आलाप को ज़्यादा importance दे रखा है, कोई तोडे को ज्यादा importance दे रहा है। बन्दिश है जिनके ऊपर जिनके विशेष अधिकार होते हैं - तानें हैं कुछ ऐसी तिहाइयॉ है कुछ techniques हैं जिनपर उन्होंने ज़्यादा ध्यान दिया।

प्रश्न : तकनीक से आपका क्या तात्पर्य है ?

<u>विचार</u> :

तकनीक जैसे रविशकर जी का कृन्तन का काम ज्यादा करते हैं, दूसरे कलाकार comparatively कम करते है। विलायत खॉ साहब कृन्तन का काम करते है मगर कम करते है। मगर ऐसी-ऐसी चीजे साथ में निकलती है कि लगता है सितार बज नही रहा है सितार गा रहा है। तो ऐसी चीज़े एक-दूसरे कलाकार से प्रभावित होकर जैसे गाने से प्रभावित होकर विलायत खॉ साहब ने गायकी अग ले लिया। इनके नाना गवैये थे, दादा सितारिये थे तो इनके blood में भी इन दोनों चीजो का समावेश ऐसे हुआ और कलाकार की अपनी प्रवृत्ति कि उसको समय के अनुसार कैसे-कैसे शिक्षा मिलती रही और time to time दिखता रहा कि वह किस चीज को लेकर आगे बढ रहा है। पहले उन्हें ये पता नही होता कि इस चीज से मेरा नाम होगा कि नही होगा। वह समय के साथ चलता रहता है। यही कुछ चीजे है जो एक दूसरे से अलग कर देती हैं। हर फन की अपनी एक खुशबू होती है। कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ कलाकार कुछ यहॉ से ले लिए कुछ वहॉ से लेकर एक गुलदस्ता सा बनके आ गया।

जैसे निखिल बैनर्जी के बारे में कहते है कि उनके बाज में विलायत खॉ साहब की छाप नजर आती है कुछ रविशकर जी की छाप नजर आती है। ऐसे कलाकार जो दोनों को सुनकर दिमाग में ऐसा बैठा लिया अब उनको मैहर घराना कहें या अलग सा एक फूल कहें? क्योंकि उनकी शिक्षा-दीक्षा जो हुई है वह उस्ताद अलाउद्दीन खॉ साहब से हुई है। अब किन कारणों से किस ढंग से हुआ है यह तो वही बता सकते हैं पर जब हम इन्हें सुनते है तो पाते हैं कि निखिल बैनर्जी इन दो कलाकारों का एक मिश्रित रूप हैं उनकी बाज की quality बिलकुल अलग है। जब आप विलायत खॉ साहब को सुनते हैं तो लगता है... हॉ इस कला में एक ही आदमी है अलग से, फिर हम पण्डित रविशंकर को सुनते हैं तो लगता है कि

नही रविशंकर एक अलग ही चीज है। जब हम अब्दुल हलीम जाफर खॉ साहब को सुनते है तो हमें उसमें भी इन दोनों कलाकारों का सम्मिश्रण मिलता है। कलाकार इसमें रियाज और सिध्दि कितनी कर पाता है उसके हिसाब से भी उनका नाम होता है। इनका (उ० हलीम जाफर खॉ) अगर दो चीजों का मिश्रण है तो इन्दौर घराना ही क्यों कहा गया? क्योकि वह अपने forefathers से जुडे हुए है। इस प्रकार से वह घराना चाहे प्रभावित कैसे भी हो मगर वह अपने पूर्वजों के नाम से जुडकर चलता है।

प्रश्न : आपके विचार से अभी कौन से ऐसे कलाकार हैं जो पुरानी शैली से जुडे हुए है?

विचार :

अभी यह सेनिया वाले ही जुडे हुए है जैसे पं० देबू चौधरी। शागिर्द भी घराने का एक खास अंग होते हैं। इसमें अगर हम और पीछे-पीछे जाते है तो यह जो सेनिया घराना है यह भी actually सेनियों से direct नही है खून का रिश्ता कहीं नही नज़र आता। शिष्यों से ही यह परम्परा चली आ रही है। देबू चौधरी के उस्ताद मुश्ताक अली जी के पिता सेनियों के शागिर्द थे। निर्मलशाह और शायद बरकतुल्ला खॉ के शागिर्दो से यह understanding चला। शिक्षा-दीक्षा purely सेनियों की ही चली आ रही है इसलिए सेनियों के यही परम्परागत कलाकार है जो धरोहर हैं, यह इनके पास है - सबलोग मानते हैं।

प्रश्न : विलायत खॉ तो अपने को सेनियों के वशज मानते हैं...

विचार :

हॉ तो सबका origin जो है वह सेनियों से है क्योंकि मैं भी गौरीपुर घराने का हूॅ। तीन पीढ़ियां होती हैं तो घराना होता है। यह तो सभी जानते हैं मेरे पिता सितार बजाते थे पर उन्होंने कैसे सीखा, किनसे सीखा यह

पूछने का अवसर नही मिला क्योंकि जब सितार की समझ आयी तो उनकी मृत्यु हो गई थी। जो थोडा-बहुत पता चलता है पिताजी पाकिस्तान में रहते थे, मास्टर निजाम चन्द्र जी उनके उस्ताद थे, वालिद साहब के घर दोनों का इतना गहरा सम्बन्ध था कि लोग उनको भाई ही कहते थे। तो सितार सिखाया-बजाया पजाब में। इनकी बडी contribution थी पर मै उनसे ज्यादा नही...थोडा सीख पाया हूँ। उनका स्वर्गवास हो जाने के बाद मेरा एक ही लक्ष्य था। मैंने विलायत खॉ साहब को सुना, लगता था इनका हाथ पानी की तरह चलता है.. बिजली है। मन मे आया है कि सीखना है तो इन्ही से। हरिवल्लभ सम्मेलन में उनका आना-जाना था तो एकटक मै उनका बजाना सुनता था। उसमें से एक चीज भी अगर मेरे दिमाग मे पड जाती थी तो घर आकर उसे निकाल नही लेता था तो सोता नही था। यह एक हठ एक लगन था। हर साल की तरह उनकी कुछ बन्दिशें, तान कहने का ढंग, तकनीक, विस्तार करने के ढग को देखा-सुना, समझा, निकाला और हरिवल्लभ के बाद friends, students circle में उन चीजों की नकल कर सुनाता था कि उन्होंने यह चीज बजायी – कहकर बजाता था। फिर प्रवीण, अलंकार, भास्कर जैसी डिग्रियां कर लीं। फिर Lecturer हो गया; एक ही साल हुआ था वहॉ मेरे नामधारी गुरूजी हैं सतबीर जगजीत सिंह जी। उन्होंने मेरे सितार सुना तो पूछा, कहा कि कहॉ से सीखी? तो मैंने कहा सीखा नही, चोरी की है। सारा कुछ मैने बता दिया। फिर वही मुझे विलायत खाँ साहब के पास ले गये, गंडा बांधकर फिर शिक्षा शुरू हुई। सारी-सारी रात जगकर रियाज़ होता था। राजभान जी की शैली भी मुझे प्रभावित करती थी। उनसे भी कुछ सीखा, उनकी बजायी हुई तिहाइयों को क्रम से जोड़ा।

प्रश्न : कुछ चीज़े जो आपने कई जगह से सीखकर, सुनकर उसे अपनी तरह से कुछ इजाद किया ?

विचार :

सीखना तो मेरा चला जैसे राजभान जी की वादन-शैली मुझे प्रभावित करती रही है जहॉ से जो कुछ मिला उसे जोडा तब मुझे विलायत खॉ साहब ने सुना तो बोले कि इसने इंजन के सारे parts इकट्ठा किए हुए हैं बस कौन सा पुर्जा कहॉ लगाना है ताकि इंजन जो है वह चले। मतलब चीजों को कहॉ-कहॉ किस ढग से लेना है वह उनसे मैंने सीखा, किस चीज़ को कैसे elaborate करते हैं उनसे सीखा, बन्दिशें सीखी।

विशेषतया मिजराब के बोलों की काट-छांट की, कृन्तन का काम, झाला बजा लिया, मिजराब के बोलों से तान-तोडे, छन्द बनकर आ रहे हैं, इस type का बजाना तन्त्रकारी कहलाता है। गायकी में पूरा गला सितार पर उतरता था। एक stroke में कितना काम कर सकते हैं, यह गायकी है।

प्रश्न : इसके लिए क्या ब्रिज में कुछ किया जाता है। Tonal quality में अन्तर लाने के लिए सितार के measurement में कुछ करते हैं?

विचार :

ये तो ब्रिज का काम कलाकार की मनःस्थिति पर निर्भर करता है कि वह किस ढंग की ध्वनि चाहते है। अक्सर लोग कहते हैं कि विलायत खाँ साहब जवारी गोल करवाते हैं, यह गोलाई क्या है? Sound की गोलाई रहे, बिखरे नही इसे 'ठोस जवारी' कहते हैं; रविशंकर जी के सितार में एक झंकार अलग से सुनायी पडती है। यह कलाकार पर depend करता है कि उसे sound production कैसा चाहिए। बुद्धादित्य मुखर्जी, निखिल बैनर्जी - ये खुद ही जवारी करते थे। इमरत खॉ की tonal quality बिलकुल अलग। रईस खॉ की अलग जबकि यह विलायत खॉ के भांजे हैं, एक ही घराने के हैं पर सितार की आवाज बिल्कुल अलग जबकि वही गायकी है वही शिक्षा-दीक्षा, पर tonal quality में फिर क्यों यह फर्क है? यह जिसे जैसी sound पसन्द है वह वैसा करवाता है।

प्रश्न : हर घराना क्या किन्ही रागों पर specialçe करता है?

<u>विचार</u> :

हॉ, यह तो है। अपने घराने की कुछ विशेष चीजे जिन्हे ज्यादा उन्होने बजाया होता है, वैसे ही रागों के बारे में। झाले की कुछ विशेष चीजे, जो घराने का हर कलाकार बजाता है। हमारे घराने में बिहाग, पूरिया, मालकौंस, कान्हडा के प्रकार, तोडी है, पूरिया कल्याण, पॉच धनाश्री - बहुत से ऐसे राग है।

प्रश्न : इस समय के कलाकारों के विषय में कुछ बतायें।

<u>विचार</u> :

सभी अच्छे हैं किसी को भी सुन लें शाहिद परवेज है, शमीम अहमद का लडका। नीलाद्रि कुमार - कार्तिक कुमार का बेटा young generatıon में है यह।

प्रश्न : आजकल की तैयारी के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

<u>विचार</u> :

तैयारी... विलायत खॉ के जैसी तैयारी तो आजकल किसी की नही है। जितने भी बजाते हैं feelıngs के साथ बजाते हैं। बाकी श्रोता उसे कैसे लेते है, यह कुछ बातें हैं जिसके ऊपर बजाना depend करता है। हर कलाकार feelıngs के साथ बजाता है, feelıngless होकर वह कभी नही बजाता। वह उसे कितना व्यक्त कर सकता है श्रोता उसकी भावना को कितना समझते हैं, यह अलग बात है।

साक्षात्कार : पं० सुरेन्द्र मोहन मिश्र

वाराणसी

विचार :

तन्त्रवाद्य में इस समय वीणा लगभग समाप्त हो चला है। कुछ लोग बचे हैं, लेकिन वे घरानेदार नही हो पा रहे है, जैसे डागर घराना। इसी तरह कुछ लोग सेनिया घराने के भी लोगों ने उनको बता दिया वहॉ भी यह खत्म हो रहा है।

इस युग में तन्त्रवाद्य के दो घराने बनते है . (१) सितार का, (२) सरोद का।

क्योंकि गिटार में बृजभूषण काबरा है, उनके भाई सरोद बजाते थे (शशिभूषण)। इसी तरह विश्वमोहन भट्ट, उनके भाई सितार बजाते थे। घराना कम से कम तीन पुश्त के हों - उसपर बनता है। सन्तूर में शिवकुमार शर्मा हैं, उनके पिताजी हमारे नानाजी से सीखते थे। बनारस में जो बडे रामदास जी थे, गायन में, वे गायन घराने के ही हुए; बचपन में तबला भी सीखे, सन्तूर में अच्छी ख्याति अर्जित की लेकिन घराना नही बना। अब भी उनसे अगर दो पीढी नीचे तक के लोग बजा लें तब घराना बनेगा। इस तरह से जो दूसरे तन्त्रवाद्य हैं उनमें घराना नही बन पाया है। जो था वह भी लगभग समाप्त हो गया लेकिन सितार में है।

प्रश्न : अच्छा, तो आप मैहर को भी घराना नही मानेंगे, उसे बाज या style तक ही कहेंगे?

विचार :

मैहर घराना सितार का नही है। घराना तो अलाउद्दीन खाँ साहब से शुरू होता है और वे कई वाद्य बजाते थे। उनके बाद वो घराना बन गया सरोद का। वह बजाये, उनके बेटे अली अक़बर खाँ साहब बजाये।

अली अकबर खॉ साहब के बेटे आशीष वगैरह बजाये। यहॉ तीन पीढी हुई सरोद की लेकिन अलाउद्दीन खॉ साहब कई वाद्य बजाते थे। उन्होंने सितार भी सिखाया प० रविशकर जी को तो सरोद अलाउद्दीन खॉ साहब बजाये। सितार पण्डित जी बजाये, दामाद भी उनके हुए पण्डित जी। पण्डित जी के बेटे एक थे वे भी नही है। अब बेटी सीख रही है। अब वो घराना सितार का नही बन पाया है; तो सितार formally ये तो घराने से है और सरोद में खॉ साहब का घराना अलाउद्दीन खॉ साहब का इसको मैहर घराना मान सकते है क्यों कि खॉ साहब के ३ पुश्त हो चुके हैं और चाथे मे भी हैं।

दूसरा ग्वालियर घराना दिल्ली में उस्ताद हाफिज अली खाँ साहब के पुत्र अमजद बजाते है, उनके दोनों लडके बजाते है। सरोद में यह घराना है और सारंगी में कुछ लोग अभी बनारस में भी है, कलकत्ता में भी हैं और जगह भी है। वो घरानेदार है लेकिन सारंगी का रिवाज अब लगभग समाप्त हो चला है गिने चुने अच्छे सारंगी वादक है ज्यादा नही क्योंकि गाने वाले भी हारमोनियम कुछ लोग वायलिन लेकर बैठ जाते हैं कुछ लोग बिना संगत के गाने लगे है ये बात हो गयी । इस तरह से सारंगी और सितार तो रहा। सरोद के तो कई घराने मिल जाएँगें।

प्रश्न : खासकर सितार के कौन से घराने है। क्या मुश्ताक अली खॉ साहब का सेनिया घराना या विष्णुपुर जैसे घराने ?

विचार :

विष्णुपुर घराने में किसकों मानोगी?

(मेरा उत्तर) मणिलाल नाग जी तो, गौरीपुर से जुडे हैं...

विचार :

गौरीपुर स्टेट में विलायत खॉ साहब के पिताजी थे इनायत खॉ साहब मणिलाल नाग इनके पिता जी गोकुल नाग ये लोग भी घराने के हैं लेकिन

घराना इन लोगों का नही बना। घराना ऐसी है जो कि वंश परम्परा से चलती हैं वंश परम्परा से वह कायम होती है उसके बाद शिष्य लोग उसको आगे बढाते हैं यहॉ शिष्य हैं वहॉ उनको वादन शैली तो प्रभावित होगी घराना नही बनेगा 'घर' का शब्द परिवार से तो हो सकता है और पारिवारिक रूप में धारण कर रहा है तो घराना नही बनेगा।

पण्डित विष्णु दिगम्बर जी बहुत गुणी आदमी, विद्वान थे। उनके शिष्य पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर, देवधर जी पटवर्धन जी, पलुस्कर जी, नारायण राव व्यास अनेक लोग हुए वो घराना नही बना शिष्य परम्परा आ गयी। विष्णु दिगम्बर जी के पुत्र पलुस्कर जी थे उनका भी कोई पुत्र होता तो वह घराना कायम ही हो जाता।

शिष्यों से उनकी शैली चल सकती है घराना नही बनता । कोई यह नही कहेगा कि पण्डित विष्णु दिगम्बर जी के घराने के ओंकारनाथ जी यह कहेगा उनके शिष्य ओंकारनाथ जी घराना तो घर से सम्बन्धित है इसीलिए तो घराने limited है । मानने को लोग मानते हैं जैसे सेनिया घराना लोगों ने मान लिया और उस्ताद दबीर खॉ साहब को तानसेन का अतिम वशज मान लिया। वो (तानसेन) मुसलमान हुए ही नही थे क्योंकि अकबर को महान इसीलिए कहा गया था कि वे अपने period में किसी भी व्यक्ति का धर्म परिवर्तन नही होने दिया यहॉ तक कि जोधाबाई जो थीं उनकी पत्नी वह जोधा बेगम नही हुई और मंदिर में ही पूजा करती थीं जब वह अपनी पत्नी का धर्म नही बदले अकबर और इसी बात पर अकबर the great अक़बर महान कहा गया। तो तानसेन जी का धर्म कहॉं परिवर्तन हुआ तानसेन तो उपाधि थी आज किसी को पद्मश्री दे दिया जाए तो पद्मश्री घराना थोड़े ही चलेगा उसका बेटा थोड़े पद्मश्री होगा। उसका पौत्र दामाद थोड़े ही पद्मश्री होता है। ऐसा नहीं कि किसी घराने के सारे लोग कलाकार होते हैं जैसे गुदई महाराज इतने अच्छे तबलावादक हुए उनके भाई नहीं हुए।

प्रश्न : आप अपने बारे में अपने घराने के बारे में यदि कुछ बताएँ ?

विचार .

हम लोगो का घराना बहुत पुराना है । मिश्र घराना यहाँ तक कि यह जो तानसेन जी थे उनका असली नाम रामरतन मिश्र था। इनके पिता मकरन्द मिश्र थे और एक अयोध्यादास जी थे बहुत प्राचीन व्यक्ति उस समय कुलीन ब्राह्मण उनको माना गया ऐसा संगीतज्ञ न पैदा हुआ है न होगा एक मात्र वीणा वादिनी का सिक्का सगीत का एक ही सिक्का समुद्रगुप्त के period का है। उसके बाद बैजनाथ प्रसाद मिश्र थे। मानसिंह तोमर उनकी पत्नी मृगनयनी इन्होंने इनसे सीखा तो मिश्र घराना बहुत पहले से चला आ रहा है चैतन्य महाप्रभु और लोगों के बारे में पता चलता है कि ये लोग विद्वान थे।

ब्राह्मण कुल में ही उस समय सगीत था क्योंकि संगीत को नादब्रह्म की उपासना मानकर मोक्षमार्ग सोचकर लोग उस समय बडे शुद्ध और धार्मिक ढंग से लेते थे और देवमन्दिरों में इसको भगवान के सामने जैसे पूजा करते हैं वैसे इसको करते थे। ये public वाली बात तो राजदरबारों में भी ये बाद में आया। दरबारों में आने के बाद आज public programmes होते है। Public खुश हो तो दुबारा बुलाता है। ईश्वर खुश हों, यह धारणा अब नही है। मोक्षप्राप्ति का सबसे सुगम मार्ग यही है। हम लोगों का यह ब्राह्मण का मिश्र घराना जो है यह घराना बहुत पहले से है। उसमें चिन्तामणि बाबा हुए, उनके वंशज भी बनारस में अभी हैं। औरगज़ेब के समय में संगीत का जनाजा बनाकर उसको दफ़ना दिया गया। वो संगीत प्रेमी नही था। जितने संगीतज्ञ थे, उनका घर नष्ट-भ्रष्ट करने लगा तो वो लोग कन्नौज और आगरा, ग्वालियर - यह सब जगह छोड़कर हटने लगे। कुछ पंजाब side में चले गए; कुछ पूरब में आ गये, इधर - जिसको जहाँ आश्रय मिला। ये सब झुण्ड में चलते थे। सड़कें और बहुत अच्छे शहर नही थे उन दिनों, जंगल में सौ-पचास आदमी चलते थे।

रात हो गई तो गाव-देहात देखा वहीं जम गए। लोगों ने पूछा "भई आप लोग कौन है?" तो कहा हम लोग सगीतज्ञ है। कुछ सुनाइये तो कुछ सुनाया। राजा, जमीदार, कोई भी प्रसन्न हुआ तो उनमें से दो-चार दिन वही रह गए। सबका सुना, जो पसन्द आया उसको अपने यहाँ रख लिए, उसको जमीन-जायदाद सबकुछ दे दिया। वो वही रूक गए। ऐसा करते-करते लोग बढते चले गए। पूरब के काशी, गोपालपुर, आजमगढ; फिर बिहार में भी - बंगाल तक चले गए।

प्रश्न : इस समय तक सितार नही था लेकिन वीणा जैसे वाद्य थे?

विचार :

औरंगजेब के बाद सितार हुआ - वीणा पहले था, यह जो मान्यता है कि अमीर खुसरो ने सितार बनाया, यह बिलकुल ग़लत है। उन्होंने न तो कोई राग बनाया न यन्त्र बनाया, न बजाया। वे तो सूफी सन्त थे, शायरी और भारतीय संगीत से प्रभावित होकर वह गांव-देहात घूमकर आते थे तब बैठकर चिश्ती साहब के दरबार में पूजा-आराधना में लगे रहते थे। तो सुनते-सुनते गांव-देहात में जिस भी मौसम में जा रहे है। जैसे आजकल के मौसम में वहाँ लोग फाग गा रहे हैं, होली का मौसम है। एक महीने बाद गए पता चला चैती गायी जा रही है। बरसात में गए तो कजरी गायी जाती है। एक तरह से वो हिन्दुस्तानी संगीत को खुद गाने लगे। उन्हें यह पता नही कि हम कौन राग गा रहे हैं, वही notes वो गाते रहे और यहाँ की चीजों से इतने प्रभावित हुए कि जो भी अरबी-फारसी जानते थे लिखना छोड दिए और हिन्दी में लिखना शुरू कर दिए, जैसे -

"छाप तिलक धर मुरली हो, उनसे नैना मिलाके"

ये अरबी-फारसी नही है :

"गोरी-गोरी बइयां हरी-हरी चूड़ियाँ"

ये अमीर खुसरो की लिखी हुई है। हिन्दी में लिखने लगे और ये सब tune यहॉ के गाने लगे। अब, इसपर लोगों ने उनको महान सगीतज्ञ मान लिया लेकिन आइन-ए-अकबरी में यही लिखा हुआ है कि अमीर खुसरो जैसा शायर यहॉ पर आया, सगीतज्ञ नही।

यही जब ये लोग इधर-उधर लेकर भटकने लगे। अब दोनों तरफ टक्कर खाए मृदंग जो लेकर चला बडा भारी ये सब देखते हुए लोगों ने इसको टोका, तो लोगों ने सोचा कि एक ही तुम्बा से काम चले, तब फिर सितार बना। उस समय एक तार से लेकर सौ तार तक की वीणा थी। भारत में एकतन्त्री, एकतारा, शततन्त्री - ऐसे ही यह सब था इसके बाद यह हो गया कि लोग सितार बजाते उसी समय सदारंग-अदारंग खयाल बनाए। ध्रुपद शैली घटा तो सितार पर यही शैली खयाल के अंग से बजने लगा लेकिन ध्रुपद शैली से प्रभावित क्योंकि कोई चीज जब कोई नया बनाता है तो पहले वाले का ही base लेकर बनाता है। नया मिलेगा क्या उसी के आधार पर उसमें नया परिवर्तन किया, पूरा परिवर्तन थोडे ही हो जाता है, एकसाथ। तो उस समय सितार भी जो बजा वो वीणा के ही style से, ध्रुपद शैली से - उस समय भी सितार में पुराने लोग जो बजाते थे। हमलोग भी बजाते हैं उसमें तारपरन वगैरह सब बजाया जाता है। और उसके गतों की रचना सितार के अग की होती थी। उसके बाद वही सितार सीखकर मसीत खॉ, अमीर खॉ, फिरोज खाँ - ये लोग जब सीख लिए तब अपने से उसमें गत बना-बना कर जोड़ दिए जिसे आज मसीतखानी और रजाखानी गत मानते है। ये बाद की रचना है, सितार की original नही। मसीतखॉ सीखे होंगे वो क्या सीखकर गत बनाया, बिना सीखे ऐरे-गैरे तो गत बनायेंगे नही। जिसको सितार के बारे में पता नही वो क्या बना सकता तो सीखे न? क्या सीखे? तो वह चीजें आज लोगों के पास बहुत कम है। इसी तरह इसमें जितने भी घराने आज बनते जा रहे हैं कुछ style तो घराने की हैं। जैसे विलायत खाँ साहब

का घराना. . ये लोग अपने को भी सेनिया घराना में मानते है, लेकिन विलायत खॉ साहब तक सितार की एक विशेष शैली अभी भी सुरक्षित है। विलायत खॉ साहब जानते है हम उनको बजाते इधर नही सुने पर बहुत पहले उनका जब सितार सुने तो उसमें हमने उनमें वह झलक देखी जो घरानेदार की होती है। बाकी तो अब जितने बजा रहे हैं रियाज बजा रहे हैं, तैयारी बजा रहे है, यह सब कर रहे है। सितार की वह परम्परा जो उधर के लोगों में खॉ साहबों में या विलायत खॉ साहब में या मुश्ताक अली खॉ साहब बनारस के थे उनमें भी था। हम लोगों के पूर्वज हम लोगों के घर में जो चीज वह आज के जमाने के हिसाब से कुछ नही है। आजकल मसीतखानी- रजाखानी गत बजाकर और तान तिहाई, लयकारी जितनी तैयारी हम बजा लें बस वही सितार रह गया है। सितार की original style क्या है यह प्रायः लुप्त होती जा रही है। या हम यह भी कह सकते है कि जो आज है वही सितार है कल वह भी बदल जायेगा।

विलायत खॉ साहब, मुश्ताक अली खॉ साहब के पास भी है, लेकिन विलायत खॉ साहब बाद में जमाने को देखते हुए बदलकर कुछ नया आविष्कार किया - जैसे सितार में तोडा पक्ष इन्होंने बजाना शुरू किया। सितार की जो original style खॉ साहब के पास है वो जानते हैं कि मैंने बचपन में इनका एक दो बार सुना है। बड़े अच्छे ढंग का सितार सुना है। खॉ साहब बाद में अब दूसरे ढंग से बजाने लगे उसमें कुछ और जोड दिए। इस नकल पर दूसरे जो आए वो खॉ साहब की उस गहरायी को नही समझ पाए जो उनके पास है। कुछ लोग उनकी तैयारी में, कि बहुत तैयार बजाते थे अपने को बहुत तैयार कर लिए उनके बजाए हुए रागों की नकल कर करके। खाँ साहब के पास बहुत कुछ था। पण्डितजी के पास बहुत कुछ style है, कब किस ढंग से बजायेंगे। तो एक-एक style को लोग यह देखकर कि विलायत खॉ साहब बहुत तैयार बजाते थे, बड़ा गमक लगाते हुए सपाट मारते थे, हम भी कर लिए। तो

सपाट गमक खाली सितार नही होता। अरे गत बजाओ गत की शैली तो सुनाई दे, जिससे सितार की परम्परा का निर्वाह हो।

प्रश्न : तो वह original शैली कैसी थी ?

विचार :

गत को सिर्फ कह दिया जाय कि १० मिनट तक आप गत बजाइये – यह मुश्किल हो जायेगा। सबसे पहले गत शुरू होता है जैसे विलम्बित ख्याल में गाते हैं। ख्याल का भराव करते है। इस तरह से गत का निर्वाह पहले किया जाए विलम्बित गत शुरू करके आप तान बजाने लगे। तानें ही बजाना है तो द्रुत में बजा लो, विलम्बित क्यों बजा रहे हो फिर। विलम्बित की शोभा तो सिर्फ तान नही है, तान तो उसमें बाद मे आता है। जब हम विलम्बित से द्रुत की ओर आते हैं तब तान लेकर वहॉ आ जाते हैं। लेकिन गत शुरू करने के साथ तान ही बजाएँ – यह नही। गत का विस्तार होना चाहिए। गत को तरह-तरह से आना चाहिए ये चीजें नही रही। आज के लोगों मे यह चीजें नही है।

प्रश्न : पं० रविशंकर जी की शैली के बारे में... वो क्या traditional शैली बजाते है ? इसपर आपके क्या विचार है ?

विचार :

नही, traditional नही है। पण्डितजी में ये चीज है कि वह तान अंग कम करके तोडा अग अच्छा रखते है। पण्डित जी विद्वान हैं रागों को बड़ा सही ढंग से बजाते हैं और सीखे अलाउद्दीन बाबा से। कुछ अपना जोडकर विद्वान होने के नाते, पढ़े-लिखे होने के नाते उन्होंने एक ढग अपना बनाया है। बजाने का लगभग उसी से मिलता-जुलता। उस घराने के या उस शिष्य परम्परा के लोग अपनाए थोड़ा सा तान अंग अलग करके पं० निखिल बैनर्जी भी पण्डित जी की style पर आलापचारी वगैरह सब करना, सितार में खरज-लरज का जो तार (चारों) आलाप होता है

वह पण्डितजी का आविष्कार किया हुआ है। उस समय लोहे के तार होते थे।

प्रश्न : प्राचीन काल में वीणा के आधार पर इस तरह का आलाप नही होता था?

<u>विचार</u> :

प्राचीन काल में जब आलाप होता था तो आलाप दूसरे सितार पर होता था, गतकारी दूसरे सितार पर, तो इस तरह से बजता था। और वह विलम्बित और द्रुत भी नही बजता था।

प्रश्न : एक साथ नही बजते थे ?

<u>विचार</u> :

थे ही नही... बजते कहॉ से ? हमने बताया नही विलम्बित गत अमीर खॉ, फिरोज खॉ, मसीत खॉ - इन लोगों की रचना है। द्रुत गत रजा खॉ की रचना है। इसका मतलब है ये इन लोगों की रचनायें है, बजता कुछ और था। मध्यलय की गतें बजती थी मध्यलय या विलम्बित या द्रुत एक माप नही है कि इन्ही गतों को मध्य मानेंगे अगर एक माप मान भी लेते है तो उससे थोडा कम और उससे थोडा ज्यादा ये भी मध्य ही होगा। जैसे एक कमरा है उसको 3 parts में अगर बांट दिया जाय - एक को विलम्बित, बीच में मध्य को उसके बाद वाले को द्रुत मान लिया जाय तो कमरे का first part जहॉ विलम्बित शुरू होता है वो तो मध्य से दूर है लेकिन जहॉं विलम्बित समाप्त होने जाता है वहॉं से मध्य के करीब हो गया तो विलम्बित इतना तक आ जाता है कि जहॉ से मध्य करीब पड जाता है और मध्य जहॉ शुरू होता वह विलम्बित से करीब है और मध्य का end होता है। द्रुत के करीब पहुँचकर फिर यहॉं से द्रुत शुरू होता है और झाला तक जाता है तो मध्य जो है वह विलम्बित के करीब से लेकर द्रुत के करीब तक होता है। ऐसी गतें हम अभी भी बजाते हैं मध्यलय की गत में सब कुछ बज जाता है।

आज लोग विलम्बित गत के शुरू में ही तान बजा लेते हैं। विलम्बित की यह शोभा नही थी गत का विस्तार करो। सबसे बढिया जगह मध्य लय है वहॉ से हम विलम्बित और द्रुत दोनों को देख लेते है हर तरह की चीज़ बजा लेते है वहॉ सुविधा है विलम्बित से शुरू करके जब द्रुत बजाते है तब वहॉ मजा नही आता अजीब सा लगता है और द्रुत में अगर विलम्बित जैसा कुछ आलाप करने लगे तो भी अच्छा नही लगेगा लेकिन मध्यलय में हम दोनो कर सकते थे, perfect लय यही है। मध्य सही था पहले से था इन लोगों ने इसको विलम्बित बनाया और द्रुत बनाया। प्राचीन ढंग जो है या मान्यता जो है जैसा हम कहते है कि मसीतखाँ ने विलम्बित गत बनाया किसकी ? विलम्बित मध्य की ही ? तो विलम्बित या रज़ाखॉ ने द्रुत बनाया, किसका द्रुत बनाया ? क्या था जिसका विलम्बित बनाया ? मध्य था तो ये परम्परा आज नही है आज भी लोग विलम्बित, द्रुत बजा लेते है। लेकिन जो main है base उसको छोड दिए हैं और वो आनन्द नही मिलता। मध्य लय में सितार की गतें जो बनी हुई हैं इतनी अच्छी-अच्छी गतें हैं, पुरानी बुजुर्गो की वह मजा जो आजकल लोग बजा रहे है विलम्बित और द्रुत की। बजायें लेकिन वो बात काफी नही है।

प्रश्न : Fundamental वो क्या चीजें हैं जो तन्त्र में एक घराने को दूसरे से अलग करती हैं?

विचार :

देखो, ऐसा है कोई ऐसी चीज तन्त्रवाद्य में नही मानना चाहिए। गाने में तो ये मान लेते हैं कि डागर वाणी में इस तरह से गमक लगाते है किसी में हलक तान, सितार में गमक बजायेंगे तो गायक दूसरा भी बजायेगा। इसमें हलक तान होगा ही नही तो यह जो ढंग है ये नही है। अब परम्परा रही है जैसे पण्डितजी के शिष्य लोग बहुत ज्यादा तान पर नही ध्यान देते, आलाप का अंग ज्यादा रखकर बजाते हैं, बेड़ा अंग से बजाते हैं। इधर जो नये निकल रहे हैं विलायत खाँ के पैटर्न पर - बुद्धादित्य

हैं.. शाहिद परवेज हैं... शुजात, निशात् सब तैयार बजा रहे है जमके, एक-दूसरे से भिन्न तो हो रहे है लेकिन तीसरा जो निकल रहा है वह विलम्बित भी अच्छा बजा रहा है, तान भी बजा रहा है, जैसे निखिल बैनर्जी थे - वे लरज-खरज में आलाप भी कर रहे हैं, तान भी अच्छा बजाते थे। ऐसे कुछ सितार वादक हुए दूसरे अब हम सिर्फ इन्ही को घरानेदार मानकर अगर चलें या पुराने घरानों को लेकर तो एक-एक दो-दो बातें जो होती है वही change होता है संगीत में जो है, विलम्बित में विलम्बित रूप रखेंगे उसमें विलम्बित का विस्तार करेंगे, द्रुत में तान बजायेगे, गमक लायेंगे। यह तो सब में है।

प्रश्न : तन्त्र अंग और गायकी अग इस प्रकार के विभाजन के सम्बन्ध में यदि और विस्तार से कहें?

विचार :

देखो... विभाजन नही है। हम तन्त्रवाद्य में 'गगरेस निरेगमप...' अगर इस तरह का तान बजा दिया सितार में तो गाने वाला भी गा देगा, गायकी से अलग करने के लिए हमको सितार के tradition पर जाना चाहिए जो गाया नही जाता। 'दा र दा दार दा दारा' अगर बजा देंगे तो 'म-मम-म-मम-पप' ऐसे नही गायेगा... वह गाने की style से दूर है। वहाँ तो तन्त्रवाद्य और गायन अलग हो जाता है लेकिन दुःख की बात तो यह है कि अच्छे-अच्छे तन्त्रवादक announce करते हैं कि हम गायकी अंग से बजायेंगे। क्यों तन्त्र अंग से क्यों नही बजा रहे हैं ? सितार बजा रहे हो तो सितार का अंग रखो क्यों गायकी बजा रहे हो?

प्रश्न : जो पुराना सितार का अंग है फिर वो तो एक तरह से अब रहा ही नही...

विचार :

प्रायः लुप्त हो चला है कुछ खास लोगों के पास है जैसे उस्ताद विलायत खॉ साहब बचपन में मैंने सुना है वह जिस ढग से बजा रहे थे लग रहा था कि हॉ कि घराना झलक रहा है। उसके बाद वह अपने बजाने का ढग अपने ढंग से जो अलग किये काफी तैयार और सपाट गमक के साथ उनके भाई इमरत भी खूब गमक बजाते रहे और उस pattern पर रईस खॉ भी आ गये। बुद्धादित्य, शाहिद परवेज सब बजा रहे हैं, इन लोगों को यह शायद पता नहीं कि विलायत खॉ साहब वो भी चीज जानते है जो कि सितार की original style है। यह न सुन पा रहे है न खॉ साहब बजा रहे हैं बस उनके नकल को खूब तैयारी के साथ बजा रहे हैं और आज उसी की कदर हो रही है। पण्डितजी के सितार में यह है कि सीखे सरोदवादक से, अपना भी जो जहॉ तक हो सकता है तन्त्र रखते हुए वो बजाते हैं लेकिन original, सिर्फ सितार अगर कहा जाए तो वो बात यहॉ भी नही है। सितार की original style मुश्ताक अली खॉ साहब के पास थी। उनका उतना नाम नही हो पाया और शिष्यवर्ग में लोग उसको कायम नही रख पाए।

प्रश्न : पण्डित देबू चौधरी है, वह भी तो इसी घराने से है?

विचार :

हैं... पण्डित देबू चौधरी, वो इतना तक सीमित है जो उन्होंने सीखा है। हमारे घराने में वह सब सिखाया जाता है original style ये है। आज इस ढंग से बजाया जाता है। वो लोग इस ढंग से बजाते थे, आज इस ढंग से बज रहा है। आज भी हम बजाते हैं एक व्याख्यान-माला बनारस में हुआ था। मसीतखानी-रजाखानी सब लोग राग-रागिनी बजाये, पुराने समय की फिरोजखानी गत, अमीरखानी गत।

हमने बजाते समय कहा कि उनसे भी पहले की गत बजा रहा हूँ। ३०-३५ प्रकार का गत सुनाया, न फिरोजखानी, मसीतखानी, अमीरखानी कोई भी गत नही। विलम्बित से शुरू किया traditional टप्पाखानी गत, फूलझडी की गत, उडान की गत यह सब।

प्रश्न . यह सब प्रारम्भिक गते है ?

विचार :

हॉ-हॉ, ऐसी गतें है हम लोगों के पास, हम लोग बजाते हैं, लेकिन अब आम programme में क्या सब तरह तरह की गत बजायेंगे... वहॉ बस सितार बजाना है। यह सब कौन समझेगा ? व्याख्यान-माला में तो सारे विद्वान बैठे हुए थे, सब तरह की गत सुनाये वहॉ।

प्राचीन परम्परा में सितार की शैली तो वीणा से बदल कर आयी। बदल के बावजूद वीणा से प्रभावित थी। Base तो वही था, तो उस समय लोगों ने सोचा क्या-क्या सितार में बजाना चाहिए।

प्रश्न : तो वीणा तो ध्रुपद से प्रभावित थी, तो सितार भी मूलरूप से ध्रुपद से ही प्रभावित है ?

विचार :

हॉ-हॉ प्रभावित क्या, शैली ही वही थी। तो उसमें तारपरन वगैरह जो कुछ था हम सब बजाये थे। और आधुनिक युग में धुन तक बजने लगे हैं और जाने क्या-क्या लोग बजा रहे हैं, यह भी अब हो गया है।

साक्षात्कार : प्रो० बनवारी लाल श्रीवास्तव

इलाहाबाद

आज के युग में कौन-कौन से घराने है, इसपर श्री बनवारी लाल श्रीवास्तव जी का कहना है कि आज कोई भी घराना नहीं रह गया है पर style (शैली) जरूर है। कोई एक घराना नही रह गया, सब mix हो गए हैं। अब जो बजाते है उसमें बजाना क्या, लगता है सितार से लडाई कर रहे हैं।

बनवारी लाल श्रीवास्तव जी सेनिया घराने को ही एकमात्र सितार का घराना मानते हैं। कुछ सरोद वादको से भी आगे चलकर सितार के घराने बने जैसे करामतुल्ला खॉ का घराना। इनके शिष्य थे मुन्ने खॉ। श्री बनवारी लाल जी भी इन्ही की शिष्य परम्परा में हैं। इस घराने में आलाप, जोड, गत, तोडा आदि विशेषताऍ थी।

इस युग में आप घरानेदार कलाकार किन्हें मानते है? इसके जवाब में इन्होंने कहा कि इनायत खॉ, हाफिज खॉ, अलाउद्दीन खॉ और डागर - इन्ही से आगे इस युग के घराने चल पड़े। सितादवादकों में मुख्य रूप से दो ही नाम आते हैं - विलायत खॉ और रविशंकर, पर ये भी बाहर विदेशों में बस गए हैं।

प्रश्न : आजकल के सितारवादकों में आप किन्हे अच्छा मानते है।

उत्तरः आज के कलाकारों में विलायत खॉ एव रविशकर ही मुख्य सितारियों में है, बाकी तो ज्यादातर stunt ही बजाते है।

प्रश्न : क्या कारण है कि आज पहले जैसे कलाकार नही बन रहे है?

इसके उत्तर में आपका कहना है कि रियाज की कमी ही इसका सबसे बड़ा कारण है। हमारे समय में एक ही स्वर को लेकर घण्टों रियाज़ करते थे। मिज़राब की वज़न बहुत मायने रखता था। तरह-तरह के छन्द, फिक्रों का अभ्यास कराया जाता था। आजकल तो किसी भी तरह से आवाज निकालना ही

प्रमुख ध्येय है। इसके पीछे के अनुशासन से किसी को कोई मतलब नही। हमारे समय में एक-एक बारीक चीज को लेकर अभ्यास कराया जाता था। कभी एक stroke में तो कभी दो stroke से इसे बजाते थे। एक ही सुर को कई तरह से साधते थे। ध्यान रखा जाता था कि एक ही तार बोले सारे तार न बोलें। पल्टों का रियाज होता था। शाम को रियाज करने बैठते थे तो रात के एक-दो बज जाते थे। आजकल तो राग की शुद्धता का भी ध्यान नही रखा जाता है।

प्रश्न . आप गायकी अंग एवं तन्त्र अंग के विषय में क्या मत है?

इसके उत्तर में आपने कहा कि सितार गाना बजाने की चीज़ नही है। अगर गाना ही गाना है तो तानपुरा लेकर गाओ। आपके मत से वाद्यों में तन्त्रकारी बजाना ही उचित है। आपके शिष्यों में शरण शंकर श्रीवास्तव, बलराम पाठक, वी०के० सेन, सतीश चन्द्र श्रीवास्तव, फ्रान्सिस शेफर्ड आदि मुख्य हैं।

साक्षात्कार : प्रो० बी०के० मिश्रा
<u>कानपुर</u>

कानपुर के प्रो० बी०के० मिश्रा के अनुसार सितार के घराने के विषय में कहते है कि आजकल गायन तथा वादन - दोनों में घरानों का अस्तित्व समाप्त हो गया है और शुद्ध रूप से सितार का तो कोई भी घराना नही है क्योंकि आज जो भी सितार बजाते हैं उनके पूर्वज बीन, रबाब आदि बजाते थे। वैसे आप इनायत खॉ, अलाउद्दीन खाँ एवं हलीम जाफर खाँ को शैलियों के प्रवर्तक मानते हैं। परन्तु कोई भी सितार के आदि रूप का प्रवर्तक नही है क्योंकि इस दृष्टि से देखें तो कोई भी १६ परदों का बिना तरब युक्त सितार नही बजाता।

आपके अनुसार रबाब से सितार के स्ट्रोक में अधिक समानता है। वीणा तथा सितार में स्ट्रोक में अन्तर है जैसे वीणा में 'रा' का प्रहार कम होता है। वीणावादक दो मिजराब पहनते हैं जबकि सितार में एक मिजराब लगाया जाता है

तथा बीन की गूज देर तक रहती थी। यह प्राचीन वाद्य 'स्वान्त सुखाय' के लिए था। घरानों के विषय में प्रो० मिश्र का कहना है कि -

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुहाय।
सार सार को गहि रथे थोथा देई उडाए।।

उनका तात्पर्य यह है कि हर घराने की विशेषताओं को अपनाना चाहिए। उनके मत में आजकल घरानों का कोई अस्तित्व नही रहा। पहले एक घराने को दूसरे घराने से पृथक करने का एक कारक थी 'दूरी'। जिसकी वजह से एक दूसरे से स्वतन्त्र अस्तित्व बने रहना सम्भव था। सितार में एक घराने से दूसरे घराने में मिजराब के प्रयोग मे, आवाज के production में तकनीकी अन्तर है।

साक्षात्कार : श्री रामजी हर्षे

<u>सागर, मध्य प्रदेश</u>

<u>विचार</u> :

मुख्य तीन लोग सितार वादकों में है - रविशंकर जी, विलायत खॉ साहब और उस्ताद हलीम जाफर खॉ साहब। इन तीनों की अलग-अलग अपनी शैली है जिसको कि आजकल के नये पीढ़ी के जितने कलाकार हैं सब उसी को follow करते हैं। उन्ही मे से एक नाम है निखिल बैनर्जी, जिन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनायी है। मैं भी एक छोटा सा कलाकार हूँ मगर मैंने भी अपनी एक अलग style बनायी है। मैंने सब गुणीजनों को सुनने के बाद एवं सीखने के बाद अपनी originality रखी है।

हमारा घराना है बन्दे अली खॉ का बीनकार घराना इन्दौर का, जिसमें अब्दुल हलीम जाफर खॉ हैं।, बन्दे अली खॉ के शिष्य है मुराद खॉ साहब। मुराद खॉ के शागिर्द हुए बाबू खॉ और आष्टे वाले भैया खॉ। बाबू खॉ के शागिर्द है अब्दुल हलीम जाफ़र खॉं और आष्टे वाले का

शागिर्द हूॅ मै। वैसे हम गुरू भाई होते है, मगर उनके साथ रहे और वह हमसे senior है तो उनसे भी काफी सीखने को मिला।

हम लोगों का राजगुरू घराना पेशवाओं की जागीरदारी थी। बडे-बडे कलाकारों को घर बुलाकर सीखा है। रविशंकर जी, विलायत खॉ साहब, भीमसेन जोशी जी - सभी को, सब हमारे घर में रहे... रात-रात भर। तो हर घराने को सुनने और सीखने को मिला।

प्रश्न : आप अपनी घराने की style के बारे में बताइये और आपने उसमें अपने घराने की शैली के अतिरिक्त और क्या किया ?

विचार :

जैसे मीड़ लोग लेते है... मगर 'काट मीड' नही जानते, यह हमारे घराने की खास चीज है। काट मीड है स्वर को काटकर मीड लेना। इसी तरह कृन्तन का काम करना। एक ही हाथ से सितार वादन दूसरा मिजराब का हाथ नही लगेगा। केवल एक ही हाथ से अखण्ड ध्वनि रहेगी। और जो लरज-खरज का काम है, बीन का काम है, वह भी सब, विलम्बित भी आलाप अग भी, जोड अंग, द्रुत काम, लरज-खरज में भी द्रुत का काम करते है - यह सब तो हमारी speciality है, दूसरे लोग नही करते, कम करते हैं अपना-अपना ढंग अलग-अलग है उसमें हमने अपना ढंग अलग निकाला अब यह बताने की चीज़ नही करके बताने की चीज़ है।

प्रश्न : आपके अनुसार आजकल के तन्त्रवादकों के घराने मुख्य रूप से कौन-कौन से है ?

विचार :

जो लोग हैं इन्ही लोगों को follow कर रहे है जो विलायत खाँ को follow कर रहे हैं, इमदाद घराना हुआ उनका जो सेनिया घराना है वह है रविशंकर जी को जो follow कर रहे हैं वो भी अलाउद्दीन खाँ मैहर

घराना है और जो बन्दे अली खॉ के खानदान के है वे बन्दे अली खॉ घराने के हैं।

प्रश्न : क्या आप पण्डित रविशकर जी का अलग घराना मानेंगे ?

<u>विचार</u> :

नही, मैहर घराना अलाउद्दीन खॉ का घराना उनके शिष्य है वह, उनको मैहर घराना का ही मानेंगे।

प्रश्न : जैसे उस्ताद हलीम जाफर खॉ साहब ने जो किया, अपनी नई चीज़ें बजायी, इससे उनका घराना चला...

<u>विचार</u> :

उनकी जाफरखानी बन्दिशें उन्होंने अपनी अलग बनायी। उनका अलग है जैसे हमने अपनी बन्दिशें अलग बनायी है वे ही बन्दिशें हम बजाते है और शिष्य-शिष्याओं को सिखाते है और सबसे बडी चीज क्या है कि मैने कभी ट्यूशन नही की और कभी कोई School नही खोला। इस विद्या को सिखाने का पैसा नही लिया, निःशुल्क शिक्षा देता हूँ मैं और मुझे ४० साल हो गए और बाहर से लडके-लडकियाँ आते है, हमारे घर में रहते हैं। हम अपने पास का उनको खिलाते-पिलाते हैं - गुरू-शिष्य परम्परा से ८-१० दिन रहते हैं फिर lesson लेकर चले जाते हैं। किसी चीज की कोई अपेक्षा नही कोई demand नही। तो यह सगीत के लिए पूर्ण समर्पण भाव से शुरू से रहा है और वही चल रहा है, माँ चला रही हैं।

प्रश्न : शैलीगत प्रस्तुति में वे कौन से तत्व है जो एक घराने को दूसरे से इतना अलग कर देते हैं, कैसे ?

विचार ·

देखिए, रविशकर जी जो है उनको वो भी लरज-खरज बजाते है उनके सितार में सात तार है, विलायत खॉ साहब छः तार लगाए और वह कहते हैं "हम सितार पर सितार बजाते है," क्या समझी ?

प्रश्न : सितार पर गाना या कुछ और नही, पुरानी परम्परागत शैली में सितार बजाने जैसा कुछ ? यदि आप स्पष्ट कर दें...

विचार :

नही, गाना-गायकी तो बजाते हैं मगर उनके में लरज-खरज के तार बिल्कुल नही हैं। यह काम नही करते वह तो सिर्फ गायकी बजाते है और गत-तोड़ा बजाते है और हलीम जाफर खॉ साहब जो हैं ये बीन का काम करते हैं और गत-तोडा तो है ही।

प्रश्न : इस समय जो कलाकार है उनके विषय में कुछ जो आपके विचार से अच्छा कर रहे है ?

विचार :

बहुत अच्छे-अच्छे नए लडके बजा रहे हैं सितार में, शाहिद परवेज़ है बुद्धादित्य मुखर्जी हैं नीलाद्रि कुमार है - ये लोग अच्छा बजा रहे हैं।

प्रश्न : आपको लगता है कि पुरानी परम्परा का निर्वहन कर रहे हैं आजकल के कलाकार ?

विचार :

हॉ-हॉ उसका निर्वाह करते हैं और उसी line पर चल रहे हैं।

प्रश्न : जैसे कहा जाता है कि बुद्धादित्य मुखर्जी ने टप्पा अंग से अलग ही style बनायी...

विचार ·

नही, वो क्या है कि उनके पिताजी हमारे गुरू भाई है। बी० मुखर्जी हमारे जो गुरू जी थे वो टप्पे उन्होंने हमें भी सिखाये और बी० मुखर्जी को भी सिखाये, उन्होंने सितार में बुद्धादित्य को सिखाए वही टप्पे बुद्धादित्य बजाते है।

प्रश्न : अच्छा, यह चीज पहले से ही है आप मानते है, उन्होंने इस शैली का ईजाद किया ऐसा आप नही मानतें ?

विचार :

ना, ना टप्पे तो पुराने है हमने भी सीखे हैं वो एक हल्के राम भट्ट थे उन्होंने उनको भी सिखाया, हमें भी सिखाया। अब वही गायकी की चीज सितार में बजाते है।

प्रश्न : यदि आप कुछ और विस्तार से बता दें ..

विचार :

इन तीनों कलाकारों को ही follow कर रहे हैं। निखिल बैनर्जी जो हैं जो पुरानी जयपुर बाज की परम्परागत चीजें थी मसीतखानी बाज तो ताने तेज लय में नही होती थी। ज्यादा तो आज जो बज रहा है रजाखानी भी बजा रहे हैं और मसीतखानी साथ-साथ। क्या था मसीतखॉ साहब ने अपनी एक particular मिजराब बनाई ८ मात्रा की, 'दिर दा दिर दा रा दा दा रा' तीनताल में, उसको दो बार repeat करते थे। वह उन्होंने ही बनायी है इसलिए उनके नाम से तो मसीतखानी के नाम से चला है। तो गुलाम रज़ा खॉ साहब जो हो गए हैं, उन्होंने मध्यलय की बन्दिशें की पर उनकी कोई fixed मिजराब नही है। मसीत खॉ साहब १२ मात्रा से बजाते थे। हमने जो बन्दिशें बनायी हैं या बजाते हैं वो पौने-बारह मात्रा से शुरू हो जायेंगी। कठिन काम है मगर हो रही है। माँ ने करा दिया है तो कर रहे हैं उसको हम अपने शिष्य-शिष्याओं को भी वही सिखा रहे हैं। हमारी दो बच्चियाँ है, वो भी कत्थक dance करती हैं और सितार भी

बजाती है। Scholarship भी मिल रही है। दूरदर्शन से भी उनके programmes होते है। उपरोक्त घरानों की परम्पराओं को भी आगे बढा रही हैं। हॉ, हमारे चाचा का लडका है वह भी अच्छा सितार बजा रहा है।

प्रश्न . आपने जो शैली में इतना कुछ किया है तो आपसे ही आपका एक घराना है, बिलकुल अलग, ऐसा आप मानते है ?

विचार :

अच्छा दिर दा दिर दारा को थोडा बदल दिया है हलीम जाफर खॉ ने जाफरखानी नाम दिया अलग उसकी मिजराब है, अलग ढग से होता है। हम तो इतने छोटे कलाकार है कि हम अपना कोई नाम भी नही ले रहे है, कुछ नही हम तो संगीत की सेवा कर रहे है, पूरा समर्पण भाव है। वो लोग तो पहाड हैं, हम तो जरा सा जर्रा हैं। ऐसा है अपनी पहचान अलग रखना हमने कभी किसी की नकल करने में विश्वास नही किया जो भी है originality अपनी भले थोडी सी हो मगर अलग पहचान वैसे कोशिश कर रहे है और की है।

प्रश्न : घरानों को जो मुख्य रूप से दो चीजे divide करती हैं, जैसे – एक तन्त्र अग बजता है तो कही गायकी, इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल दें...

विचार :

क्या है कि हम तो दोनों बजाते हैं – गायकी भी बजाते है और तन्त्र अंग भी बजाते हैं। मगर आजकल क्या है जो पुराना सही गतकारी का अंग है वो लोग भूलते चले जा रहे है और सिर्फ गायकी पर ही सबका खास लक्ष्य है। सभी कहते हैं कि हम गायकी बजाते हैं।

प्रश्न : पुरानी style कैसी थी, क्या ख़ास बात होती थी ?

विचार :

वो सितारखानी बाज सितार अलग उसमें गत, तोडे सब बजता था न पहले लोगों में बडी वजनदारी थी। इतने द्रुत नही बजाते थे न गाते थे मगर जितना करते थे उसमें असर था। आजकल क्या है चमत्कार है फर्राटेदार तान। बहुत कम artist है जिनसे सुकून मिलता है।

प्रश्न : आपके ऐसे पसन्दीदा artist कौन हैं ?

विचार :

देखिए, हम तो यह समझते हैं कि हम से सब अच्छे हैं और हमें हर एक से कुछ न कुछ सीखने को मिलता है। हर एक के पास जो कुछ भी है हम तो उससे सीखते है और सीखना चाहते है। शिष्य वर्ग में ही जिन्दगी भर रहना चाहते है। हम कहते भी है बच्चों से तुम Junior हो हम Senior है मगर शिष्य-गुरू तो मॉ-ईश्वर हैं बाकी सम्पूर्ण थोडी होता है। गुरू तो बहुत बडी बात है, हमने तो पूरा जीवन समर्पित कर दिया संगीत के लिए गुरू परम्परा से ही सीखा है उसी से सिखाते हैं।

प्रश्न : बाकी तन्त्र, जैसे सरोद आदि के घराने आपस में कुछ मिलते है, इस विषय पर आपके क्या विचार हैं ?

विचार :

सब एक ही घराने हैं, अलाउद्दीन खॉ हुए या हाफिज़ अली खॉं है। अमजद अली खॉ, अली अक़बर हैं, आखिर में जाकर सब एक में मिल जाते हैं। फिर बाद में उसकी शाखाऍ हो जाती हैं तो अलग-अलग नाम हो जाते हैं ऐसा है।

प्रश्न : आजकल में क्या ऐसा कोई भी घराना नही है जो बिलकुल पुरानी शैली का पूरा-पूरा निर्वहन कर रहे हों ?

विचार :

नही पुराने घराने तो है जैसे विलायत खॉ का सेनिया घराना है।

प्रश्न : लेकिन उनके घराने में भी हर generation में काफी experiments हो रहे है...

विचार :

तो वह तो हर व्यक्ति अपनी छवि तो रखेगा। उसमें हर एक का अपना-अपना कल्प अलग होता है, रूप अलग होती है। उसके रूह के अनुसार वह गाता-बजाता है। तो बदल तो होना है, परिवर्तनशील है संगीत... हर चीज परिवर्तशील है।

प्रश्न : समय के साथ लोगो की पसन्द से भी वह बदलता है...

विचार :

अब क्या है पहले घण्टों से लोग आलाप सुनते थे। अब इतना समय लोगों को नही है न। आधे घण्टे, पन्द्रह मिनट में जो कुछ है वही सुनाते हैं।

श्री रामजी हर्षे जी ने अपनी एक बन्दिश उपलब्ध करायी जो कि पौने बारह मात्रा से प्रारम्भ होती है -

राग कौंसी कान्हड़ा (विलम्बित तीनताल)

स्थायी :

साक्षात्कार : डॉ० राजभान सिंह

<u>बनारस</u>

डॉ० राजभान सिह अपने सितार-शिक्षण के विषय में बताते है कि पिताजी को सितार का शौक था, चाचा ढोलक बजाते थे, नवाब अख्तर मिया के यहॉ ग्वालियर के दो उस्ताद आया करते थे, दोनों अन्धे थे तथा सितार बहुत अच्छा बजाते थे। उनके पास बहुत अच्छी बन्दिशें थीं और उनको सुनने पिताजी २-३ कि.मी. दूर पैदल जाया करते थे और उनसे चोरी-चोरी सीखने लगे क्योंकि उस जमाने में संगीत को बहुत बुरा माना जाता था। फिर बाद में उस्ताद जी को घर पर भी बुलाकर २२ वर्षों तक सितार, तबला, पखावज, ढोलक और बॉसुरी भी सीखा।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गायन से प्रारम्भ हुई। आपने हनुमान प्रसाद मिश्र तथा श्याम प्रताप भट्ट से गायन सीखा। तत्पश्चात् ७-८ वर्ष की उम्र से सितार और तबला सीखना प्रारम्भ किया। इलाहाबाद के मावलंकर जी से प्रभावित होकर उन्हीं से सितार सीखने लगे, जो कि ग्वालियर घराने से सम्बन्धित थे। इस घराने में दाहिने हाथ का काम अधिक होता था और बाएँ हाथ का काम या आलापचारी सीधा-साधा होता था, जो कि गायकी अग का न होकर ध्रुपदांग का होता था। यहॉ दाहिने हाथ के मिजराब के छन्दों का प्रयोग बहुत अधिक होता था और सितार भी बहुत नीचे स्वर में मिलाया जाता था। जैसे, मान लें, पहले काले का कोमल निषाद्। इससे सितार की आवाज में मिठास रहती थी। सितार सत्रह पर्दे का हुआ करता था। दाहिने हाथ के काम में झाले के विभिन्न प्रकार, जैसे - सपाट, ठोंक, उलट-सुलट, संकीर्ण, मिश्र, खण्ड-झाला आदि बजते थे। उस समय मसीतखानी गतों के ही बजने का प्रचलन था, उसी में तोडे और फिक्रे बजाते थे, न कि तानें। यह गत के बराबर की लय में बजते थे, डेढ़ व दुगुन की लय में भी बजते थे। फिर झाला बजता था जिसमें ठेका और झाला भी दुगुन लय का हो जाता था। उस समय काफी,

सिन्धु-काफी, सिन्धु-भैरवी, सिन्धु-खमाज, आसा, लोम, वैसवाडा आदि रागें बजती थीं जो आजकल सुनाई नहीं पडती है। आजकल यह सब पुरानी रागों को कोई बजाता नहीं कारण किसी ने सीखा नहीं। उस जमाने में उस्ताद जल्दी किसी को सिखाते नहीं थे। तालीम तीन प्रकार से दी जाती थी, एक तो खास तालीम होती थी जो उस्ताद लोग अपने लडके को देते थे, दूसरा खासो-खास तालीम होती थी जो भतीजे वगैरह को सिखाते थे और तीसरा आम तालीम था जो सब लोगों को सिखाते थे।

घरानों के विषय में आपका कहना है कि पहले जयपुर का घराना जिसे दिल्ली बाज भी कहते थे और दूसरा था लखनऊ का घराना - यह दो ही बाज थे। आप इस समय के सितार के अच्छे कलाकारों में प० रविशकर, पं० बलराम पाठक - जो कि ठुमरी अंग भी बहुत अच्छा बजाते थे; उसके बाद विलायत खॉ, इमरत खॉ, शाहिद परवेज आदि है लेकिन पं० रविशंकर जैसा विद्वान कलाकार कोई दूसरा नहीं है। इनके जैसा राग, ताल का ज्ञान किसी और को नहीं है।

यह पूछने पर कि प्राचीन वीणा में वह सब बजाना सम्भव था जो आज सितार में बजता है? इस प्रश्न के उत्तर में आपका कहना है कि वीणा में कभी गत नहीं बजती थी, ध्रुपद अग शैली का आलाप बजता था। लोग ध्रुपद गाते थे तो वीणा में संगति होती थी। विचित्र-वीणा में सभी कुछ बजता है, इसके आविष्कारक है पटियाले वाले अब्दुल अजीज खॉ हैं। यह सारंगी-वादक थे और सितार का पर्दा काटकर वीणा में बजाना प्रारम्भ किया। यह पुरानी वीणा नहीं है।

इस प्रकार साक्षात्कार के माध्यम से विद्वानजनों ने अपने मत व्यक्त किए।

*** *** ***

षष्ठम् अध्याय

षष्ठम अध्याय

स्वतन्त्र रूप से सितारवादन की परम्परा का विकास

हमारे देश में संगीत का अर्थ गायन, वादन और नृत्य – इन तीनों विधाओं से लिया जाता है। गायन और नृत्य की सगंति के लिए सभी कालों में वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक काल में जब साम गायन प्रचलित था, उस समय विभिन्न प्रकार के वाद्यो द्वारा गायन तथा नृत्य की सगति होती थी, साथ ही एकाकी वादन भी प्रचलित था।

वैदिक काल का संगीत यज्ञादि से सम्बन्धित धार्मिक संगीत था। वाद्यों का प्रयोग यज्ञादि कर्मकाण्डों के अवसरों पर संगति के लिए होता था परन्तु साथ ही वीणा के स्वतन्त्र वादन की प्रथा भी प्रचार मे थीं। बाण नामक वीणा का वैदिक काल में अत्यधिक प्रचार था। सम्भव है कि इसका वादन लकडी की शलाकाओं से होता था। इस प्रकार यह वाद्य प्रत्येक अवसर पर बजने वाला महत्वपूर्ण वाद्य था। वैदिक काल के बाद भी सभी युगों में वाद्यों का स्वतन्त्र वादन होता रहा है, ऐसा ग्रन्थों में प्राप्त होता है। भरत का ‘नाट्यशास्त्र’ दूसरी शताब्दी का संगीत सम्बन्धी तत्वों की विवेचना करने वाला प्रमुख ग्रन्थ है। वीणा वादन की कला से उस समय भी लोग पूर्णरूप से परिचित थे। वीणा के वर्णालकारों के लिए ‘धातु’ संज्ञा का प्रयोग किया जाता था। विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लयों के अनुसार वीणा–वादन त्रिविध रूप से होता था जिसके लिए क्रमशः तत्व, अनुगत तथा ओघ संज्ञाएँ थी। लय, ताल, पद, वर्ण, यति, गीत, अक्षर से जो सम्पन्न होता है उसे तत्व कहते है। गीत का जो अनुगमन करता है उसे अनुगत कहते हैं और अविद्धकरणअपरिपाणिक, द्रुत लय अनपेक्षित गीत का प्रयोग जिस वाद्य में होता है, उसे ओघ कहा गया है।[1]

---

[1] निबन्ध सगीत – लक्ष्मी नारायण गर्ग

त्रिविधं गीते कार्य वाद्य वीणा समुद्भव तज्ज्ञै·
तत्वं ह्यनुगतमोघः स्थनैकरण समायुक्ता
लयतालवणपद्यतिगीत्यक्षरभावक यवेत्ततत्वम्।।
गीत तु यदनुगच्छत्यनुगतमिति तद्भवेद्वाद्यम्।।
आविद्धकरणबहुलं ह्यु पर्युपरिपाणि क द्रुतलय च
अनपेक्षित गीतार्थ वाद्य त्वोधे विधातव्यम्।।

– नाट्शास्त्र अध्याय–३

'नाट्यशास्त्र' में गीत दो प्रकार के माने गये है – (१) निर्गीत (२) बहिर्गीत। निर्गीत नादमय होता है। दूसरे शब्दों में वाद्यों के गीत–रहित वादन का नाम निर्गीत है। इसका पर्यायवाची शब्द 'शुष्कवाद्य' है। परन्तु वही निर्गीत जब नाट्य के पूर्व रंग में बजता है तो बहिर्गीत कहलाता है। सतालानि, ह्युतालानि, चित्रदृता – ये तीन विभिन्न प्रसंगों मे गाये जाने वाले बहिर्गीत के प्रकार हैं। क्योंकि पृथक प्रकार के नाटकों में विभिन्न रसों की प्रधानता होती है।

गीत के प्रथम निर्गीत प्रकार से वाद्यों के स्वतन्त्र वादन का संकेत प्राप्त होता है, क्योंकि शब्द या गीत रहित सगीत वाद्य पर ही बजता है।

शारगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' के वाद्याध्याय में वाद्यों का चतुर्विध विभाजन उनका प्रयोग (शुष्क, गीतानुगं अर्थात् गीत और नृत्य दोनों) वीणा के भेद–प्रभेदों का विस्तृत विवरण वीणा–वादन के पारिभाषिक शब्द, वादकों के गुण–दोष आदि विभिन्न विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही रत्नाकरकार ने यह भी कहा है कि गीत वाद्य से उत्पन्न होता है। इसका अर्थ इस प्रकार से समझ सकते हैं कि श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना – इन सबके निर्माण के लिए तत् तथा सुषिर वाद्यों को ही प्रमाण माना जाता है। इसलिए स्वर सम्बन्धी प्रमाण–निर्धारण के लिए वाद्य अनिवार्य है, और इस अर्थ में वाद्य से गीत की उत्पत्ति समझी जा सकती है। तत् और

सुषिर इन दो वाद्य भेदों का सम्बन्ध गीत के स्वर पहलू से है। इनका योगदान स्वर श्रुति तान मूर्च्छना आदि के रूप में है। इसीलिए यह कहा है कि इससे गीत उत्पन्न होता है। अवनद्ध वाद्यों के प्रयोग से गीत में रजकता आती है और घन वाद्यों से गीत को नापने तथा गिनने की तथा काल-निर्धारण की क्रिया सम्पन्न होती है। ताल रखने की क्रिया प्राचीन काल में मुख्य रूप से घन वाद्यों द्वारा की जाती थी, कर्नाटकी सगीत में अभी भी प्राय मजीरावाला ताल रखता है। परन्तु जहाँ वाद्यों का कार्य उत्पादन-उपरजन तथा गीतों का अनुगमन है, वहाँ केवल नृत्य द्वारा सम्मिलित वाद्य का अनुगमन भी है। केवल यही नही, वाद्यों का स्वतन्त्र स्थान भी है। वाद्यों के वादन की स्वतन्त्र शैली में केवल वादन होता है। गीत और नृत्य की चर्चा तक नही होती। वाद्यो का स्वतन्त्र वादन होता है। वादन शैली निर्गीत वादन कहलाता है। इसे शुष्क वादन या गोष्टि कहते है।

'रत्नाकर' के अनुसार वाद्यों का प्रयोग चार प्रकार से किया जा सकता है :

१. शुष्क . जो गीत व नृत्य की संगति के बिना प्रयुक्त हो।
२. गीतानुग : गीत का अनुगमन करने वाला हो।
३. नृत्यानुग : नृत्य का अनुगमन करने वाला।
४. द्वयानुग : गीत और नृत्य दोनों का अनुसरण करने वाला।

इसमें भी जिसे शुष्क वादन कहा गया है वही उस समय का स्वतन्त्र वादन था। इस प्रकार स्वतन्त्र वादन सदैव से ही भारतीय संगीत में प्रचलित रहा है।

राजा सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ 'मानसोल्लास' के वाद्य-विनोद अध्याय में लिखा है:

पृथग्वाद्यं भवेदेकं द्वितीय गीत संगतम्
नृत्तानुग, तृतीय च तुरीयं गीत नृत्यगम्
एव चतुर्विधं वाद्यं विनोदार्थ महीपतिः
सम्यैः सह समासीनः श्रुण चात्सुसमाहितः।।

अर्थात् वाद्यों का प्रथम कार्य स्वतन्त्र वादन है, दूसरा है गीत की संगति, तृतीय कार्यनृत्य का अनुगमन एवं चतुर्थ गीत तथा नृत्य की सगति करना। इस प्रकार राजा के विनोद के लिए चार प्रकार के वाद्य होते है, उन वाद्यों को सब सभ्यों के साथ एकत्र होकर राजा को सुनना चाहिए।

अब इस विषय पर विचार करना है कि स्वतन्त्र वादन के रूप में वाद्य पर किस प्रकार की सामग्री गायन से भिन्न होती है।

> "स्वतन्त्र वादन की परम्परा में आज सबसे बडा अन्तर यह हुआ है कि प्राचीन काल से मध्य काल तक, यहाँ तक कि 18वी शताब्दी के मध्य तक वाद्य पर गायन की सामग्री ही बजती रहती है। वादक संगति के अतिरिक्त भी तत्कालीन गायन सामग्री को ही अपने वाद्य पर स्वतन्त्र वादन के रूप में प्रस्तुत करता था।"[1]

'नाट्यशास्त्र' मे जाति गायन का उल्लेख मिलता है। जातियो को सुन्दर बनाने के लिए विविध वर्ण एवं अलंकारों का प्रयोग होता था। गायन–वादन की शैलियों के आधार पर निम्नलिखित चार प्रकार की गीतिया मानी गयी थी :

१. मागधी   २. अर्द्धमागधी   ३. सम्भाविता   ४. पृथुला

ये ही जाति गायन वाद्यों पर भी बजता था। इसका प्रचार प्रायः 13वी शती तक देश भर में था। तत्पश्चात् प्रबन्ध गायन आया और प्रबन्ध के बाद ध्रुवपद गायन की प्रणाली प्रचलित हुई। ध्रुपद के प्रचार से भी वाद्यों पर बजने वाली सामग्री पृथक नही हुई। ध्रुपद गायन की संगति वीणा (सरस्वती) तथा मृदंग द्वारा होती थी। स्वतन्त्र वादन प्रस्तुत करते समय भी वीणावादक मृदंग की संगति के साथ साल, सूलताल, आदिताल की विभिन्न चीजों को बजाता था। क्योंकि उससे उस समय

---

[1] डॉ० पुष्पा वसु

तबला वादन का प्रचार नही था। स्वतन्त्र वादन की यह शैली सम्भवत. 18वीं शताब्दी तक प्रचलित रही तथा वीणा, रबाब, सुरसिंगार आदि समस्त वाद्यों पर ध्रुवपद ही बजता रहा।

उत्तर भारतीय संगीत को तानसेन तथा उनके वंशजों की बहुत बडी देन है। वे स्वय तो उच्च कोटि के गायक थे किन्तु आगे चलकर उनके वंशजों में उच्च कोटि के अनेक तन्त्रकार हुए। इनके वंशज आगे चलकर 'सेनिया' कहलाये। इसी घराने में मसीदखॉं नामक एक उस्ताद हुए जिन्होंने तन्त्रीवाद्य का नया बाज (शैली) निकाला, जो आगे चलकर अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

इस प्रकार तन्त्रीवाद्यों में स्वतन्त्र वादन शैली का प्रारम्भ विशेष रूप से इसी समय हुआ। मसीद्खॉं के पश्चात् 19वी शती में रजा नामक एक उस्ताद हुए। इन्होंने भी वादन का एक नया बाज निकाला जो रजाखानी बाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भविष्य में यह बाज सभी तन्त्रीवाद्यों के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ।

इन दोनों उस्तादों द्वारा जिस बाज का निर्माण हुआ, उससे स्वतन्त्र वादन शैली के नवीन युगों का प्रारम्भ होता है। ये दोनों बाज क्रमशः विलम्बित और द्रुत लय के थे। इनके प्रचार से वाद्य सगीत को नई सामग्री मिली। गायन से पृथक वाद्यों के बात का प्रचार करने में मसीतखानी और रजाखानी बाज से बहुत सहायता मिली, किन्तु वाद्यों के स्वतन्त्रवादन की इस सामग्री के प्रचार के बाद भी 19वी तथा 20वी शताब्दी के प्रारम्भ तक इनका जिस प्रकार से वादन होता रहा, उससे आज की वादन शैली पर्याप्त भिन्न हो गयी है। प्रारम्भ में मसीतखानी गतों की बढ़त गत के बोलों के आधार पर ही मिजराब के बोलों को बदल-बदल कर की जाती थी। रजाखानी गतों में रागांगी तोड़े बजते थे। आधुनिक काल की वादन शैली खयाल गायकी से प्रभावित हो गई है। इसी के परिणामस्वरूप वाद्यों पर, विशेष रूप से सितार पर भी तोड़ो का स्थान तानों ने.ले लिया है। किन्तु सरोद पर अभी भी अधिकतर तोड़े ही बजते है, क्योंकि सभी प्रकार की तानों का वादन सरोद में सम्भव

नही है। वर्तमान काल में सितार, सरोद और वीणा पर मसीतखानी और रजाखानी दोनो प्रकार की गतों का वादन होता है। किन्तु सारगी व वायलिन पर स्वतन्त्र वादन के रूप मे खयाल ही बजाया जाता है क्योंकि सारगी का प्रयोग अधिकतर खयाल गायन की सगति के लिए होता है। वायलिन पर गतकारी अग का वादन भी कुछ वादक बजाते है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वाद्यों के स्वतन्त्र वादन की परम्परा अर्वाचीन न होकर प्राचीन है। आज केवल वादन सामग्री में परिवर्तन हो गया है। तथापि प्राचीन वाद्यों में वादन सामग्री का जहॉ तक प्रश्न है, वीणा के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि वीणा वादन के प्रारम्भिक बाज में ध्रुपद के आधार पर बोलों की सहायता से गतियों (गतों) का निर्माण किया गया था। इन गतियों के विस्तार हेतु ही तारपरन क्रिया का आश्रय लिया गया था, जो पखावज से प्रभावित था।

जब वीणा के स्थान पर सितार वाद्य के रूप में प्रचार में आया तो उस पर भी वीणा के समान ही ध्रुपद के आधार पर गतियों का व्यवहार होता था।[1]

शास्त्रकारों का मत है कि शाह सदारंग जो मोहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक थे उन्होंने ध्रुवपद के आधार पर विलम्बित लय में सितार पर बजने योग्य सर्वप्रथम गति का निर्माण किया।

शाह सदारंग के वंशज उस्ताद मसीद खॉ से पूर्व तक इसी गत शैली का प्रयोग फिरोज खॉं आदि कलाकारों द्वारा भी किया गया था । उस समय तक इस गत शैली में यह बन्धन न था कि यह केवल किसी एक ही ताल विशेष में प्रस्तुत कि जायेगी और न ही इसमें बोलों के क्रम का विधान था तथा इस गत शैली को कोई नाम भी प्राप्त नही था । उस समय तक यह मात्र एक सितार पर बजने वाली 'गति' थी जिसका आधार ध्रुपद का ही सादा ढांचा था और साथ-संगति के समय

[1] नगमा तुलहिन्द – नवाब अशफाक़ अली खॉ

सितारवादन किया जाता था। वाद्य संगीत में वादन की रीति को ही बाज कहा गया है। अर्थात् किसी वादन रीति का विश्लेषण कर वाद्य वस्तु के पारस्पर्य में एक सुनिर्दिष्ट नियम दिखायी देने पर उसे 'बाज' कहते है।

सर्वप्रथम उस्ताद मसीत खॉ ने इस गत शैली के प्रस्तुतीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने इसके वादन के नियम में सर्वप्रथम बॉट (विभाजन) का नियम प्रस्तुत किया। उन्होंने बोलों को 'दिर दा दिर दा रा दा दा रा दिर दा दिर दा रा दा दा रा' में बॉट कर एक नवीन रूप प्रदान किया। वैज्ञानिक दृष्टि से यह विभाजन बहुत ही सरल सुबोध और वादनोपयोगी था, जो कि तीनताल के लिए उपयुक्त था। फलस्वरूप बहुत कम समय में यह वादन-पद्धति जनसाधारण में फैल गयी। उस्ताद मसीत्खॉ के इस परिवर्तन के कारण ही इस गत शैली का नाम 'मसीदखानी' गत शैली पडा। शाह सदारग के घराने का एक नियम यह भी था कि जिस वादक कलाकार द्वारा जिस वाद्य विशेष पर प्रर्वाणता प्राप्त की जाती थी, उसकी वादन पद्धति को उसी के नाम का बाज कह दिया जाता था। यही कारण था कि इस परिवर्तित गत शैली को उन्ही के नाम से प्रसिद्ध किया गया। फलस्वरूप इस गत शैली का नाम मसीतखानी गत और पूरी वादन पद्धति को मसीतखानी बाज या दिल्ली बाज की संज्ञा प्राप्त हुई और सर्वप्रथम सितारवादन का एक व्यवस्थित रूप सामने आया। उस्ताद मसीतखॉ द्वारा प्रवर्तित गत शैली का इतना अधिक प्रचार और लोकप्रियता बढी कि आज भी प्रायः प्रत्येक विलम्बित गति को लोग मसीतखानी ही कह देते हैं।

उपर्युक्त वर्णनों से गतों की रचना के तात्पर्य पर प्रकाश पड़ता है। गतों की रचना का मुख तात्पर्य सितार वाद्य को वादनोपयोगी व लोकप्रिय बनाने का प्रयास मात्र था जिसमें तत्कालीन विद्वानगण पूर्णतः सफल रहे। यह विद्वान सितार वाद्य को एक निश्चित् मुकाम पर पहुँचाने की चेष्टा में सार्थक हुए।

प्रयोग परम्परा :

उस्ताद मसीतूखॉ के समय तक इस गत शैली को विशेष सौन्दर्य उपकरणों से अलंकृत करने की प्रथा नही के बराबर थी, सीधे-सीधे गत बजाया जाता था। मिया रहीम सेन ने जब सितार का वादन प्रारम्भ किया तब तक के बोलों द्वारा ही विभिन्न लयों में गत को बजाकर सितार वादन पद्धति की ओर पुत्र मिया अमृत सेन जी ने इस गत शैली में विभिन्न लयों के प्रयोग के अतिरिक्त इसमें फिक्रों (छोटे-छोटे स्वर समूह) को बजाकर वादन पद्धति को अलकृत किया जो कि एक नवीन प्रयोग था। इस वादन पद्धति का अनुसरण उस्ताद हाफिज खॉ के समय तक होता रहा। इस घराने के प्रसिद्ध सितारवादक अमीर खॉ ने इस वादन पद्धति में मिया अमृत सेन के समान फिक्रों का व्यवहार तो किया किन्तु इन फिक्रों की स्वर संख्या बढा दी तथा 'गत की सीधी-आडी' कह कर गत के बीच में विभिन्न लयों का वादन प्रस्तुत कर सितार वादन पद्धति को और विकसित किया। यह वादन प्रणाली बहुत प्रसिद्ध हुई और सेनियों के बाज के रूप में एक लम्बे समय तक व्यवहार में रही।

उस्ताद इमदाद खॉ के समय तक इस गत शैली के साथ तबले पर केवल ठेका भरने की प्रथा थी। संगत में टुकडा-परन या तिहाई नही बजती थी। गत में जो फिक्रे बजते थे वह अधिकांशतः खाली की तीसरा मात्रा (११वी मात्रा) पर समाप्त कर १२वी मात्रा से पुनः गत आरम्भ करने की प्रथा थी। इनके समय तक ~~मसीतखानी~~ बाज ध्रुपद के नियमों पर आधारित था। उस्ताद इमदाद खॉ ने इस बाज में ध्रुवपद शैली के साथ खयाल शैली का मिश्रण किया तथा बीन, रबाब और पखावज के विभिन्न नियमों औ सौन्दर्योपकरणों का कुशलता से समावेश कर इस बाज को पुनः नवीनता प्रदान की यह वादन पद्धति अत्यधिक लोकप्रिय हुई और आज भी इस बाज का अनुसरण हो रहा है। इस प्रकार यह परिवर्तन गायन शैली में आए परिवर्तनों से भी प्रभावित थी।

जिस समय मसीतखानी बाज की वृद्धि और उसके विकास के प्रयास जयपुर, झझर और अलवर में हो रहे थे उसी समय सितार की दूसरी शैली 'रजाखानी शैली' लखनऊ, बनारस और जौनपुर में विकसित हो रही थी जब लखनऊ नवाबों की राजधानी बनी तब सगीत के अनेक गुणी कलाकार लखनऊ राज्य के आश्रित हुए नवाबों के दरबारों और रईसों की महफिलों में भी मसीतखानी बाज ही प्रस्तुत किया जा चुका था। लखनऊ के श्रोताओं को यह धीमी गति रूचिकर नही लगी। फलस्वरूप मध्य और द्रुत लय के व्यवहार हेतु गतों के एक नए प्रकार का उदय हुआ। उपरोक्त गतों के निर्माण का पूर्ण श्रेय सेनिया घराने के उस्ताद मो० गुलाम रजा खॉ, उस्ताद प्यार खॉ, नवाब हशमत जग, कुतुबुद्दौला तथा गुलाम मोहम्मद खॉ आदि कलाकारों को है, जिन्होंने समयोचित परिवर्तनों को ध्यान में रखकर एक नवीन शैली को जन्म दिया।

मध्यलय की गतें तीनताल की बराबर की लय (सितारखानी) में रचित थी। जिन गतों का आधार ठुमरी गायन शैली था वह मध्य लय में और जिन गतों का आधार तराना गायन शैली का था, वह द्रुत लय में बजायी जाती थी और आज भी गतों की यह 'प्रयोग परम्परा' और वादन पद्धति प्रचार में है।

मुख्य रूप से सितार की दो शैलियॉ ही मानी गयी है – (१) मसीतखानी शैली और (२) रजाखानी शैली।

<u>मसीतखानी शैली</u> :

शास्त्रकारों का मत है कि सितार में फिरोजखानी गत शैली के नाम से एक गत का प्रकार भी प्रचार में था। इसी को परिष्कृत कर उस्ताद मसीत खॉं ने अपने नाम से 'मसीतखानी' गत का प्रचार किया था। परन्तु फिरोज़खानी गत आज प्रचार में नही है। कुछ विद्वानों के अनुसार एक समय फिरोजखानी गत शैली भी प्रचार में था परन्तु वह ध्रुपद के समान बजती थी तथा चारताल और धमार में उसका वादन होता था। फिरोज़खानी गत शैली की चर्चा सरोद में मिलता है। फिरोज़खानी गत

शैली के विषय में कोई लिखित ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। आचार्य बृहस्पति ने मात्र इतना ही लिखा है कि खुसरो खॉं के पुत्र का नाम फिरोज खॉं (अदारंग) था, जो गायक, वीणावादक और वाग्गेयकार होने के साथ सितारवादक भी थे। इन्होंने एक गत की रचना भी की थी जो फिरोजखानी गत के नाम से कुछ दिन प्रचार मे रही।

उपरोक्त वर्णन से इस गत शैली के प्रचार में रहने का निश्चित समय तथा स्वरूप की जानकारी नही मिलती। अतः शास्त्रकारों के मतानुसार मात्र इतना कहना सम्भव है कि फिरोज़खानी गत शैली भी थी।

मसीतखानी गत शैली के साथ कुछ समय पूर्व 'इमदादखानी' गत शैली की चर्चा भी कुछ ग्रन्थकारों ने की है। सर्वप्रथम १९३० में श्री विमलकान्त रायचौधरी ने इस गत शैली के विषय मे लिखित रूप से घोषणा की तथा इस गत शैली के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया परन्तु इसमें भी मतभेद है।

इस सम्बन्ध में यह कहना जरूरी है कि उस्ताद इनायत खॉं, जो उस्ताद इमदाद खॉं के पुत्र थे, ने कभी किसी भी विलम्बित गत को इमदादखानी गत कह कर प्रस्तुत नही किया था जबकि वह विलम्बित और द्रुत दोनों गत-शैलियों के कुशल सितारवादक थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मसीतखानी गत शैली में ही थोडा बहुत परिवर्तन कर इमदादखानी गत का नाम दिया गया होगा। इमदादखानी गत के लिए कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नही हुए हैं। किसी की शैली के प्रसिद्ध होने के पीछे नियोजित बोल और वादन क्रिया का होना आवश्यक है और इस दृष्टि से मसीतखानी गत-शैली का ढांचा पूर्ण रूप से मन मस्तिष्क में समा चुका है। अतः इस ढांचे या बंधान को किसी रूप में भी कितनी भी स्वरावलियों द्वारा सजाकर प्रस्तुत किया जाए परन्तु वह मसीतखानी ही कही जाएगी।

इस प्रकार विलम्बित गत शैली के ही अन्तर्गत फिरोजखानी, मसीतखानी, इमदादखानी : यह तीन नाम माने जा सकते है। परन्तु यह दोनों शैलियाँ मसीतखानी शैली से ही प्रभावित है।

<u>रज़ाखानी शैली</u> :

रजाखानी गत के अन्तर्गत भी तीन प्रकार की गतें प्रचार में हैं –

१. पूर्वी बाज गत शैली के पूर्वी बाज की गतें जिनका आधार ठुमरी गायन शैली थी, जिसमे कम बोल प्रयुक्त किये गए और जिनकी रचना सेनी घराने के शिष्यों ने की थी।

२. रज़ाखानी गत का वह प्रकार जिसकी रचना सेनी घराने के वीणावादकों और उनके शिष्यों ने की थी।

३. रजाखानी का वह प्रकार जिसकी रचना सेनी घराने के रबाब वादकों और उनके शिष्यों ने की थी।

इन तीनों 'गत प्रकारों' को रजाखानी बाज ही कहा गया है। इन तीनों गत प्रकारों में स्वरबँधान और बोलों के प्रयोग के अतिरिक्त और कोई अन्तर दृष्टिगोचर नही होता।

उदाहरण जिन गतों की रचना ठुमरी के आधार पर हुई उनमें बोल कम है और मध्य लय में बजती है। इसे पूरब बाज भी कहते है :-

		म	ग	रे	स	–	रे	स	ध़	–	नि़	स	–	ग	–
		दा	रा	दा	दा	–	दा	रा	दा	–	रा	दा	–	दा	–
२				०				३				X			
म	ध	म	ग	म	ध	नि	–	–	म	प	ध	ग	म	ग	रे
दा	दा	रा	दा	रा	दा	दा	–	–	दा	रा	दा	दा	रा	दा	रा
२				०				३				X			
स	–														
दा	–														
२															

इस गत में बोल का प्रयोग कम है और जो बोल प्रयुक्त हुए है उसमें 'दा' का प्रयोग अधिक है। इसी प्रकार की गतों को पूर्वी बाज कहा गया है।

ग	-गरे	-रे	स	नि़	सस	ध	नि	स	-	स	स	म	-	गग	मम
दा	-रदा	-र	दा	रा	दिर	दा	रा	दा	-	र	दा	दा	-	दिर	दिर
०				३				x				२			

-ग	मम	धध	निनि	स	-संनि	-	निध	म	-	गग	रे	-	सस	स	स
दा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-	रदा	दा	-	रदा	दा	-	रदा	दा	रा
०				३				x				२			

इस प्रकार की गतों की रचना सेनी घराने के वीणा वादकों और उनके पुत्रों व शिष्यों ने की है जिनमें उस्ताद बरकत उल्ला खॉ और उस्ताद मुश्ताक अली खॉ साहब आदि के नाम मुख्य है। इन वादकों ने इसी बंधान की गतों को 'असली रजाखानी' गत कहा है। इन गतों में बोल बराबर-बराबर है।

उदाहरण-३

रे	-	रेरे	म	-	मम	प	-	पप	नि	-	निनि	-	मम	प	नि
दा	-	रदा	दा	-	रदा	दा	-	रदा	दा	-	रदा	-	दिर	दा	रा

स	-	-	रेंरें	स	निनि	ध	प	म	पप	निनि	धध	प-	पम	-ग	रे-
दा	-	-	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा-

मम	गग	रे-	रेनि़	-नि़	स	-रेरे	नि़नि़	ध-	धम	-म	प-	-	निनि	सं	सं
दिर	दिर	दा-	रदा	-	दा	-दिर	दिर	दा	-रदा	-रदा	-रदा-	-	दिर	दा	रा

इस प्रकार के गतों की रचना सेनी घराने के रबाब वादकों, उन्के पुत्रों और शिष्यों ने की थी। जिनमें कोकभ खाँ, करामत उल्ला खॉ, उस्ताद अलाउद्दीन खॉ आदि वादकों के नाम प्राप्त होते हैं। इन घरानों के लोग इस गत प्रकार को भी 'असली रज़ाखानी' गत कहते है। उनका कहना है कि हमारे पूर्वजों ने तराना के आधार पर यह रचनाएँ की थी। इस प्रकार की गतें तीन या चार आवृत्ति से कम

नही होती थी। सम का स्थान छुपा रहता है और बोल का बंधान कुछ जटिल होता है। यह द्रुत लय में बजती है। इस कारण कुछ ग्रन्थकारों ने इन्हें द्रुत लय की भी संज्ञा दी है।

रजाखानी गतों के अन्तिम दो प्रकारों के विषय में यह तथ्य प्राप्त हुआ कि वीणा वादकों की गतों का आरम्भ 'दिर दिर' बोल से और रबाब वादकों की गतों में 'दा-र' बोल से गत प्रारम्भ करने की प्रथा रही है। अतः गत शैलियों के सम्बन्ध में यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि मसीतखानी और रजाखानी - इन्ही दो गत शैलियों को ऐतिहासिक मान्यता प्राप्त है जिनको प्रत्येक युग के सितार वादकों ने अपनी योग्यता, कल्पना और अनुभूतियों द्वारा नवीन स्वरावलियों से सजाकर अपना योगदान प्रस्तुत किया है।

मसीतखानी विधा से जुड़े कलाकारों का योगदान

इस विधा से सम्बद्ध कलाकारों में उस्ताद फिरोज खॉ, मसीत्खॉ, रहीम सेन, अमृत सेन और उनके वंशजों का योगदान सराहनीय है। इन वादक कलाकारों ने न केवल सितार की वादन पद्धति को परिष्कृत किया अपितु इस वाद्य की लोकप्रियता बढाने हेतु अथक परिश्रम किया। इनके द्वारा प्रचलित बाज को सेनिया बाज की संज्ञा प्राप्त हुई। इस घराने के अतिरिक्त गुलाम मोहम्मद खॉ, मुराद खाँ, गोसाई पन्नालाल, सुदर्शनाचार्य, नवाब प्यारे खॉ, पन्नालाल जैन, राम सेवक मिश्र, रामेश्वर पाठक, हरिचरण दास, जितेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, ढठीराव कृष्ण आष्टे वाले, आबिद हुसैन खाँ, हामिद हुसैन खॉ, गुलाम हुसैन खॉ, सांवलिया खाँ, बालकृष्ण मंसूरकर, कायम हुसैन, करीन हुसैन, नवाब हुसैन, आशिक अली खॉ, मोहन लाल, महबूब अली, मजीद खॉ, फुदन खॉ, बाबूराव कुलकर्णी, ननी गोपाल आदि कलाकारों ने इस विद्या से सम्बद्ध रहकर इस बाज को लोकप्रिय और वादनोपयोगी बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इन सभी कलांकारों ने आलाप-जोड़ और मसीतखानी गतों

का व्यवहार कर प्राचीन वादन पद्धति का प्रचार किया। इन समस्त कलाकारो ने साधारणतः अपने वादन में मसीतखानी गत के भराव में बोलो को विभिन्न लयकारियों में प्रस्तुत करने की प्रथा का पालन किया। जिसमें सभी कलाकारों ने अपनी कल्पना शक्ति को ही आधार बनाया।

उस्ताद अमीर खॉ के समय से उस्ताद इमदाद खॉ के समय तक वादक कलाकारों ने इस गत शैली के साथ फिक्रों और तोडों का प्रयोग तथा गत की सीधी-आडी जैसी प्रथा को चलाया। फलतः मसीतखानी गत के साथ प्राय. चौगुन और अठगुन लय के तोडों का व्यवहार भी आरम्भ हुआ तथा गत का मुखडा दुगुन लय में कहकर 'सम' पर आने की प्रथा प्रचार में आयी, जो कि ध्रुपद से प्रभावित थी। इस विद्या से सम्बद्ध कलाकारों ने ध्रुपद गायन के मूलभूत सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन किया और सितार वाद्य को जनसाधारण में सम्मानित स्थान दिलाया।

रज़ाखानी विद्या से सम्बद्ध कलाकारों का योगदान

रजाखानी गत शैली में मसीतखानी गत शैली जैसा गाम्भीर्य नही है परन्तु लयकारी का अनूठा माधुर्य इसकी विशेषता है। इस शैली के प्रमुख कलाकारों में मोहम्मद गुलाम रजा खॉ; काशी के पन्नालाल बाजपेयी; गुलाम मोहम्मद खॉ; सज्जाद मोहम्मद खॉ; नवाब हशमत जंग; नवाब अली नकी; कुतुबुद्दौला; बाबू इश्वरी प्रसाद; मुनीम जी; नबी बख्श; मुश्ताक़ अली खॉ; अभयाचरण चक्रवर्ती; इनायत खॉ; वहीद खॉ; अब्दुल ग़नी खॉ; युसुफ अली खाँ; इस्माइल खॉ; रहमत हुसैन खॉ; बशारत खॉ; मुन्ने खाँ; पी०आर० भट्टाचार्य; नज़ीर खॉ; गुलदीन खॉ; ग़फूर बख़्श; शिव बिहारी लाल मिश्र; उमाशकर शुक्ल; प्रकाश आष्टेवाले; किरण आष्टेवाले; श्याम द्विवेदी; विनायक राव व्यास; गुलाम रसूल; अब्दार रहीम; शफ़ीकुल्ला; जॉन गोग्स; प्रो० बनवारी लाल; प्रकाश चन्द्र सेन; भोला नाथ मलिक; बृजेश्वर नन्दी; मनोरंजन मुखर्जी; राम चक्रवर्ती; गोपाल चक्रवर्ती; भारती बोस; बसन्त लाल; भगवत शरण शर्मा; योगेश

चक्रवर्ती आदि नाम उल्लेखनीय है। इन समस्त कलाकारों में से जो वादक पूर्वी बाज से सम्बन्धित है जैसे पन्ना लाल वाजपेयी, नवाब हशमत जग, बाबू ईश्वरी प्रसाद, प्यारे नवाब, रहमत हुसैन, कुतुबुद्दौला, नबी बख्श, नवाब अली नकी खॉ आदि की गतें प्रायः एक या दो आवृत्ति से अधिक की नहीं होती है। इन कलाकारों की गतो में 'सम' और 'खाली' का स्थान भी बहुत स्पष्ट रहता है। इन वादकों ने अपने वादन में ठुमरी अंग पर आधारित आलाप के बाद जोड झाला और मध्य लय की गत का व्यवहार कर छोटे-छोटे स्वर-समूहों से गत की बढत करके तथा छोटी तिहाई के पश्चात् झाला बजाकर वादन समाप्त करने की रीति निभायी है। इस समय गायन मे ख्याल, ठुमरी तथा तबले का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था जिसका प्रभाव इस वादन शैली पर पडा।

उपरोक्त वादकों के अतिरिक्त रजाखानी गत विद्या से सम्बद्ध सेनीया वंश के कलाकार जैसे मुश्ताक अली खॉ; युसुफ खॉ; बरकतुल्ला खॉ; इस्माइल खॉ; सज्जाद मुहम्मद; नासिर अली; शफीकुल्ला खॉ; बाबू खॉ, हशमत अली खॉ; अख्तर खॉ (गुवहाटी); बरक़त अली सांवलिया; आबिद हुसैन खॉ आदि कलाकारों के वादन में आलाप, जोड़, झाला तथा ठोंक झाले तथा गतों की लम्बाई अधिक होती थी। कोई भी गत तीन आवृत्ति से कम नही होती। गतों में 'सम' के भाग को छुपाने की भी प्रथा थी। 'सम' के अतिरिक्त गत के बीच में भी कही पर ठहराव न होने के कारण तबलावादक को स्वयं 'सम' का आभास होना कठिन होता है। अनागत, आगत सम आदि इसके उदाहरण है। इन लोगों की गतों में द्रुत गति के बोल, जैसे – 'दिर दिर' या 'दा दा –रदा' का प्राधान्य रहता है। इन वादकों के भी दो वर्ग थे। कुछ वादक गत को तीन ताल की सातवी मात्रा से आरम्भ करते थे और इसी को 'असली रजाखानी' कहते थे। इस गत के वादकों में मुश्ताक अली खाँ, बरक़तुल्ला खाँ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। परन्तु दूसरा वर्ग ऐसा था जो रज़ाखानी गत को आरम्भ करने के लिए कोई स्थान निश्चित् करने के पक्ष में नही था। इस प्रकार के वादकों ने अपनी गतों को सम, खाली, दूसरी ताली, तीसरी ताली – सभी स्थानों से

आरम्भ कर गतों की रचनाएँ की हैं। इन वादकों ने 'दिर दिर' के साथ 'दा–र' बोल का अधिक प्रयोग किया है।

सितार वादक जो मसीतखानी और रजाखानी, दोनों शैलियों से समान रूप से सम्बद्ध रहे – उनके सितार सम्बन्धित कार्य

उस्ताद इमदाद खॉ के समय तक सितार वादकों में एक वर्ग था जो मात्र मसीतखानी बजाते थे और दूसरा वर्ग मात्र रजाखानी गत से सम्बद्ध थे। एक ही वादक द्वारा क्रमिक रूप से दोनों शैलियों को प्रस्तुत करने की प्रथा नही थी। ख्याल में जब विलम्बित और द्रुत की बन्दिशें गायी जाने लगीं तब इससे प्रभावित होकर सितार में भी क्रमशः विलम्बित व द्रुत गतों का बजना प्रारम्भ हो गया। उस्ताद इमदाद खॉ ने दोनों गत शैलियों को क्रमिक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह एक नवीन प्रयास था जिसका स्वागत हुआ और इस प्रकार का वादन प्रारम्भ हुआ। इस विद्या से सम्बद्ध कलाकारों में उस्ताद इमदाद खॉ; बरकतुल्ला खॉ; इनायत खॉ; गोकुल नाग; मुश्ताक़ अली खॉ, पं० रविशंकर; विलायत खॉ; निखिल बैनर्जी; अब्दुल हलीम जाफर खाँ; विमलेन्दु मुखर्जी तथा इनका शिष्य वर्ग है। इन वादकों ने सितार वादन में सर्वप्रथम आलाप, जोड, जोड–झाला ततूपश्चात् क्रमशः मसीतखानी व रजाखानी गतें बजाकर उसमें विभिन्न प्रकार की तानों के पश्चात् झाला बजाकर वादन प्रस्तुत करने की प्रथा का अनुसरण कर सितार वादन क्रिया को एक नवीन रूप प्रदान किया। प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय वादन क्रिया सिद्ध हुई और आजकल सभी वादक दोनों गत शैलियों का वादन करते हैं।

वर्तमान काल के सितार वादकों में सितार वाद्य को उन्नत अवस्था लोकप्रिय और वादनोपयोगी सिद्ध करने हेतु महत्वपूर्ण योगदान प० रविशंकर, निखिल बैनर्जी, उस्ताद विलायत खाँ का रहा है। इन्होंने रागदारी और गतकारी की गरिमा को बढ़ाते हुए बंगाल और अन्य प्रदेशों की लोक–धुनों को सितार में प्रस्तुत कर सितार

को जनसाधरण के निकट लाने का अभूतपूर्व प्रयास किया तथा विदेशों में अपनी कला प्रदर्शन कर सितारवादन की उच्च और सम्मानित मच प्रदान किया है। वर्तमान वादकों में श्री विमलेन्दु मुखर्जी और बुद्धादित्य मुखर्जी ने सितार में टप्पा गायन शैली का मिश्रण कर सितार में एक नए बाज की सृष्टि की। इन सभी प्रयोगों के द्वारा सितारवादन के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति आ गई।

मसीतखानी गतों का प्राचीन स्वरूप इस प्रकार है –

उदाहरण–१ : दरबारी

ससं	नि	सस	ध--नि	सरे
दिर	दा	दिर	दा--र	दारा

ग	गग	म	रे	स	--	स	-ग	-म	-मम	प	ध	मप	गम	रे
दा	दिर	दा	रा	दा	--	र	दा-	दा-	-रदा	दा	रा	दारा	दारा	दा

उदाहरण–२ : मारवा

निरेगमं	ग	रेरे	--निरे	-रे-
दारादारा	दा	दिर	--दादा	-दादा-

नि	म	ध	निनि	रे	गग	मं	-	मं	-	ध	नि	मं	गरे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	-	दा	-	र	दा	दा	दारा	दा

उदाहरण–३

नि	सस	सरेरे	निस
दा	दारा	दादिर	दारा

स	निनि	ध	प	म	पप	ध	प	म	मम	रे	स
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा

उपर्युक्त तीनों ही गतें मसीतखानी शैली की है परन्तु इनकी बन्दिश प्रत्येक कलाकार ने अपनी बुद्धि कौशल के आधार पर की है।

उदाहरण-३ में 'दा दिर दारा' के ही आधार पर गत की बन्दिश की गई है। लगभग इसी प्रकार की गतें वर्तमान में भी प्रचार में है।

रहीम सेन जी के समय मसीतखानी का स्वरूप

उदाहरण-१

गग	रे	सस	नि	रे
दिर	दा	दिर	दा	दा
	३			

ग	ग	ग	रेरे	ग	मम	प	म	ग	रे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
X				२				०		

उदाहरण-२ (इन्हीं स्वरो में प्रयुक्त बोलों में भिन्नता)

उदाहरण-३

तीनों ही गतें एक ही ढांचे की है केवल प्रयुक्त बोल का 'उलट फेर' करके रंजकता लाने का प्रयास किया गया है।

मियां अमृत सेन ने इसी गत में कुछ थोडा सा परिवर्तन कर गतों के माधुर्य में वृद्धि की है :-

उदाहरण-१

												दिर	दा	दिर	दा	रा
												दिर	दा	दिर	दा	रा
दा	रा	रा	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	दा	ग						
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	ग						

उदाहरण-२

												दिर	दा	दिर	दादिर	दारा
												दिर	दा	दिर	दा	रा
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	ग						
दा	दा	रा	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	दा	ग						

उदाहरण - दरबारी

								सस	नि	सस	ध	नि
								दिर	दा	दिर	दा	रा
									३			
ग	गग	म	रे	स-	स	स-	ग-	-मम	-पध	ध	नि	
दा	दिर	दा	रा	दा-	र	दा-	दा-	-रदा	-दारा	दा	रा	
मप	गम	रे										
दारा	दारा	रा										

उदाहरण - मारवा

										निरेगम	ग	रेरे	--निरे	-रे-
										दारा दारा	दा	दिर	--दारा	-दादा-
नि	मं	ध	निनि	रे	गग	मं	मं-धनि	म	गरे	स				
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	दा-दा	दा	दारा	दा				
X														

उदाहरण –३

								नि़	सस	स	रेरे	नि़स
								दा	दारा	दा	दिर	दारा

स	निनि	ध	प	म	पप	ध	प	म	मम	रे	स
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
X											

उपर्युक्त तीनों ही गतें मसीतखानी शैली की हैं परन्तु इनकी बन्दिश प्रत्येक कलाकार ने अपनी बुद्धि कौशल के आधार पर की है।

उदाहरण–३ में दा दिर दा रा के ही आधार पर गत की बन्दिश की गई है। लगभग इसी प्रकार की गतें वर्तमान में भी प्रचार में हैं।

उपरोक्त मसीतखानी गतों से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार से कलाकारों ने अपनी शैली तथा रूचि के अनुसार वादन शैली में परिवर्तन किए है। जिस प्रकार मसीतखानी शैली में परिवर्तन हुए इसी प्रकार रजाखानी शैली को भी सवारने के क्रमवार प्रयोग हुए।

प्रारम्भ में रजाखानी गत के अतिरिक्त 'पूर्वी बाज' का भी नाम प्राप्त हुआ था। इसका प्रमुख कारण था जिस गत शैली की कल्पना लखनऊ वालों ने की थी। उसके विकास में बनारस आदि पूरब के क्षेत्र में अनेक गुणियों का भी योगदान था। कालान्तर में यह गतें मध्य और द्रुत लय के नाम से प्रचार में आयीं और सभी रज़ाखानी (पूर्वी बाज) गतों को द्रुत गत ही कहा गया। शास्त्र की दृष्टि से सभी गतों को द्रुत कहना उचित नहीं है। पूर्वी बाज की गत और द्रुत गत में एक बहुत बडा अन्तर 'बोलों' के प्रयोग रहा है। इसी अन्तर के आधार पर इन गतों को भिन्न–भिन्न संज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। रजाखानी गतों का अन्तर उनके बोलों के आधार पर लिपि बद्ध किया गया है, यथा – '

पूर्वी बाज : गत काफी

प	–	प	ध	नि	ध	प	–	म	प	ग	रे	स	रेरे	ग	म
दा	–	दा	रा	दा	रा	दा	–	दा	ग	दा	रा	दा	ढिर	दा	रा
				२				०				३			

उदाहरण – पीलू :

इस गत में ठुमरी का आधार लेकर 'दा- रदा -र' बोलों से गत की बन्दिश की गई है।

स	–	–	रेरे	स	निनि	स	स	प	धध	म	प	–	निनि	स	स
दा	–	–	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	ढिर	दा	रा	–	दिर	दा	रा

मसीतखानी गतें पहले की अपेक्षा अब अधिक विलम्बित लय में बजायी जाती है। रजाखानी तथा मसीतखानी गतों के मूल ढॉचे में किसी में भी अधिक परिवर्तन नहीं आया है।

रजाखानी गत में बोलों के प्रयोग से प्रत्येक घराने ने अपनी कल्पना और अनुभूति का प्रयोग किया है।

रजाखानी गत के अन्तर्गत 'कम बोलों की गतें', 'अधिक बोलों की गतें', 'अनागत बॅधान की गतें', इस प्रकार गतों के अनेक स्वरूप प्रचार में थे। आज मध्यलय की तथा द्रुत लय की दो ही गतें अधिक प्रयोग में है।

*** *** ***

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

समय के साथ शास्त्रीय संगीत में आए परिवर्तन

किसी भी देश की सामाजिक तथा सास्कृतिक धरोहर का परिचायक उसके साहित्य व कला ही होते है। कला का चूँकि मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन से अटूट सम्बन्ध है व इस नैसर्गिक सम्बन्ध के कारण बदलती परिस्थितियों के साथ-साथ मनुष्य की परिवर्तित अभिरूचियों व भावनाओं के अनुरूप कला भी निरन्तर परिवर्तनशील रहती है। विभिन्न ललित कलाएँ जैसे सगीत, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि विभिन्न आर्थिक, सामाजिक व भावात्मक प्रभाव स्वरूप हृदय में पनपने लगती है। इसीलिए भावनाओं के अनुरूप कलाभिव्यक्ति में भी निरन्तर परिवर्तन आते रहना स्वाभाविक है।

संगीत कला का सीधा सम्बन्ध मानवीय भावनाओं के साथ है, अत. संगीत से सदैव पुरातनता को बनाए रखने की आशा करना अनुचित होगा। प्रजातन्त्री युग में राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का आना भी स्वाभाविक ही था जिससे समस्त मानव जीवन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। इन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप मानवीय भावनाओं का जो आधुनिकीकरण हुआ, उसके परिणामस्वरूप प्रतिक्रियाएँ संगीत में हुए बिना नही रह सकी। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत यद्यपि सदैव ही परिवर्तनशील रहा है, परन्तु आधुनिक परिवेश में यह देखना अनिवार्य हो जाता है कि आज के सगीत में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे है और किस दिशा की ओर जा रहे हैं। ये परिवर्तन मुख्यतः निम्नवत् है :-

(क) संगीत की शैली में परिवर्तन :

ऐतिहासिक दृष्टि से यदि सगीत की गतिविधियों का सिंहावलोकन करें, तो ज्ञात होता है कि प्राचीन और आधुनिक संगीत के स्वरूप में एक अन्तराल आ

गया है। आज ध्रुपद, धमार इत्यादि शैलियॉ बहुत कम प्रयोग में आती हैं जबकि एक समय में इन्ही का बोलबाला था।

प्राचीन समय में "प्रबन्ध गायन" प्रचार में था जिसमें अत्यन्त कठोर नियमों का पालन किया जाता था परन्तु कुछ समयोपरान्त नियमों में कुछ ढीलापन आया और 'ध्रुवपद' शैली का प्रादुर्भाव हुआ। ध्रुवपद आलाप प्रधान गायकी थी जिसमें स्थायी, अन्तरा, सचारी, आभोग आदि नियमों का पालन किया जाता था। गायन की भांति वादन के क्षेत्र में भी ध्रुवपद ही बजाए जाते थे और इन्ही ध्रुपद, धमार शैलियों के अनुकूल वीणा, पखावज इत्यादि वाद्य प्रचार में थे। इसी प्रकार सितार भी ध्रुपद के आधार पर बजता था तथा ध्रुपद के नियमों का ही अनुपालन किया जाता था।

तीन चार सौ वर्ष पूर्व भारतीय संगीत में ध्रुपद गायन का ही प्रचार था परन्तु परिस्थितिवश राग और ताल में भावाभिव्यक्ति की अधिक स्वतन्त्रता लिए खयाल गायन प्रचार में आया। वादन के क्षेत्र में भी सुरबहार, सुरसिंगार, रबाब, दिलरूबा इत्यादि प्राचीन वाद्यों की अपेक्षा सितार, सरोद, बांसुरी व शहनाई का बोलबाला रहा।

ध्रुवपद तथा खयाल शैली का विकास सगीत के स्वरपक्ष एव कलापक्ष के विकास का द्योतक है। ध्रुपद शैली की विशेषताओं को आत्मसात कर खयाल शैली में स्वर के जिन विभिन्न सूक्ष्म लालित्यमय प्रयोगों का प्रचलन हुआ वे निश्चय ही इससे पूर्व की ध्रुपद शैली में नही थे।[1] ध्रुपद में जहाँ गाम्भीर्य, राग शुद्धता, ताल, लय के चमत्कार व ओजपूर्ण स्वर प्रधान थे, वहॉ खयाल के अन्तर्गत मीड, मुर्की, गमकयुक्त एवं भावयुक्त आलाप, स्वरों की मधुरता एवं तान के विविध प्रयोग, लय के अति विलम्बित से होकर द्रुत एवं तराने के अतिद्रुत प्रयोगों द्वारा संगीत का कलापक्ष समृद्ध हुआ और गायकी के क्षेत्र में आए

---

[1] उमेश चन्द्र चौबे, खयाल शैली की लोकप्रियता : सगीत", 1977, पृष्ठ–5

परिवर्तनों का प्रभाव वादन के क्षेत्र में वीणा जैसे वाद्य जो कि प्रारम्भ में गायन का अनुसरण करता था, उस पर भी पडा।

आज स्थिति यह है कि सगीत में कलापक्ष के उत्तरोत्तर विकास ने अनेक उप-शास्त्रीय शैलियों को चुनौती स्वरूप पेश किया है क्योंकि शास्त्रीय शैलियों की स्वर प्रधानता का स्थान उप-शास्त्रीय शैलियों, जैसे ठुमरी, टप्पा इत्यादि जिनमें कलात्मक कल्पना के लिए भी अनन्त क्षेत्र हो, वह शैली रसिक श्रोताओं में कभी भी अप्रिय नही हो सकती। इसी कारण से वादन के क्षेत्र में मुख्य रूप से सितार पर धुन जो कि ठुमरी या टप्पा अग पर आधरित थे, अन्त में इसे अनिवार्यतः बजाया जाने लगा।

<u>शैली में परिवर्तनों की आवश्यकता तथा कारण</u> :

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सांगीतिक शैलियों में हो रहे निरन्तर परिवर्तन के अध्ययन के पश्चात् उनके कारणों पर विचार करें तो हम पाते हैं कि आज जनसाधारण में संगीत कला का पर्याप्त प्रचार होने से प्रत्येक व्यक्ति इसे सुनने व समझने के लिए आतुर तो हो उठा है परन्तु इस नये श्रोतावर्ग के प्रत्येक व्यक्ति में समुचित ज्ञान व सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अभाव के कारण, शास्त्रीय सगीत की पेचीदगियों को समझने का स्तर कायम नही हो पाया। फलस्वरूप कलाकारों को भी युगानुकूल अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ा और शास्त्रीय संगीत को जनसाधारण में बोधगम्य बनाने के लिए सरलीकरण की प्रवृत्ति अपनानी पड़ी।

सत्य तो यह है कि लोकप्रियता अर्जित कर रही प्रत्येक शैली की अपनी अलग विशेषता और इन्हीं विशेषताओं के कारण इनका अलग-अलग अस्तित्व व महत्व है परन्तु इसके साथ ही यह कहने से भी नही चूका जा सकता कि लोक संगीत से जन्म लेकर शास्त्राधारित 'शास्त्रीय संगीत' आज पुनः सरलता की ओर अग्रसर हो रहा है और गायन के क्षेत्र में उप-शास्त्रीय संगीत वर्ग सामने आ रहा

है एव लोकप्रिय हो रहा है। इसमें सन्देह नही कि इनसे एक बहुत बडा फायदा भी हुआ है और यह आज की जिन्दगी की तेज रफ्तार में शास्त्रीय सगीत सुनने का जहॉ समय व मौका नही रहा वहॉ आज उप-शास्त्रीय वर्ग से लोगों तक थोडा-बहुत शास्त्रीय सगीत तो पहुच ही रहा है।

आज यह पद्धति हमारे परम्परागत शास्त्रीय सगीत के लिए एक चुनौती बन गई है। शास्त्रीय व सुगम सगीत के एकीकरण के इस प्रयत्न में कही शास्त्रीय संगीत अपना परम्परागत सौन्दर्य खो न दे, ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है। यद्यपि संगीत स्वय में 'शास्त्रीय' अथवा 'सुगम' नही है। यह तो कलाकार की मनःस्थिति और सृजनात्मक प्रतिभा की कुछ स्वर सगतियों के जरिये अभिव्यक्ति है। इनमें स्वर वही होते है परन्तु फिर भी कुछ नियमों का अन्तर है। 'शास्त्रीय' शब्द ही जाहिर करता है कि वह शास्त्राधारित कुछ नियमों में बॅधा हुआ है। शास्त्रीय संगीत की शास्त्रीयता और सुगम सगीत की 'सुगमता' को बनाये रखने के लिए उन नियमों का पालन अनिवार्य है। इसी कारण आजकल विभिन्न विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी राग वादन के पश्चात् धुन बजाने का नियम बनाया गया है।

डॉ० परांजपे के शब्दों में, "शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बने रहने के लिए उसे अपनी ताजगी रखना आवश्यक है और इसके लिए यह जरूरी है कि युग की मांग के अनुसार नये-नये तत्वों एवं शैलियों को अपनाया जाए।"[1]

आज की प्रचलित अधिकांश उप-शास्त्रीय शैलियों का मूल आधार शास्त्रीय संगीत ही है। शास्त्रीय सगीत के आधार पर इनको तो भली-भांति गाया जा सकता है लेकिन इन्हें आधार मानकर शास्त्रीय संगीत की अवतारणा सम्भव नही। इसलिए जनरूचि का ध्यान रखकर आज शास्त्रीय संगीत का सरलीकरण करते रहना उचित नहीं होगा। आवश्यकता है, जनता के सम्मुख परम्परागत संगीत प्रस्तुत करके उनके स्तर को ऊँचा उठाने के साथ-साथ उनकी रूचि में परिवर्तन

[1] संगीत बोध : शरच्चन्द श्रीधर परांजपे, पृष्ठ-4

लाने की। शास्त्रीय सगीत को जनसाधारण में लोकप्रिय बनाने व युग-युगीन शास्त्रीय सगीत की परम्परा को कायम रखने के लिए आज हमारे संगीत को पुनः गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। गायन के क्षेत्र में आए परिवर्तनों का सीधा प्रभाव वादन में पडता है।

(ख) संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति :

शास्त्रीय सगीत की शैलियों में परिवर्तन के साथ-साथ आज परिवर्तित सामाजिक ढांचे के अनुरूप प्रचलित शैलियों की पेशकश में भी परिवर्तन आना अवश्यम्भावी है। 'संक्षेपीकरण' आज की मुख्य प्रवृत्ति बनती जा रही है।

'सक्षेपीकरण' का भाव है 'सक्षेप करने की प्रवृत्ति' अर्थात् कम समय में श्रोताओं को अधिकाधिक आनन्दविभोर करने की प्रवृत्ति। प्राचीन समय में राग के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए प्रारम्भ में घण्टों आलाप किया जाता था जिसके लिए तन्त्रवाद्यों में सुरबहार का प्रयोग किया जाता था। ततुपश्चात् सितार पर राग बजाया जाता था। इसके विपरीत आलाप की अपेक्षा सीमित समय में अधिक से अधिक प्रकार प्रस्तुत करना आज की विशेषता बन गई है। राग की बन्दिश के प्राचीन स्थायी, अन्तरा, संचारी व आभोग - चार भागों की जगह आज खयाल में स्थायी व अन्तरा ही शेष रह गये हैं। संक्षेपीकरण की वह प्रवृत्ति आज इतनी तीव्र होती जा रही है कि केवल स्थायी बजाने के पश्चात् ही विस्तार आरम्भ हो जाता है। विशेषतः विलम्बित खयालों में प्रायः आज के कलाकार ऐसा ही करते पाये गए हैं। कुछ कलाकारों की बन्दिश को अधिक महत्व न देने अथवा गत न होने की कमजोरी भी जाहिर होती है। कलाकारों की इस प्रवृत्ति से श्रोता गत के पूर्ण सौन्दर्य को अनुभव करने से वंचित रह जाते हैं और जिससे कई बार राग का भावरूप अधिक निखर कर सामने नही आ पाता है। "बन्दिश राग की आकृति का दर्पण होता है जिसमें राग के स्वरूप

और चलन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।"[1] और फिर विभिन्न बन्दिशें राग के स्वरूप को विभिन्न प्रकार से व्यक्त करती है। एक ही बन्दिश का केवल मुखडा लेकर बढ़त करते समय राग की बढत एक ही ढंग की होगी और विस्तार का दायरा भी सीमित रह जाता है परन्तु यदि विभिन्न बन्दिशों के भाव को ध्यान में रखकर विस्तार किया जाए तो बढत का ढंग प्रत्येक बन्दिश के अनुरूप भिन्न होगा। स्पष्ट है कि राग का विस्तार कलाकार की मनःस्थिति और बन्दिश के ढांचे के अनुसार भिन्न होता है। यदि राग-विस्तार बन्दिश के ढाचे को ध्यान में रखकर किया जाए तो निश्चय ही एक राग के ही विभिन्न स्वरूप पेश किए जा सकते है। पुराने संगीतज्ञों की सांगीतिक समृध्दि का कारण यही था कि उनके पास बन्दिशों का भारी सग्रह रहता था, जिससे राग विस्तार करते समय उनकी सृजनात्मक प्रतिभा को बल मिलता था और वह घण्टों तक बिना किसी भय से विस्तार करने में सक्षम थे परन्तु वर्तमान संक्षेपीकरण की प्रवृत्ति के कारण वहॉ श्रोतावर्ग पूर्ण सौन्दर्य का आनन्द लेने से वचित रह जाते हैं, वहॉ कलाकारों को भी सीमित प्रतिभा का ही आभास होता है। पहले के कलाकार बिलासखानी तोड़ी जैसे रागों में तानों का प्रयोग नहीं के बराबर करते थे पर आजकल के वादक ऐसे रागों में भी अन्य रागों के अनुरूप ही तोडों का प्रयोग करते हैं।

इन प्रवृत्तियों ने निश्चय ही सगीत साधना पर बल दिया है। स्वरों की गहराइयों में उतरने की अपेक्षा 'तैयारी' दिखाने की धुन में तानों व झालों की साधना की जाती है। सितार अथवा सरोद बजाने वाला एक साधारण कलाकार भी अच्छी तरह राग का विस्तार करके राग का स्वरूप भले ही स्पष्ट न कर पाए, परन्तु झाला खूब द्रुत गति में बजाकर तबला वादकों के साथ लड़न्त करने में शान समझता है। प्रत्येक कलाकार विलम्बित से लेकर अति द्रुत लय के प्रयोगों द्वारा अपने श्रोताओं से यश अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।[2]

---

[1] बन्दिश के सिद्धान्त और उसकी रचना प्रक्रिया . मधुरलता भटनागर, सगीत दिसम्बर 1980, पृष्ठ-5
[2] शाध प्रबन्ध : सुश्री शैलजा राणा

गायक भी तानों व तरानों को अतिद्रुत लय में गाकर तथा 'तैयारी' दिखाकर यशोगान करवाने में भी पीछे नही रहते। प० ओंकार नाथ जी के शब्दों में, "आजकल सामान्य परिपाटी ऐसी बन गई है कि तैयारी दिखाने के लिए प्रत्येक राग में तान-प्रयोग आवश्यक सा माना जाता है।"[1] तान भी यद्यपि राग-विस्तार का एक अग है परन्तु यह राग का 'कलापक्ष' है जो वैचित्र्य, चमत्कार एवं बुद्धि से सम्बन्धित है। हृदय की भाषा तो आलाप में ही निहित है। आलाप की उपेक्षा कर तानों की तैयारी अथवा लडन्त द्वारा प्रभाव पैदा करके कला को दीर्घजीवी नही बनाया जा सकता। चिरंजीवी कला के लिए केवल कलात्मकता नही, भावात्मकता अनिवार्य पक्ष है जो तैयारी की नही अपितु आलापचारी की साधना से पैदा किया जा सकता है। कला का मूल लक्ष्य भी सौन्दर्यानुभूति अथवा आनन्दानुभूति है। "रजयति इति राग." की परिभाषा के अनुसार भी राग का मूल लक्ष्य "रजकता" अथवा "आनन्द" प्रदान करना है। बुद्धि को प्रभावित करने वाले चमत्कारों का प्रभाव अल्पकालिक होता है परन्तु हृदयस्पर्शी स्वरों द्वारा विशुद्ध आनन्दानुभूति चिरकालिक होती है।

इसी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए आचार्य वृहस्पति जी लिखते हैं, "कण्ठ की तैयारी इन लोगों का लक्ष्य हो गया है, राग का स्वरूप भले ही गम्भीर हो परन्तु उसे मार-मार कर द्रुत लय तक पहुँचा देना ज्ञान की बात समझी गई है। मन्द गति से चलने वाली अनेक हंसनियाँ इन कलाकारों के शासन में कबूतरियाँ बनकर उड़ने लग गई थी।"[2]

उपर्युक्त आचार्य जी के कथन पर यदि निष्पक्षता से विचार किया जाए तो ऐसा मालूम होगा कि उनका यह दृष्टिकोण आज सत्य का निरूपण करता है। "योग:चित्त वृत्ति निरोधः" - योग की इस परिभाषा के अनुसार योग एक ध्यान की क्रिया का नाम है जिसके लिए शरीर का स्वस्थ होना अनिवार्य है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए अपनायी गई योगासनों की क्रिया में अब यदि कोई मूल लक्ष्य को

---

[1] संगीतांजली : प० ओंकार नाथ ठाकुर, षष्ठ भाग, पृष्ठ-34

[2] आचार्य वृहस्पति

भूलकर योगासनों को ही योग समझ ले और उनका अभ्यास व प्रदर्शन करने लगे तो यह योगियों की श्रेणी में मान्यता प्राप्त नही कर सकता।

(घ) अलंकरण की परम्परागत लोकप्रियता तथा आज के युग में उनका स्थान :

अलकरण का भाव है 'अलकृत करना' अर्थात् गायन-वादन को सुसज्जित ढंग से पेश करना। सगीत चूकि मच प्रदर्शन की कला है, इसलिए सदैव ही बन-सवार कर इसे पेश करने के लिए कलाकार प्रयत्नशील रहे है। प्राचीन काल में राग की शुद्धता पर कलाकारों का ध्यान अधिक केन्द्रित रहता था। राग की शुद्धता का अनिवार्यतः पालन करते हुए राग के भाव व रस के अनुरूप जिन अलंकरणों का प्रयोग उचित समझा जाता था, किया जाता था। मात्र आकर्षित करने के लिए अलंकरणों की भरमार कलाकारों के साथ श्रोता वर्ग में भी लोकप्रिय नही थी परन्तु आज सीमित समय में श्रोताओं पर वांछित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अलकरणों के प्रयोग करने की प्रवृत्ति कलाकारों में पनप रही है। समय की बढती रफ्तार के साथ आज की तैयार चपल, लयप्रधान गायकी में विलम्बित मीड व स्वरों को आन्दोलित करने वाली धीमी तकनीक की अपेक्षा आज किसी भी तेज तकनीक का अपनाया जाना युगानुकूल है। यद्यपि कोई भी तेज तकनीक भी उतनी ही कष्टसाध्य होती है, परन्तु फिर भी उनका श्रोताओं पर उतना दीर्घजीवी प्रभाव नही पड़ता।

आज राग की शुद्धता की अपेक्षा सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यद्यपि राग के शुद्ध रूप की सही ढंग से अवतारणा भी 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की ही प्राप्ति है किन्तु आज अन्य समप्राकृतिक रागों की झलक तनिक विवादी स्वरों का प्रयोग करना साधारण सी बात हो गई है और यह क्रिया वादन के क्षेत्र में भी लागू होती है। जिन्दगी की ,अत्यधिक व्यस्तता के कारण हर कोई आज वर्षो में मंजे हुए एक-एक स्वर घंटो आनन्द लेने की अपेक्षा थोड़े समय में ही मधुर आवाज व अलंकरणों के प्रयोग द्वारा कुछ ही स्वरों के लगाव से जनता आनन्द विभोर हो जाती है।

(ङ) नव-रागों का निर्माण .

आज सगीत क्षेत्र में "नव-निर्माण" प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट हो रही है। कुछ कलाकार जहा परम्परागत शैली को नवीन दिशा देने में जुटे हुए है वहा नव-रागों का निर्माण भी इस युग की अन्य विशेषता बन गई है।

शास्त्रीय संगीत के इतिहास में नए रागों के सृजन की प्रक्रिया यद्यपि प्रत्येक काल मे चलती रही है और यह भी सत्य है कि जिन रागो को आज हम परम्परागत मानते है उनका भी उद्गम कभी अवश्य हुआ होगा परन्तु वर्तमान युग मे यह क्रिया तनिक तीव्रतर है, क्योंकि नवरागों का निर्माण आज कलाकारों की कला-कुशलता का प्रतीक समझा जाने लगा है। पहले कलाकार जहॉ परम्परागत रागों की गहराइयों की खोज कर उनकी जडें मजबूत करने के लिए ही प्रयत्नशील रहते थे, वहॉ आज प्रत्येक कलाकार नया राग रचकर ही मच पर पेश करना चाहता है। एक-डेढ शती पूर्व प्रचलित राग सोरठ, दीपक, गाधारी, जलधर इत्यादि के नाम आज अपरिचित से लगते है। यहॉ तक कि कुछ ही दशकों पूर्व प्रचलित पूर्वी राग जिसको भातखण्डे जी ने आश्रय रागों में मान्यता दी थी, आज उतना प्रचार में नही है। 'पूर्वी' की अपेक्षा 'पूरिया धनाश्री' आज अधिक प्रचलित है। महान कलाकार तो क्या संगीत सभाओं में आज युवक कलाकार व विद्यार्थी वर्ग भी प्रतियोगिताओं में हमीर, कामोद, छायानट, जयजैवन्ती, बहार इत्यादि प्राचीन रागों की अपेक्षा कलावती, जोगकौंस, अहीर भैरव, पूरिया, कल्याण, हंसध्वनि इत्यादि अधिक गाते बजाते देखे गये हैं। सम्भव है नवीनीकरण की इस प्रक्रिया में आज प्रचलित यमन, पूरिया इत्यादि भी कभी अन्धकार में खो जाएॅ।

नवनिर्मित रागों के अध्ययन से पूर्वप्रचलित रागों की तरफ यदि ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि आज एक तो वे राग प्रचार में पाए जाते हैं जिन्हें हम 'परम्परागत' कहते हैं अथवा जिनका नाम तथा विवरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध

है, जैसे, यमन, भैरव, मालकौस, श्री, तोडी इत्यादि परन्तु इनके साथ ही नवराग निर्माण के भी कई आधार है जो निम्नवत् है।

कर्नाटकी सगीत पद्धति में पाये जाने वाले अनेक राग आज उत्तर भारतीय सगीत में प्रचलित करके नवीनीकरण हो रहा है जैसे किरवानी, वाचस्पति, हेमवती, नट-भैरवी, आभोगी, कम्बोजी, हसध्वनि, चारूकेशी इत्यादि। ये अब उत्तर भारतीय संगीत में भी पाए जाते है। यद्यपि ये उत्तर भारतीय पद्धति में कुछ राग नियमों से अपवाद स्वरूप है जैसे कि भातखण्डे जी के प्रचलित १० थाटों के दायरे में ये नही आ पाते, परन्तु फिर भी इनका प्रचार बढ रहा है। हाल ही में सरोदवादक अमजद अली खॉ ने कर्नाटकी 'चारूकेशी' राग को उत्तर भारतीय 'कान्हड़ा' के रूप में बाधकर एक श्रुति-मधुर राग बनाया है।[1] सुप्रसिद्ध सितारवादक प० रविशंकर ने कई कर्नाटकी रागों को उत्तर भारतीय पद्धति में खपा लिया है जिसका उदाहरण उनके द्वारा बजाया 'मलयमारूतम्' है।[2]

अधिकतर नए रागों का निर्माण दो-तीन रागों के मिश्रण से हो रहा है। यह तकनीक किसी के लिए भी अनभिज्ञ नही है। इसके अन्तर्गत किन्ही भी दो या तीन रागों के उत्तरांग या पूर्वाग में मिश्रण करके नव रचना की जाती है, जैसे - बसन्त बहार, ललिता गौरी, जोगकौस, नट-भैरव इत्यादि। पं० रविशंकर द्वारा रचित अहीर ललित, तिलक श्याम इत्यादि भी इसी वर्ग में रखे जा सकते हैं। महान सरोदवादक मरहूम उस्ताद हाफिज अली खॉ के साध्यकालीन राग 'संचयकारिणी' में श्री, पूरिया, धनाश्री तथा ललिता गौरी का मिश्रण है।[2] पं० रविशंकर जी के परमेश्वरी में बागेश्री, अहीर भैरव, बिलासखानी और भैरवी (शुद्ध) का मिश्रण है।[3]

दो-तीन रागों का मिश्रण कर उन्हें नया नाम देने की प्रक्रिया आज खूब प्रचलित है परन्तु किन्ही भी दो-तीन रागों का मिश्रण इस बखूबी से होना चाहिए

[1&2] कुमार गन्धर्व अमीक हनफी, पृष्ठ-36
[2] उस्ताद हाफिज अली खाँ, संगीत, सितम्बर 1973, पृष्ठ-60
[3] भगवतशरण शर्मा . 'पण्डित रविशंकर और उनके कुछ राग' : संगीत, अप्रैल 1970, पृष्ठ-34

कि उनकी अपनी एक अलग सी पहचान बन जाए। इसी तरह कुमार गन्धर्व द्वारा रचित नव राग 'सचारी' जो कि एक मिश्रित राग है, की आलोचना करते हुए डॉ० चेतनकर्नानी लिखते है – "कुमार गन्धर्व का एक राग 'संचारी' है जो कि राग देस, श्याम कल्याण और जयजयवन्ती का अजीबो-गरीब मिश्रण है। इस राग में उन्होंने दोनों गान्धार, दोनों मध्यम, दोनो निषाद लगाए है। इसमें सन्देह नही कि मध्य सप्तक के कई स्थलों पर जहॉ इन समस्त स्वरों का उपयोग हुआ है, वह ध्वनि के कुछ अद्‌भुत और प्रभावशाली रूपों की सफल अवतारणा कर सके हैं किन्तु उनके साथ दिक्कत यह है कि वह मन्द्र सप्तक में राग की विस्तार करने की समस्या से कतरा जाते हैं क्योंकि वहॉ वे स्वरों का जैसा जटिल बुनावट वाला इस्तेमाल चाहिए वैसा कर पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। इसी तरह जब वे अपनी रचना के द्रुत पर पहुँचते हैं तो एक सूक्ष्म यौगिक राग के आविष्कारक होने की बात उनमें निभती नही और कुल मिलाकर देस का एक उलझा हुआ रूप ही वे वहॉ पेश कर पाते है।"[1]

नव-निर्मित मिश्रित रागों में मात्र दो-तीन रागों का मिश्रण एक नवीन नाम में ही वृद्धि करके इस बखूबी से मिश्रण होना चाहिए कि वह अपना एक नया पहचान कायम कर सके और साथ ही नवीन परम्पराओं को विकसित करने में सहायक हो। किसी राग के पूर्वाग के स्थान उत्तरांग और उत्तरांग के स्थान पर पूर्वांग को प्रबल कर देने से तथा मूर्च्छना पद्धति के सिद्धान्तों से भी नवीन रागों की कल्पना सम्भव है और अनेक नवीन रागों का उद्‌भव इसी मूर्च्छना पद्धति के फलस्वरूप हुआ है। पं० दिलीपचन्द्र बेदी जी द्वारा रचित राग 'वेदी की ललित' इसका उदाहरण है, जो पूरिया कल्याण के धैवत को षडज मानकर बनाया गया है।[2]

---

[1] सृजनशीलता और शास्त्रीय सगीत – कुमार गन्धर्व : अमीक हनफी, पृष्ठ-३८
[2] Hindustani Music in the 20th Century Wim Van Der Meer, Page-183

सुप्रसिद्ध सितारवादक प० रविशकर जी ने चार नवीन राग कामेश्वरी, गगेश्वरी, रगेश्वरी, परमेश्वरी की रचना इसी मूर्च्छना पद्धति के आधार पर की है।

पण्डित जी ने सरस्वती राग जिसमें प ध सं, नि ध प, सं नि ध प का अंग प्रबल है व उत्तरांग प्रधान है। इसे पूर्वांग प्रधान करके एक नवीन राग की रचना की। इसमें ऋषभ को वादी व पचम को संवादी बनाया और इसका नाम 'कामेश्वरी' रखा।

कामेश्वरी के ही 'रे म प ध नि सं रें' का स्वरूप 'स ग म प ध नि स' करके उसमें मध्यम को वादी करके इसका नामकरण 'गंगेश्वरी' किया।

गंगेश्वरी के ऋषभ को प्रारम्भिक स्वर मानकर उसके 'रे ग म प नि सं रें' को 'स रे ग म ध नि सं' बनाकर बजाने से इसमें बागेश्री, अहीर-भैरव, बिलासखानी और भैरवी (शुद्ध) का मिश्रण स्वतः ही हो गया। उसमें वादी 'मध्यम' और संवादी षडज रखकर उनका नामकरण 'परमेश्वरी' किया।[1]

उपरोक्त चारों रागों की मूर्च्छना पद्धति के अनुसार हम इस प्रकार लिख सकते है :-

१. कामेश्वरी – स रे म प ध नि स
२. गंगेश्वरी – स ग म प ध नि स
३. रंगेश्वरी – स रे ग म प नि स
४. परमेश्वरी – स रे ग म ध नि स

इसी तरह कुछ रागों में कुछ ही स्वरों को परस्पर स्थानान्तरित कर जैसे कोमल धैवत व शुद्ध निषाद की जगह शुद्ध धैवत व कोमल निषाद का प्रयोग करके भी नवीन रागों का निर्माण हो जाता है 'अहीर-भैरव' राग इसका सुन्दर उदाहरण है जिसका निर्माण भैरव राग के कोमल 'ध' व शुद्ध 'नि' के स्थान पर

शुद्ध 'ध' और कोमल 'नि' का प्रयोग करके हुआ है। 'अहीर तोडी' व 'अहीर ललित' राग भी इसी तरह बनाए गए है। 'अहीर ललित' में केवल कुछ ही स्वरों को नही बल्कि स्वरों की तरतीब भी बदल दी गई है।[2] 'अहीर ललित' के आविष्कारक पण्डित रविशकर को माना जाता है परन्तु वी०जी० भट्ट का कथन है कि "इस राग का निर्माण बहुत पहले प० ओंकारनाथ ठाकुर जी द्वारा 'परवेन्द्रना मध्यमा' नाम से हुआ जो कि भैरव की तरतीब को बदलकर बनाया गया था।"[3]

इन रागों के अतिरिक्त आज लोक धुनों पर आधारित भी रागों का निर्माण हो रहा है। ऐतिहासिक सर्वेक्षण से पता चलता है कि पहाडी, पीलू जैसे अनेक राग मूलतः लोकधुनें ही थी। आज भी कुमार गन्धर्व लोकधुनों के आधार पर ही धुन एवं रागों के निर्माण में लगे हुए है। कुमार गन्धर्व के शब्दों में, "मैंने जो यह नवीन राग बनाए, उसमें स्वतः मैने कुछ नही किया। जो है, उसका परिष्कृत रूप मैंने प्रस्तुत किया है। 'मालवती' ही लीजिए। 'लगन गन्धार' लीजिए, 'संचारी' लीजिए। मूल है उसका परिष्कृत रूप अर्थात् यह राग इन्हें पॉलिश किया हुआ मैं मानूंगा। मैंने तो सिर्फ उनका संस्कार किया, उनका बौद्धिक विकास किया और उन्हें बसाया। प्रकृति में कोई भी वस्तु पूर्ण नही मिलती। जो कुछ भी होता है वह अधूरा होता है। उसे हमें पूर्ण करना होता है। प्रकृति में आपको सोना शुद्ध स्वरूप में कभी नही मिलता। शुद्ध रूप में मिलता तो कितना आसान होता परन्तु ऐसा नही है, वह तो मिट्टी से निकाला जाता है और स्वच्छ किया जाता है। तरह-तरह की मशीनरी है उसके शुद्धीकरण के लिए, और भी हजारों विधियाँ हैं। ठीक उसी तरह रागों के मूलस्वरूप की स्थिति है। उनका संस्कार करना होता है। एक बार राग संस्कार हो जाने के पश्चात् उसके

---

[1] भगवतशरण शर्मा · पण्डित रविशकर और उनके राग, संगीत – अप्रैल 1970, पृष्ठ-4
[2] Wim Van Der Meer 'Hindustani Music in the 20th Century'
[3] वी0जी0 भट्ट – 'भावरगलहरी' भाग-2, पृष्ठ-27

प्रकटीकरण की ताकत बढती है। इस तरह नव-रागों के निर्माण के लिए कुछ अन्य 'आधार' भी माने जा सकते हैं और यह सम्भव भी है अनेक कलाकारों ने किसी अन्य आधार पर नवीन निर्माण करने में अपना योगदान दिया हो, जो मेरी तुच्छ बुद्धि से परे है।"[1]

नए रागों की व्यापकता :

नवीन रागों का नाम आज लिया जा सकता है जो एक शती पूर्व प्रचार में नही थे, जैसे - हेम बिहाग, मदनमजरी, माझ खमाज (उ० अलाउद्दीन खॉ), बसन्त कुसुम (उ० हाफिज अली खॉ), सजारी, ललित श्याम, बैरागी, रसिया (प० रविशकर), चन्द्रनन्दन (अली अकबर खॉ), लग्न गन्धार, मालवती, गांधी मल्हार (कुमार गन्धर्व), कौशिकी रंजनी (चूडानन्द नागरकर), कुसुमी कल्याण (परवीन सुल्ताना), सुहाग भैरव, किरण रजनी, हरिप्रिय, श्यामश्री (अमजद अली खॉ), जोग-तोडी (डॉ० लालमणि मिश्र), चन्द्रप्रभा (नियाज अहमद, फैयाज अहमद), मध्यमी कल्पना, चतुर्मुखी (डॉ० मुनीश्वर दयाल), भंखारी, सरस्वती सारंग, चन्द्रश्वरी, पुष्पावती, शारंग कौंस, धनाकोनी कल्याण, शिव आभोगी, इन्दिरा कल्याण इत्यादि अनेक नाम हैं।

इनमें से कुछ राग आज प्रचार में आ रहे हैं, उदाहरण स्वरूप प्रो० देवधर का राग चन्द्रकौस आज वादकों में पर्याप्त लोकप्रिय है।[2] परन्तु अन्य रागों में से कितने राग कुछ समयोपरान्त अपना वांछित स्थान बना पायेंगे या नही यह तो समय ही बताएगा। उपरोक्त विवेचन के पश्चात् इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आज अनेक नये रागों का निर्माण महान् कलाकारों और अधिकतर वादक कलाकारों द्वारा हो रहा है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे राग ही अस्तित्व में रह पायेंगे जिनमें हृदय को द्रवित करने की क्षमता होगी। केवल बुद्धि-प्रधान अथवा चमत्कार-प्रधान राग दीर्घजीवी नही हो सकते। "प्रयत्न का परिणाम न होकर जो

[1] "कुमार गन्धर्व से एक भेंट" - संगीत, अगस्त 1967
[2] Wim Van Der Meer Hindustani Music in the 20th Century, Page 181

राग साहज रूप में ही निर्मित हो जाएँ वह राग स्वाभाविक रूप से रजकना के गुण के परिपूर्ण रहता है।[1]

कुछ रूढीवादी कलाकार नव-रागों के निर्माण के पक्ष में नही है। नव-रागों का निर्माण बुरा नही है। इससे निश्चित ही शास्त्रीय सगीत मे अभिव्यक्ति की सम्भावनाएँ बढ रही है और साथ ही संगीत भण्डार में भी वृध्दि हो रही है किन्तु नये रागों के निर्माण में शास्त्रीयता, रजकता व मौलिकता का ध्यान रखना आवश्यक है। ऐसा न हो कि ऐसे नव-निर्मित रागों से गुण की अपेक्षा गणना की ही बढोत्तरी होती रहे। आचार्य वृहस्पति के शब्दो में, "रागों की सख्या बढ रही हैं और साथ ही सगीत भण्डार में भी वृध्दि हो रही है किन्तु नये रागों के निर्माण में शास्त्रीयता, रजकता व मौलिकता का ध्यान रखना आवश्यक है।" ऐसा न हो कि ऐसे नव-निर्मित रागों से गुण की अपेक्षा गणना की ही बढोत्तरी होती रहे। आचार्य वृहस्पति के शब्दों में, "जिन रागो को आज परम्परागत कहा जाता है वे भी कभी न कभी नये कहलाते होंगे। किसी भी स्वर सन्निवेश में यदि 'रागत्व' है तो वह राग तो है ही। राग का प्रधान प्रयोजन 'रंजन' है। यदि नये राग 'रंजक' हैं तो उनका स्वागत ही होना चाहिए।

जो कलाकार कट्टरपंथी धारणाओं को लेकर नव-निर्माण का विरोध करते हैं उन्हें बताना होगा कि शास्त्रीयता का सम्बन्ध भले ही 'परम्परा' से है परन्तु परम्परा का अर्थ 'रूढ़ीवादिता' या 'हठवादिता' नही है। इसके लिए 'शास्त्रीयता' के सही अर्थ को समझना होगा। राग के केवल जड़ नियमों का ढांचा मानने की प्रवृत्ति से मुक्त होना पड़ेगा।[2]

---

[1] नव-राग निर्मित (संगीत सगोष्ठी), सगीत, जून 1983, पृष्ठ-59
[2] 'सम्पादकीय' - संगीत, नवम्बर 1981, पृष्ठ-3

तन्त्रीवाद्य सितार में प्रयुक्त होने वाले कुछ बन्दिशें लिपिबद्ध की जा रही हैं, जिनमें कई बन्दिशें हमारे गुरू एवं शोध निदेशक डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी की रचना है। अन्य बन्दिशों का संकलन निर्दिष्ट किया जा रहा है। अन्य बन्दिशों में तन्त्र अंग और गायकी अंग के आधार पर आधुनिक समय में जो शैलीगत एवं परम्परागत परिवर्तन हुए हैं और जहाँ परम्परा का निर्वहन भी किया जा रहा है, इन बन्दिशों में ऐसा देखने को मिलता है।

बन्दिशें

भैरवी - रज़ाखानी गत, तीनताल

स्थायी :

स	गग	रे	ग	स	रेरे	नि	स	ग	ग	रे	स	नि	सस	ध	नि
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
ग	-	गग	पप	प	धध	म	प	नि	नि	ध	प	म	पप	ग	म
दा	-	रदा	दारा	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
ध	-प	-प	म	म	पप	ग	म	म	गग	रे	स	नि	सस	ध	नि
दा	-दा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			

अन्तरा :

ध	प	गग	मम	ध-	धनि	-नि	सं	सं	गंगं	रें	गं	मं	-ग	-रें	सं
दा	रा	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	-दा	-र	दा
०				३				x				२			
मं	गंगं	रें	सं	नि	संसं	निध	प	नि	ध	-ध	प	म	पप	ग	म
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			
ध	-	प-	पम	ग	रेरे	स	नि								
दा	-दा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा								
०				३				x							

गुर्जरी तोड़ी - रज़ाखानी गत, तीनताल

स्थायी :

ध	म	ध	<	म	ग	म	<	ग	रे	ग	स	-स	रे	ग	म
दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	ग	-र	दा	र	दा
x				२				०				३			
ध	<	<	नि	ध	मम	ध	नि	स	निनि	धध	मम	ग-	गरे	-रे	स
दा	ऽ	ऽ	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा
x				२				०				३			
ध	ऽ	ऽ	नि	ध	मम	ध	नि	स	रेंरें	गंग	रेंरे	सं-	सनि	-नि	ध
दा	ऽ	ऽ	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा
x				२				०				३			
ग	-	रें-	रेसं	नि	-	ध-	धम	ग	-	रे-	रेस	ऽ	रे	ग	म
दा	-	दा-	रदा	दा	-	दा-	रदा	दा	-	दा-	रदा	ऽ	दा	रा	दा
x				२				०				३			

अन्तरा :

ग	गग	गग	म	-म	ग	मम	धध	सं-	ससं	-सं	स	नि	रेंरें	सं	सं
दा	दिर	दिर	दा	-र	दा	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			
ध	गंगं	गंगं	रें	-सं	सं	नि	ध	सं	-	सनि	-निध	म	ग	मम	धध
दा	दिर	दिर	दा	-र	दा	दा	रा	दा	-	रदा	-रदा	दा	रा	दिर	दिर
०				३				x				२			
म	-	मग	गरे	स	रे	ग	म								
दा	-	रदा	रदा	दा	रा	दा	रा								
०				३				x							

श्याम कल्याण -रज़ाखानी गत, तीनताल

स्थायी :

-	धध	मंमं	पप	ग-	गम	-म	रे	स	रेरे	नि	स	रे	ऽ	मं	ऽ
ऽ	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
२				०				३				x			

प	रेरे	मं	प	नि	संसं	रेंरें	संस	नि-	निध	-	धप	मंप	गम	रेस	रेमं
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा	दिर	दिर	दिर	दिर
२				०				३				x			

प-
दाऽ
२

अन्तरा :

				मं	पप	पप	स	-स	सं	नि	सं	रे	मंमं	रेंरें	संसं
				दा	दिर	दिर	दा	ऽर	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर
				०				३				x			

नि-	निध	-ध	प-	स	रेंरे	सं	नि	ध	पप	मं	प	मंप	गम	रेस	रेमं
दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर
२				०				३				x			

प-
दाऽ

वृन्दावनी सारंग – रज़ाखानी गत, तीनताल

स्थायी :

								निनि	पनि	पम	रेग्म	निग्म	रे	ऽ	रे	स
								दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दा	ऽ	दा	ग
									३				x			

रे	मम	प	म	प	नि	सं	निनि	पनि	पम	रेस					
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर					
२				०				३				x			

								निस	रे	मम	रे	म	प	मम	प	नि
								दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
									३				x			

म	पप	निनि	संसं	रें-	रेंनि	-	निसं	संरें	संनि	पनि	पम	पम	रेम	रेस	निस
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
२				०				३				x			

रेम	पनि	सं-		
दिर	दिर	दाऽ		
२				०

अन्तरा :

म	पप	निनि	पप	नि-	निसं	-	संसं	रे	मंमं	रेंरें	संसं	रें-	रेंनि	-	निसं
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा
०				३				x				२			

रे	सस	नि	सं	नि	पप	म	प	संरें	संनि	पनि	पम	पम	रेम	रेस	निस
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
०				३				x				२			

रेम	पनि	सं-
दिर	दिर	दा
०		

सूहा कान्हड़ा – रज़ाखानी गत, तीन ताल

स्थायी :

नि	प	ग	-ग	म	प	-	सं	पप
दा	रा	दा	ऽर	दा	दा	ऽ	दा	दिर
	३				X			

नि	प	गग	मम	रे-	रेस	-स	रेरे	नि	सस	ग	म	प	निनि	प	नि
दा	रा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
२				०				३				X			

म	पप	गग	मम	प-	पम	-म
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर
२				०		

अन्तरा :

म	प	नि	-नि	प	सं	-	-	सं	नि	सं	रेंरें	सस
दा	रा	दा	ऽर	दा	दा	ऽ	ऽ	रा	दा	रा	दिर	दिर
	३				X				२			

प	नि	प	गं	मं	रें	-रें	सं	सं	रेंरें	नि	सं	नि	प	गग	मम
दा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर
				३				X				२			

प-	पम	-म	
दाऽ	रदा	ऽर	
			३

दरबारी कान्हड़ा - रज़ाखानी गत, तीन ताल

स्थायी :

-	रेरे	सस	रेरे	नि-	निस	-स	रे	ग	-	ग	म	रे	रेरे	स	स
ऽ	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दा	ग
०				३				x				२			

नि	सस	रेरे	सस	ध-	धनि	-नि	स	प-	पग	-ग	म	रे	सस	नि	स
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			

अन्तरा :

म	पप	पप	ध	-ध	ध	निनि	निनि	सं-	संसं	-स	सं	ध	निनि	रें	सं
दा	दिर	दिर	दा	-र	दा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा
०				३				x				२			

नि	संसं	रेंरें	संसं	ध-	धनि	-नि	प	म	पप	गग	मम	रे-	रेनि	-नि	स
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दाऽ	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
०				३				x				२			

हंसध्वनि - झप ताल, मध्य लय

स्थायी :

	ग रेरे	रेरे ग	-प
	दा दिर	दिर दा	ऽर
	३		

रे	-	नि	पप	सनि	रे	स	रे	गग	प
दा	ऽ	दा	दिर	दिर	दा	ग	दा	दिर	दा
x		२			०		३		
नि	संसं	नि	पप	गप	रे	म			
दा	दिर	दा	दिर	दारा	दा	ग			
x		२			०		३		

अन्तरा :

	ग-	पनि	-प
	दाऽ	रदा	ऽर
	३		

सं	-	रें	गंगं	रें	नि	प	स	रेंरें	सं
दा	ऽ	दा	दिर	दा	दा	रा	दा	दिर	दा
x		२			०		३		
नि	पप	ग	गग	प	रे	स			
दा	दिर	दा	दिर	दा	दा	रा			
x		२			०		३		

नटभैरव - रज़ाखानी गत, तीन ताल

स्थायी :

ध	-ध	ध	प	-प	ध	म	प	ग	मम	पप	गग	म-	मरे	-रे	स
दा	-र	दा	दा	-र	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा
x				२				०				३			

नि़	धध	नि़	स	रे	गग	म	प	ग	मम	धध	निनि	ध-	धप	-प	म
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा
x				२				०				३			

अन्तरा :

म	पप	पप	ध	-ध	धप	पप	धध
दा	दिर	दिर	दा	-र	दा	दिर	दिर
०				३			

सं-	संसं	-सं	सं	नि	रेंरें	सं	सं	ध	निनि	सं	रें	गं	मंमं	रें	सं
दा-	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			

रें-	रेंसं	-सं	नि	ध	प	गग	मम	रे-	रेनि़	-नि़	स	ऽ	रे	ग	म
दा-	रदा	-र	दा	दा	रा	दिर	दिर	दा-	रदा	-र	दा	ऽ	दा	दा	रा
x				२				०				३			

बिहाग - तीन ताल, द्रुत लय[1]

स्थायी :

–	रेसनि	–ऩि	स	ऩि	–	–	पगग	–ग	म	ग	–	–	गंमंनि	–नि	सं
–	दा	–र	दा	दा	–	–	दा	–र	दा	दा	–	–	दा	–र	दा
x				२				०				३			

नि	–	–	ध	प	धध	मं	प	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	स
दा	–	–	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा–	रदा	–र	दा
x				२				०				३			

अन्तरा :

पप	ग	म,	ग	रे	स	ग	म	प	नि	–	स	–	गग	रें	सं
दिर	दा	र,	दा	रा	दा	दा	रा	दा	र	–	दा	–	दिर	दा	रा
x				२				०				३			

प	निनि	सं	गं	रें	सं	नि	ध	प	मंमं	ग	म	ग	रे	स	स
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	–
x				२				०				३			

[1] तन्त्रीनाद - डॉ० लालमणि मिश्र, पृष्ठ संख्या-319

भैरव - तीन ताल, मध्य लय[1]

स्थायी :

-	धध	प	ध	-	पप	म	प	-	मम	गग	मम	रे	रेस	-स	स
-	दिर	दा	रा	-	दिर	दा	रा	-	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-रा	दा
x				२				०				३			

ध	निनि	सस	गग	मम	धध	निनि	संसं	ध	धप	-प	म	मग	-ग	रे	स
दा	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र	दा	रदा	-र	दा	रा
x				२				०				३			

अन्तरा :

-	मम	ग	म	-	धध	प	ध	-	संस	निनि	सस	रें	रेंस	-सं	स
-	दिर	दा	रा	-	दिर	दा	रा	-	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र	दा
x				२				०				३			

ध	-गंगं	-गं	रें	रेंसं	-सं	नि	सं	ध	-पप	-प	म	मग	-ग	रे	स
दा	-द्रा	-र	दा	रदा	-र	दा	रा	दा	-द्रा	-र	दा	रदा	-र	दा	रा
x				२				०				३			

यह गत 'विषम' रूपी 'सम' की ज्वलन्त उदाहरण है।

[1] तन्त्रीनाद : डॉ० लालमणि मिश्र, पृष्ठ संख्या-319

देश - तीन ताल, मध्य लय[1]

स्थायी :

											म	ग	-नि	-नि	म
											दा	ग	-दा	-र	दा
												३			
^ग^रे	-	-	स	रे	मम	पप	धध	म	मग	-रे					
दा	-	-	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र					
x				२				०				३			

मांझा :

											म	ग	-^रे^नि	-नि़	स
											दा	दा	-दा	-र	दा
												३			
प़	नि़नि़	स	रे	-	सस	नि़	स	रे	मम	पप	धध	म	मग	-ग	रे
दा	दिर	दा	रा	-	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र	दा
x				२				०				३			
म	पप	नि	स	-सं	स	प	ध	म	ग	रे					
दा	दिर	दा	रा	-र	दा	दा	रा	दा	रा	रा					
x				२				०							

अन्तरा :

											म	प	-नि	-नि	नि
											दा	रा	-दा	-र	दा
												३			
सं	-	-	प	नि	संसं	रेंरें	मंमं	गं	गंरें	-रें	गं	नि	निसं	-सं	प
दा	-	-	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र	दा	दा	रदा	-र	दा
x				२				०				३			
ध	-म	-म	प	स	-प	-प	ध	म	ग	रे					
दा	-दा	-र	दा	दा	-दा	-र	दा	दा	रा	दा					
x				२				०							

मध्य लय, तन्त्र अंग की गत, तीन आवर्तन में

---

[1] तन्त्रीनाद : डॉ० लालमणि मिश्र, पृष्ठ संख्या-408

अहीर भैरव - रज़ाखानी गत, तीन ताल

स्थायी .

								सरे	गम	गस	रेग	मप	सरे	गम	पध
								०				३			
नि	ऽ	ध	प	म	गग	रे	नि	सरे	गम	गस	रेग	मप	सरे	गम	पध
दा	-	दा	रा	दा	दिर	दा	रा								
x				२				०				३			
नि	ऽ	ध	ऽ	प	मम	प	ध	नि	स	ऽ	ध	ऽ	नि	सं	रें
दा	-	रा	-	दा	दिर	दा	रा	दा	रा	ऽ	दा	-	दा	रा	दा
x				२				०				३			
स-	संनि	-नि	ध	प	मम	ग	रे								
दा-	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा								
x				२											

अन्तरा :

								ध	मम	प	ध	नि	निनि	सं	सं
								दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
								०				३			
ध	निनि	संसं	रेंरें	गं-गं	रे	-रे	सं	सं	रेंरें	गंगं	रेंरें	सं-सं	नि	-नि	ध
दा	दिर	दिर	दिर	दा-र	दा	-र	दा	दा	दिर	दिर	दिर	दा-र	दा	-र	दा
x				२				०				३			
प	मम	गग	मम	ग-ग	रे	-रे	नि								
दा	दिर	दिर	दिर	दा-र	दा	-र	दा								
x				२											

इस प्रकार की बन्दिश में तान से मुखड़े का प्रारम्भ किया गया है।

राग बागेश्री – मसीतखानी गत, तीनताल[1]

स्थायी :

ससं	नि	ध-निनि	धम	ध-निनि
दिर	दा	दा-दिर	दिर	दा-दिर
	३			

स	स	स	धनि	ध	मम	प	ध	ग	रे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
x				२				०		

मांझा :

रेरे	स	निनि	ध	नि
दिर	दा	दिर	दा	रा
	३			

स	म	म	धध	म	पप	ध	म	ग	रे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
x				२				०		

अन्तरा :

मम	ग	मम	ध	नि
दिर	दा	दिर	दा	रा
	३			

सं	सं	सं	संसं	ध	निनि	सं	मं	ग	रें	सं	गग	रें	संसं	नि	सं
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			

ध	नि	ध	निध	म	मम	प	ध	ग	रे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
x				२				०		

[1] तन्त्रीनाद – डॉ० लालमणि मिश्र, पृष्ठ-५१६

नायकी कान्हड़ा - रज़ाखानी गत, तीन ताल

स्थायी

				ग	म	निनि	पप	ग-	मरे	-स	रेंरें	नि	सस	रे	प
				दा	रा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दिर	दा	दिर	दा	रा
				२				०				३			
प म	ऽ	प	ऽ	ग	म	निनि	पप	स	निनि	रेंरे	संसं	नि-	निप	-	मप
दा	ऽ	रा	ऽ	दा	रा	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽ	रदा
x				२				०				३			
ग	मम	रे	स												
दा	दिर	दा	रा												
x															

अन्तरा

				म	पप	निनि	पप	नि-	निस	-स	सं	नि	संस	रेंरें	निनि
				दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दिर	दिर
				०				३				x			
सं-	सं प नि	-नि	प	गंगं	ममं	रें-	रेंस	-सं	रे	नि	सं	प	निनि	म	प
दाऽ	रदा	ऽर	दा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
२				०				३				x			

यह बन्दिश मेरे गुरूजी डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी की है।

सूहा कान्हड़ा - मसीतखानी गत, तीन ताल

स्थायी

निनि	प	निनि	म-पप	-ग-म
दिर	दा	दिर	दाऽदिर	ऽदाऽर
	३			

प	प	प	संसं	नि	पप	म	प	गम	रे	स
दा	ऽ	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दिर	दा	रा
x				२				०		

रेरे	नि	सस	ग	म
दिर	दा	दिर	दा	रा
	३			

प	म	प	निनि	प	मम	प	गम	रे	रे	स
दा	दिर	दा	दिर	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा	रा
x				२				०		

अन्तरा :

पप	ग	मम	प-	नि प-
दिर	दा	दिर	दाऽ	रदाऽ
	३			

सं	सं	सं	निनि	स	रेंरें	नि	सं	प	नि	प
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा
x				२				०		

गमं	रे	संसं	नि	स
दिर	दा	दिर	दा	रा
	३			

प	नि	प	मम	प	निनि	म	प	गम	रे	स
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दिर	दा	रा
x				२				०		

उपर्युक्त गत गुरूजी डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी की है।

राग भैरव - तीनताल[1]

स्थायी :

निनि					नि	नि		
धध |	प	गस	रे	गम |	ध	ध	प	मप
दिर |	दा	दिर	दा	दिर |	दा	दा	ग	दिर
	३				x			

				ग	ग	
म	गम	रे	गमप |	म	रे	स
दा	दिर	दा	रा |	दा	दा	रा
२				०		

मांझा :

रेरे |	स	निस	ध	नि
दिर |	दा	दिर	दा	रा
	३			

स	स	स	मम |	रे	गग	म	प |	गम	रे[ग]	स
दा	दा	रा	दिर |	दा	दिर	दा	रा |	दिर	दा	रा
x				२				०		

अन्तरा :

गम |	ग	मम	ध	नि
दिर |	दा	दिर	दा	रा
	३			

सं	सं	सं	संसं |	नि	संसं	रें	सं |	निसं	[नि]ध	प	गंमं |	रें	संसं	नि	सं
दा	दा	रा	दिर |	दा	दिर	दा	रा |	दिर	दा	रा	दिर |	दा	दिर	दा	रा
x				२				०							

रें	रें	सं	संसं |	नि	संसं	ध[नि]	प |	गग	रे	स
दा	दा	रा	दिर |	दा	दिर	दा	रा |	दिर	दा	रा
x				२				०		

---

[1] तन्त्रीनाद - डॉ० लालमणि मिश्र, पृष्ठ-३२१

मियां की सारंग - तीन ताल[1]

स्थायी :

					सस	निनि	रेरे	स-	सनि	-नि	ध	नि	सस	स	रे
					दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा
								०				३			
म	-	रे	-	-	सस	निनि	रेरे	स-	सनि	-नि	ध	नि	सस	स	रे
दा	ऽ	रा	ऽ	ऽ	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
म	-	रे	म	-	प	नि	प	नि-	निप	-प	मम	प-	पम	-म	रेरे
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दिर
x				२				०				३			
म-	मरे	-रे	सं-	≤											
दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	ऽ											
x				२											

अन्तरा :

								म	पप	प	नि	ध	नि	-	नि
								दा	दिर	दा	दा	रा	दा	ऽ	रदा
								०				३			
सं	-	सं	सं	पनि	सरें	संनि	सं-	रे	मंमं	रें	सं	-	रेंरें	नि	सं
दा	ऽ	दा	रा	दारा	दारा	दारा	दाऽ	दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा
x				२				०				३			
नि	पप	म	रे	स	सस	निनि	रेरे								
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर								
x				२				०							

[1] इस गत में गायकी अंग का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

राग नट भैरव – मध्यलय, रूपक ताल[1]

स्थायी :

										नि़स	रेग	–म	–प
										दिर	दिर	–दा	–रा
										२		३	
ध॒	ध॒	प	म	(ग)रे	–रे	गम	रे	रे	स	नि़	ध॒ध॒	नि़	स
दा	दा	रा	दा	रा	–दा	दा	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x			२		३		x			२		३	
रे	रे	स	रे	गग	म	प	म	ग	रे	नि़स	रेग	–म	–प
दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दिर	–दा	–रा
x			२		३		x			२		३	

अन्तरा :

										ग	मम	ध॒	नि
										दा	दिर	दा	रा
										२		३	
सं	सं	≤	नि	संसं	रें	गं	रें	रें	सं	गं	मंमं	रें	सं
दा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
x			२		३		x			२		३	
नि	संसं	नि	ध॒	प	मम	ग	म	(ग)रे	स				
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	रा				
x			२		३		x			२			

रूपक ताल में निबद्ध मध्य लय में राग नट भैरव की गत में गत का प्रारम्भ चौथी मात्रा से है। प्रस्तुत गत में चार आवर्तन की स्थायी तथा चार आवर्तन का अन्तरा है।

---

[1] प्रस्तुत बन्दिश गुरूजी डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी से प्राप्त हुई

राग गुणकली – मध्यलय, एकताल[1]

स्थायी :

ध	-ध	ध	प	-म	प	म	मम	रे	सस	ध	स
दा	ऽर	दा	दा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा
x		०		२		०		३		४	
ध	सस	सस	रे	-रे	म	पप	धध	म	पप	ध	रें
दा	दिर	दिर	दा	ऽर	दा	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
x		०		२		०		३		४	
सं	रेंरें	संसं	ध	संसं	धध	प	धध	पप	म	रे	स
दा	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दा	दा	रा
x		०		२		०		३		४	

अन्तरा :

म	पप	पप	ध	-ध	प	धध	धध	सं	संसं	रें	सं
दा	दिर	दिर	दा	ऽर	दा	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
x		०		२		०		३		४	
ध	संसं	संसं	रें	-रें	सं	रें	मंमं	रें	संसं	ध	प
दा	दिर	दिर	दा	ऽर	दा	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा
x		०		२		०		३		४	
सं	रेंरें	संसं	धध	प	धध	पप	मम	रे	मग	रे	स
दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
x		०		२		०		३		४	

एकताल में निबद्ध राग गुणकली की इस बन्दिश में तीन आवर्तन की स्थायी तथा तीन आवर्तन का अन्तरा है। स्थायी व अन्तरे का प्रारम्भ सम से है। यहतन्त्र अंग की बन्दिश है तथा इसमें बोलों का प्रयोग अधिक है।

---

[1] प्रस्तुत गत गुरूजी डॉ० साहित्य कुमार नाहर जी की है

नायकी कान्हड़ा – तीनताल[1]

स्थायी :

											रेरे	नि	सस	रे	प
											दिर	दा	दिर	दा	ग
												३			

प	–	–	ग	–म	म	निनि	पप	ग–	मरे	–स	रेरे	नि	सस	रे	प
दा	ऽ	ऽ	दा	ऽर	दा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दिर	दा	दिर	दा	र
x				२				०				३			

प	–	–	ग	–ग	म	नि	प	नि	सस	रेरे	संसं	नि–	निप	–प	प–
दा	ऽ	ऽ	दा	ऽर	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
x				२				०							

गग	मम	रे–	रेस	–स	स	नि	प	नि	–	स
दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	रा	दा	ऽ	रदा
x				२				०		

अन्तरा :

												म	पप	निनि	पप
												दा	दिर	दिर	दिर
												३			

नि–	निसं	–सं	सं	नि	संसं	रेंरें	निनि	सं–	संनि	–नि	प	म	पप	पप	स
दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा	दा	दिर	दिर	दा
x				२				०				३			

–सं	सं	नि	प	म	पप	गग	मम	रे–	रेस	–स
ऽर	दा	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर
x				२				०		

[1] पं० एस०आर० मावलंकरजी की बन्दिश (ग्वालियर घराना) : कु० निशा पाठक से प्राप्त

राग काफी – तीनताल[1]

स्थायी :

				रेरे	गग	मम	ग	-गम	-स	रे	ग	म	-म	प
				दिर	दिर	दिर	दा	-रदा	-र	दा	ग	दा	-र	दा
							०				३			

नि	ध	प	-	-
दा	रा	दा	-	-
x				२

मांझा :

				संस	निनि	सस	नि	-निध	-ध	म	प	धध	मम	पप
				दिर	दिर	दिर	दा	-रदा	-र	दा	दा	दिर	दिर	दिर
							०				३			
ग	गरे	-रे	स	रे	निनि	ध	नि	प	धध	म	प	ग	मम	धध	पप
दा	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर
x				२				०				३			

ग	गरे	-रे	ग	स
दा	रदा	-र	दा	रा
x				२

अन्तरा :

				मम	गग	मम	प	मम	पप	नि	-नि	नि	सं	-	
				दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दिर	दा	-र	दा	रा	-	
							०				३				
-	गंगं	रेंरें	संसं	रें	रेंनि	-नि	सं	ध	संस	नि	प	निनि	ध	म	धध
-	दिर	दिर	दिर	दा	रदा	-र	दा	दा	दिर	दा	दा	दिर	दा	दा	दिर
x				२				०				३			

प	म	ग	म	ग
दा	दा	रा	दा	दा
x				२

---

[1] तन्त्रीनाद : लालमणि मिश्र, पृष्ठ-३५२

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "तन्त्रवाद्यों के घरानों के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक कलाकार में भारतीय शास्त्रीय सगीत के अन्तर्गत तन्त्रवाद्यों की उत्पत्ति, महत्ता एव स्थान को उल्लिखित करते हुए, सगीत में घरानों के अभ्युदय के सन्दर्भ में तन्त्रवाद्यों का पारस्परिक सामन्जस्य एव तत्सम्बन्धी आधुनिक कलाकारों पर उनके प्रभाव के बारे में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अभिप्राय यह है कि वैदिक काल से प्रचलित हमारे भारतीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का अनन्य महत्वपूर्ण स्थान रहा है। काल के प्रायः प्रत्येक चरण में तन्त्रवाद्य हमारे भारतीय संगीत में किसी न किसी रूप में प्रचलित रहे है। मध्यकाल के सागीतिक विकास काल में सम्प्रदाय और परम्पराओं के बाद घरानों का अभ्युदय हुआ। गायन विद्या के साथ-साथ वाद्यों के सन्दर्भ में भी घरानों की स्पष्ट पहचान की जाने लगी किन्तु समय परिवर्तनशील है, और इस परिवर्तन का प्रभाव संगीत की शैली, घराने तथा प्रस्तुत किए जाने वाले सागीतिक सामग्री पर भी पडा। आधुनिक काल आते-आते घरानों के सन्दर्भ में संगीत में अनेक विशिष्ट गतें हमें प्राप्त हुईं, जिसका प्रभाव तन्त्रवाद्यों की बनावट, वादन-शैली और वादन सामग्री पर भी पडा जिसके सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के उपरान्त कई बातें उभर कर सामने आती हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में, अध्ययन के उपरान्त एक बात तो स्पष्ट रूप से सामने आयी है कि समय के अनुसार सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रभाव संगीत के साथ-साथ सांगीतिक वाद्यों पर भी पडा है और जब वाद्यों की शैलीगत प्रस्तुतियों पर ध्यान दिया जाता है तो यह और भी स्पष्ट होकर सामने आया है। उपर्युक्त परिवर्तन के सन्दर्भ में जो शोधपरक अध्ययन किया गया है और अध्ययन के पश्चात् जो महत्वपूर्ण तथ्य सामने उभर कर आए हैं वह इस प्रकार है :-

प्रथम अध्याय में भारतीय सगीत की उत्पत्ति से जुडे हुए विचारों की व्याख्या की गई है। इस अध्याय में सगीत का मनुष्य की धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन का अभिन्न अग के रूप में महत्ता की व्याख्या की गई है। हमारे देश में सगीत को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आन्तरिक शक्ति के रूप में माना गया है। ललित-कलाओं में सगीत का अप्रतिम स्थान है। सभी कलाओं का ध्येय आनन्द की अनुभूति है। संगीत एक ऐसी कला है जिसमें अपेक्षाकृत कम बाह्य उपादानों की आवश्यकता होती है। अत. यह अत्यन्त सूक्ष्म कला मानी जाती है और यह मानव मन की अन्तः अनुभूतियों के प्रकटीकरण में सर्वथा सक्षम है। हमारा वैदिक संगीत एक हजार वर्ष ईसा पूर्व पुराना है। उस समय सगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते हुए इसकी साधना की जाती थी। फिर समय-समय पर हमारे देश में विदेशियों का आक्रमण होता रहा जिससे कुछ हमारी सभ्यता उनसे प्रभावित हुई उसी प्रकार वे भी हमारी सभ्यता तथा संस्कृति से प्रभावित हुए। वैदिक काल से ही हमारा भारतीय सगीत काफी उन्नति कर चुका था। विभिन्न प्रकार के वाद्यों का भी आविष्कार हो चुका था। इसके बाद प्राचीन काल में विभिन्न वाद्यों का आविष्कार हुआ। संगीत के लौकिक तथा शास्त्रीय पक्षों का विकास इस काल में हुआ। मध्य काल में संगीत के क्षेत्र में बहुत से परिवर्तन हुए। अनेक राग-रागिनियों का जन्म हुआ। विभिन्न गायन शैली तथा वाद्यों का जन्म हुआ। आधुनिक काल में संगीत के विषय में लोगों में एक जागृति आयी। इस समय संगीत सर्वसाधारण के पास सुगम हो गया। यही इस युग की सबसे बडी उपलब्धि रही।

द्वितीय अध्याय में वाद्यों के क्रमिक विकास तथा वर्गीकरण पर विश्लेषण किया गया है। मुख्य रूप से तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन - इन चार भागों में समस्त वाद्यों को वर्गीकृत किया गया है। इसके अलावा नखज, लोहज, वायुज, चर्मज तथा शरीरज - यह पाँच वर्गीकंरण भी महत्वपूर्ण हैं। वाद्यों के इतिहास के २००० वर्ष के अवधि में दो परिवर्तन विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं। एक है वितत् शब्द का प्रयोग जो कि 'अवनद्ध' के स्थान पर हुआ। दूसरा है

'तातानद्ध' नाम का नया वर्गीकरण जो कि घन तथा तन्त्रवाद्य का मिला-जुला रूप है। वाद्यों की उत्पत्ति कैसे हुई तथा कौन सा वाद्य पहले बना, इस विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है परन्तु यह तय है कि मानव ने अपने रोजमर्या के जीवनमें प्रयुक्त होने वाले उपादानों से ही वाद्यों का निर्माण किया होगा। इस अध्याय में कुछ प्रचलित तन्त्रवाद्य जैसे सरोद, रबाब, सुरबहार आदि वाद्यों की बनावट इसकी उत्पत्ति स्थल, प्रवर्तक, इसके घराने तथा वादन शैलियों का अध्ययन किया है जैसे सरोद में तीन घरानों या व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान है। सेनिया घराने के उच्चकोटि के ध्रुपदगायक तथा बीनकार उस्ताद वजीर खॉ से अलाउद्दीन खॉ तथा हाफिज अली खॉ ने शिक्षा प्राप्त की, परन्तु दोनों के सरोद की बनावट तथा शैलियों में बहुत अन्तर है।

सरोद वादकों में पं० बुद्धदेव दासगुप्ता की एक अलग पहचान है। इनकी सरोद वादन शैली अन्य लोगों से थोडा भिन्न है।

सरोद की वादन-शैली दो प्रकार की मानी गई है .-

(१) रबाब शैली (२) सुरश्रृंगार शैली

रबाब १६वीं शती से १८वीं शती तक लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर था परन्तु १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में सरोद और सितार के प्रचलन के बाद रबाब की लोकप्रियता में कमी आने लगी। कुछ विद्वानों के अनुसार रबाब बाहर से इस देश में आया परन्तु इसे भारतीय संगीत के अनुकूल रूप प्रदान करने में सेनियों का योगदान रहा।

१९वीं शती के प्रारम्भ में सुरबहार का आविष्कार हुआ। कहा जाता है कि सेनिया घराने में बीन और रबाब की शिक्षा घर के बाहर किसी को नहीं दी जाती थी, परन्तु वे वही शिक्षा सुरबहार पर दिया करते थे। इस वाद्य में गूंज और आस देर तक रहती है जिससे एक सप्तक तक मीड़ लिया जा सकता है। इसमें सितार बजाने से पूर्व आलाप किया जाता था तत्पश्चात् गत-तोड़े सितार पर बजाए जाते थे। इसके बाद इस अध्याय में सितार वाद्य की उत्पत्ति तथा

आविष्कार के विषय में विभिन्न उद्धृतियाँ दी गयी है जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि सितार का विकासस्थल भारत है। यदि यह अफगानिस्तान से भारत आया भी है तो इसके आज के प्रचलित रूप में लाने का श्रेय मुख्य रूप से खुसरो खाँ को जाता है। सितार से मिलते-जुलते वाद्य कई देशों में तथा भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्राप्त होते है परन्तु इसकी वादन शैली तथा वादन सामग्री का विकास भारत में ही हुआ है।

तृतीय अध्याय में घराना के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। घराना जो कि भारतीय सगीत की प्रमुख विशेषता है। ससार के अन्य किसी भी सगीत में घराने नहीं है। घराना का अर्थ किसी एक गुरू से शिक्षा प्राप्त करना तथा गुरू की शैली को आत्मसात करना है। घराना बनने में कम से कम तीन पीढियो का होना आवश्यक है। एक घराना दूसरे घराने से भिन्न निम्न बातों पर होता है, जैसे -

०१. बन्दिश
०२. सुर लगाने का तरीका
०३. तान और तालों की विविधता
०४. लयकारी
०५. रागों की पसंदगी इत्यादि।

प्रो० रानाडे जी ने घरानों का विभाजन दो प्रकार से किया है -

०१. तीव्रकरणवादी घराने जिसमें रागों को विस्तार करते समय एक-एक स्वर पर दीर्घकाल तक ठहरकर आगे बढ़ा जाता है।

०२. विस्तारवादी - इसमें सीढ़ी की भॉति एक-एक स्वर ऊपर चढा जाता है।

घरानों का उद्भव मध्य काल से माना जाता है। उससे पहले घरानों का अस्तित्व सम्प्रदायों के रूप में था जैसे शिवमत, भरत्मत इत्यादि।

मुगल साम्राज्य के अन्त तक घरानों का विकास काल आरम्भ होता है। इनमें से कुछ घरानों ने ध्रुपद के चार वाणियों में से तो कुछ एक पर विशिष्टता प्राप्त करने की चेष्टा की जिससे कहा जाने लगा कि वाणियों ने घरानाओं को विकसित किया। घराना पद्धति में समय-समय पर कुछ दोष भी आए। जैसे गुरू की सकीर्ण मानसिकता का दुष्परिणाम शिष्य को झेलना पडता था। जैसे शिष्य से काम करा लेना परन्तु शिक्षा न देना, गृढ बातों को छिपाकर रखना इत्यादि। फिर भी घरानों के विषय में हम कह सकते है कि भारतीय सगीत अनेक उतार-चढाव के बीच भी अपनी गरिमा के साथ आज भी बरकरार है जिसका श्रेय घरानों को जाता है। धीरे-धीरे घरानों का विस्तार हुआ। इस प्रकार उत्तरोत्तर घराना शैली का विकास होता रहा।

चतुर्थ अध्याय में सितार के घराने तथा उनके कलाकारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गयी है। वैसे तो सितार वादन घरानेदारी के क्रम में नहीं आता। हमेशा से इसमें व्यक्तिगत प्रतिभा की ही प्रधानता रही है। लोगों की रूचि के अनुसार इसकी शैलियों में परिवर्तन आते गये। सही दृष्टि से सितार के घराने अभी बने ही नहीं है। आज के सितार वादकों के पूर्वज या तो गायक थे या फिर वीणा वादक। फिर भी यदि स्थूल रूप से विचार करें तो हम पाते है कि सेनिया घराना ही सितार का मूल घराना है। सेनिया घराने के कलाकारों ने ही सितार की शैली को बनाया तथा प्रचार किया। सितार की प्रारम्भिक वादन शैली आज की वादन शैली से भिन्न थी। प्रारम्भ में तो सितार का वादन स्वतन्त्र रूप से होता ही नहीं था। यह नृत्य तथा गायन की संगीत का वाद्य था तथा ध्रुपदगायन की शैली को ही सितारवादन की शैली भी कहा जाता है। प्रारम्भ में सितार की बदिशे मध्यलय में बजती थीं। इस समय फिरोजखानी तथा अमीरखानी गतों का प्रचलन था। इन्होंने सितार वादन की स्वतन्त्र शैली को विकसित किया। इस समय तक सितार के कोई निश्चित बोल नहीं बने थे। गत बजाने के बाद गत के ही बोलों को लेकर फिकरें बजते थे तथा गत की सीधी आड़ी बजाई जाती थी जिससे गत के बीच मे विभिन्न लयों में

वादन प्रस्तुत किया जाता था। प्राचीन गतों में ध्रुपद के आधार पर गतों में एक सप्तक के उछाल का भी दृष्टान्त मिलता है, जिनको कि लाग-डाट पर आधारित बंदिश कह सकते है। इसके बाद सेनिया घराने के उ० मसीत खॉ ने सितार में दाए हाथ के बोलों को निश्चित किया जो कि ८ मात्रा के होते है। इन्हीं आठ मात्राओं के बोल को दो बार बजाकर १६ मात्रा पूरी की जाती है जैसे -

दिर दा दिर दा रा दा दा रा

इस प्रकार के बोलों से युक्त विलम्बित बाज को मसीतखानी गत कहा गया। यह १२वीं मात्रा से शुरू होती है। प्रारम्भ में इस गत में तान या तोडों का प्रयोग नहीं होता था। गत के ही बोलों से विभिन्न प्रकार की लयकारी की जाती थी। यह गत प्रकार तीन ताल में ही बजाया जाता है। आज भी कलाकार मसीतखानी गत बजाते है। कुछ कलाकारों ने इसमें थोडा फेरबदल कर विलम्बित में अलग गत बनाने की कोशिश की परन्तु वह मसीतखानी गत के मूल ढॉचे से अलग नहीं हो सकी। प्रारम्भ में मसीतखानी गत में तिहाइयॉ नहीं बजती थीं। मसीत खॉ का समय १८वीं शती के उत्तरार्द्ध से १९वीं शती के पूर्वार्द्ध तक था। कहा जाता है कि मसीतखानी गत की तकनीक बीन अंग से प्रभावित थी जैसे मीड माड ठोंक और झारा जैसे बीन की चीजें इस पर बजती थीं। सितार का आकार-प्रकार भी आज के सितार से भिन्न था। २०वीं शती के मध्य तक सितार में जो कलाकार मसीतखानी गत बजाते थे वे केवल विलम्बित गत (मसीतखानी गत) ही बजाते थे और जो कलाकार द्रुतगत (रजाखानी) बजाते थे वे केवल इसी शैली में पारंगत हुआ करते थे और उसी का वादन करते थे। इसी समय जौनपुर के गुलाम रजा खॉं ने द्रुत गत शैली का निर्माण किया। इस समय तक सितार के साथ ढोलक के स्थान पर तबले का भी प्रयोग होने लगा। गुलाम रजा खॉ ने ध्रुपद शैली से भिन्न ठुमरी पर आधारित चंचल एवं द्रुत गत शैली का प्रचलन किया जिसमें "दा र द्रा द्रि" 'आदि कई प्रकार के मिजराब के बोलों का प्रयोग हुआ। इस शैली में मिजराब के बोल निश्चित नहीं थे। इस प्रकार की गत शैली लोगों को अत्यन्त आकर्षक लगी और इसका द्रुत प्रचार हो गया।

धीरे-धीरे ख्याल गायन के प्रभाव से प्रभावित होकर कलाकारों ने सितार में भी दोनो शैलियॉ - विलम्बित (मसीतखानी) एव द्रुत (रजाखानी) गत बजाना प्रारम्भ किया। इन्हीं दो प्रकार के गत शैली को आधार बनाकर सितार के विभिन्न घराने स्थापित हुए - जैसे जयपुर घराना, बिलास खॉ का घराना, किराना घराना, मथुरा घराना, इन्दौर घराना, विष्णुपुर घराना, इटावा घराना तथा मैहर घराना इत्यादि। इन सभी घरानों के कलाकारों ने अपनी वादन शैली को विकसित किया तथा विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए। किसी घराने ने आलाप अंग को उभारा तो किसी ने तान-तोडे अंग का विकास किया। विभिन्न घरानों ने विभिन्न प्रकार की गतों की रचना की। किसी घराने ने गायन शैली को सितार पर अपनाया तो किसी घराने ने तंत्र शैली को रखा। इस प्रकार सेनिया घराने को आधार मानते हुए सितार वादन में कई परम्पराऍ विकसित हुईं।

पचम अध्याय मे विभिन्न कलाकारों से साक्षात्कार कर आधुनिक सितार वादन शैली पर चर्चा की गयी है। इस अध्याय में कलाकारों के घरानों तथा उनकी स्वतन्त्र शैली पर जिज्ञासा व्यक्त करने पर एक बात सामने आयी कि सितार में चूंकि घरानों का आधिपत्य कम है इसलिए प्रत्येक कलाकार को यह स्वतन्त्रता है कि वह अपनी सृजनशीलता से परम्परागत शैली में कुछ जोड सकें। इस तरह सितारवादन में घरानों की अपेक्षा वैयक्तिक शैली की ही प्रधानता सामने आई। किसी को सितारवादन का यदि घराना माना जाए तो वह एकमात्र सेनिया घराना ही है। गायन में जिस प्रकार गले की आवाज सुर लगाने के तरीके को आधार मानकर घराने अलग किए जा सकते हैं, सितार में इनको आधार मानकर सम्भव नहीं है बल्कि गायकी तथा तन्त्र अंग की शैली ही मुख्य रूप से सितार की दो शैलियॉ है जहॉ पं० रविशकर जी तन्त्र अंग का अनुसरण करते हैं तो उ० विलायत खॉ गायन अग का। घरानों में मुख्य रूप से बदिश, बढ़त और बरतावा को ध्यान में रखकर रागों की प्रस्तुति की जाती है। सभी कलाकारों का यह मानना है कि सितार वादन इतने परिवर्तनों से गुजरा है कि कोई भी वादक आज पुरनी परम्परागत चीजें नहीं बजाता। आज लगभग सभी कलाकार

चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन तथा तैयारी पर ज्यादा जोर देते है न कि राग की अन्तर्निहित गहराई को क्योकि आजकल इसे प्रदर्शन कला के हिसाब मे देखा जा रहा है न कि इसे स्वान्तः सुखाय जैसे धारणा से बजाया जा रहा है। आज विलम्बित में लोग गत के शुरू में ही तान बजाने लगते हैं। कलाकारों का कहना है कि चूकि सुनने वालों के पास समय की कमी है इसलिए राग का विस्तार अब पहले जैसी चैनदारी से करना सभव नहीं है। इसी अध्याय में उन कलाकारों की शैलियों के बारे में चर्चा की गयी है जिन्होंने आधुनिक होते हुए भी अपनी परम्परा का निर्वाह करते हुए सितार वादन की शैली में अपना योगदान दिया है और जिनसे प्रभावित होकर आगामी पीढी अपनी वादन शैली को उन्हीं कलाकारों के ढाचे में ढाल रही है। ऐसे कलाकारों में मुख्य रूप से है – प्रो० रविशंकर, उ० विलायत खॉ, उ० हलीम जाफर खॉ, प० बुद्धादित्य मुखर्जी, शाहिद परवेज, शुजात खॉ, निशात खॉ, प० बलराम पाठक, देबू चौधरी, पं० मणिलाल नाग, मुश्ताक अली खॉ इत्यादि।

प० रविशकर जी के वादन के विषय में कह सकते है कि पडित जी की पिछली पीढ़ी के सितारवादकों में जो कलाकार आलाप बजाता था उसका आलाप में नाम होता था। गत बजाने वाले की इज्जत गत में ही होती थी, उसी प्रकार ठुमरी बजाने वाले का नाम ठुमरी में होता था। प० जी ने इन सबका समन्वय कर दिया जिससे कि आलाप, जोड, गत, ख्याल, ठुमरी, धुन, लयकारी तैयारी, सवाल जवाब, दक्षिण भारतीय रागों का प्रयोग कर एक अभिनव शैली श्रोताओं को प्रदान की जो कि उस जमाने की बिल्कुल नयी बात थी।

स्व० पं० निखिल बैनर्जी पं० रविशंकर के गुरूभाई थे परन्तु निखिल जी की वादन शैली उनसे भिन्न थी। कहा जाता है कि निखिल जी की वादन शैली में पं० रविशंकर, अली अकबर और उ० विलायत खाँ के गुणों का समन्वित रूप था। आलाप, बोल, लयकारी, उपज सभी में निखिल जी ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया, आलाप की गहराई, मीडयुक्त तानें, मिजराब के प्रहार की मिठास आदि

प० बैनर्जी की शैली की ऐसी विशेषताए है जो उनको एक अलग मुकाम पर पहुॅचाती है।

उ० विलायत खॉ ने सितार पर गायकी अंग बजाया। इन्होंने सितार का ढांचा बदला, मिजाज, टोन बदला। विलायत खॉ बाए हाथ के काम को बहुत आगे ले गये। गमक बजाने के लिए तबली मोटी कर दी, एक प्रहार में कई स्वर लगाने लगे जो काकु भेद अपनाया जो कि गायकी की चीजें थीं, परन्तु इन्होंने भी पुराने ढंग के वादन को ही ढाचा बनाया।

फिर उ० हलीम जाफर खॉ का नाम आता है। इन्होंने जाफरखानी बाज के नाम से एक शैली बनाई। खॉ साहब की शैली की विशेषता है दोनों हाथों की तैयारी की स्पष्टता और माधुर्य का समन्वयन। जाफरखानी बाज पूर्णतः स्वर उद्दोलन (Harmonics) से भरा होता है। खॉ साहब की शैली की विशेषताए है – जैसे प्रतिध्वनि का काम, छपका अंग, उचट लड़ी, कार्ड तकनीक, गत भरण, गत अंग चालें, गत तोडे इत्यादि।

पं० बलराम पाठक भी ऐसे कलाकार है जिन्होंने इस क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इन्होंने तानों की अपेक्षा विविध बोल तानों का प्रयोग किया। खरज के तार को अधिक मात्रा में प्रयोग, हारमनी का अधिक प्रयोग इत्यादि पाठक जी की विशेषताएं थीं।

पं० मणिलाल नाग जी पुरानी शैली को संजोए हुए हैं। इनके वादन में ध्रुपद अंग का प्रयोग, आलाप में एक स्वर की अपेक्षा स्वर समूह के प्रयोग पद्धति अपनाते हैं तथा मिठास आपके वादन की मुख्य विशेषता है।

उ० मुश्ताक अली खॉ प्रचीन तंत्र अंग से वादन करते है। आपकी विशेषता है जमजमा सूत आदि बहुत सफाई के साथ बजाना। तोडो की विविधता में खॉ साहब सिद्धहस्त थे। आप सेनिया की खास चीज ढड्डावाणी तथा रसलवाणी का भी प्रयोग करते हैं।

उ० मुश्ताक अली खॉ के प्रमुख शिष्य है - पं० देबू चौधरी। आप परम्परानुसार १७ परदे का ही सितार बजाते है जिसमें कोमल 'नि' तथा कोमल 'ग' का परदा नही होता। इनके वादन की प्रमुख विशेषता तत्र अंग को बरकरार रखते हुए सौन्दर्य तथा माधुर्य का अभूतपूर्व मिश्रण है।

प० बुद्धादित्य मुखर्जी ने सितार पर टप्पा अंग से गत बजाकर एक अलग मुकाम कायम किया। आपके वादन में अत्यन्त कठिन तथा लम्बी मीडों का प्राचुर्य है। साथ ही खटका, मुर्की, जमजमा जैसी चीजो को अपनाकर सितार वादन की एक भिन्न प्रथा की शुरूआत की।

इस प्रकार विभिन्न कलाकारों की शैलियों मे कुछ न कुछ अन्तर है। अपनी व्यक्तिगत रूचि प्रतिभा तथा पर्यावरण से प्रभावित होकर हर कलाकार की वादन शैली में भिन्नता देखने को मिलती है। इस प्रकार कलाकार अपनी मूल परम्परागत चीजो को रखते हुए वादन शैली में प्रयोग कर सगीत शैलियो का उत्तरोत्तर विकास कर रहे है जो कि संगीत में एक बहुत बडी उपलब्धि है।

छठवें अध्याय में फिर से एक बार यह देखने को प्रयास किया गया है कि किस प्रकार धीरे-धीरे सितार वादन में परिवर्तन आया और यह अनुगत की सज्ञा से हटकर स्वतंत्र वाद्य या शुष्क वाद्य के रूप में सामने आया और धीरे-धीरे इसी वाद्य ने कालान्तर मे प्राचीन सभी वाद्यों से अधिक लोकप्रियता हासिल कर ली है।

जैसे यदि सितार के स्वरूप को ही लिया जाए तो वह हमेशा से बदलता रहा है। इसके तारों की संख्या परिवर्तित होती रही है जिसके कारण सितार अलग-अलग ढंग से मिलाया जाता रहा है। ऐसा माना जाता है कि सितार नृत्य की संगति का साज था। इसमें अधिक झंकार उत्पन्न करने के लिए जवारी के पास तारों में पतले लोहे के छल्ले लगाए जाते थे। फिर प्रारम्भ में मसीतखानी शैली बीन की तकनीक से बजती थी। इसमें मीड़, ठोक, झाला आदि बजता था तथा पहले की मसीतखानी गतें आज की तुलना में धीमी लय की होती थी। २०वीं शती तक दो या तीन तुम्बे का सितार चला जो कि 'सितार बीन' कहलाता

था। कई प्रकार के नाम के सितार भी प्राप्त होते हैं जैसे – मध्यम सितार, चारघा सितार, तरबदार सितार। सितार में तरबों का प्रचलन काफी बाद में हुआ। १८३० के आस-पास तरबदार सितार प्रचार में आया। ऐसे सितार आकार मे कुछ बडे होते थे।

सन्दर्भ में करामतुल्लाह खॉ साहब का मानना है कि सितार में तरबें लगाने से सितार अपने मूल स्वरूप से काफी हट जाता है।

एलन माइनर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि १८७४ मे तहसील-अल-सितार में रहीम बेग ने ८ तार वाले सितार की चर्चा की है जिसमें चिकारी के तीन तार होते थे जो 'स प स' से मिलते थे। प्रारम्भ मे सितार मे तात के तार लगाए जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है तथा गंगा-जमुनी परदों का प्रचलन था।

सन् १६४०-४५ के करीब सितार का एक विकसित स्वरूप उभर कर सामने आया। डॉ० सुनीरा कासलीवाल के अनुसार वर्तमान समय में सितार के मुख्य दो स्वरूप प्रचलित है – १) पं० रविशंकर मॉडल, २) उ० विलायत खॉ मॉडल। यह दोनों प्रकार अपनी-अपनी शैलियों को बजाने के लिए उपयुक्त है। प० रविशकर के सितार में मुख्य ७ तार है, लरज-खरज के तार है। जो कि अतिमन्द्र पचम तथा अतिमन्द्र के स्वरों में मिलते है। इन दो मन्द्र के तारों की ध्वनि विशेष उ० विलायत खॉ के सितार में नहीं है। उनके सितार में 'ग-प' का संवाद मिलता है। प० जी के सितार का डाड अधिक चौडा है अतः सितार का वजन भी अधिक है। इनके सितार में मुख्य छः तार हैं, इनके सितार की तबली पं० जी की सितार की तुलना में अधिक मोटी होती है तथा पं० जी के सितार में एक अधिक तुम्बा डांड के ऊपरी हिस्से में लगा होता है जिससे मंद्र सप्तक की गूंज अधिक देर तक रहती है। उ० विलायत खाँ के सितार में दो तुम्बों की गुंजाइश नहीं मिलती। इस तरह आकार-प्रकार तथा ध्वनि की दृष्टि से दोनों सितार प्रकारों में काफी भिन्नता है।

इनके अतिरिक्त सितार का एक तीसरा प्रकार भी है, वह है पं० निखिल बैनर्जी की शैली का सितार। यह सितार प० रविशकर तथा उ० विलायत खॉ के सितार प्रकारों के बीच की शैली का है। इस सितार में डाड के ऊपर तारगहन के पास एक अतिरिक्त जवारी बनी होती है। इस प्रकार दो जवारी के सितार को बजाने मे अधिक कठिनाई होती है। प० उमाशकर मिश्र इन दो जवारीयुक्त सितार बजाते थे। वैसे इस प्रकार के सितार का प्रचलन बहुत कम है।

सातवें अध्याय में सितार के शुरूआती दौर से अब तक की स्थिति तक के विकास के बारे में लिखने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में मसीतखानी गतों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है। मसीत खॉ, रहीम सेन, अमृत सेन आदि कलाकारो द्वारा विलम्बित गत में प्रयुक्त बोलों में थोड़ा सा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है तथा रज़ाखानी गतों के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण सहित लिखा गया है। रजाखानी गत के अन्तर्गत भी तीन प्रकार की गतें मिलती है, जैसे -

१) पूर्वी बाज की गतें जो ठुमरी गायन शैली पर आधारित थीं। इनमे अपेक्षाकृत कम बोलों का प्रयोग होता है। इसकी रचना सेनिया घराने के शिष्यों की थी।

२) वह प्रकार, जिसकी रचना सेनिया घराने के वीणा वादकों और उनके शिष्यों ने की थी।

३) वह प्रकार जिसकी रचना सेनी घराने के रबाब वादकों तथा उनके शिष्यों द्वारा हुई।

इन तीनों प्रकार की गतों को रजाखानी बाज ही कहा गया। इन गतों में स्वरबंधान और बोलों के प्रयोग के अतिरिक्त और कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता।

वीणावादकों की गतों का प्रारम्भ 'दिर दिर' बोल से और रबाबवादकों की गतों का प्रारम्भ 'दा-र' बोल से हुआ करती है।

इस अध्याय मे रजाखानी तथा मसीतखानी विधा से जुडे हुए कलाकारो के नामों का उल्लेख है। अन्त में कुछ बन्दिशें दी गई है, हर बन्दिश अपने में कुछ विशिष्टता लिए हुए है।

सातवें अध्याय में हमने यह देखने का प्रयास किया है कि वो कौन से तत्व है जिसके कारण सगीत की शैली मे परिवर्तन आते है। तो इसका सर्वप्रथम कारण तो यह है कि चूंकि कला का सम्बन्ध मानव की अनुभूतियो से है अतः मनुष्य की परिवर्तित अभिरूचियो, भावनाओं के अनुरूप कला भी निरन्तर परिवर्तनशील है। हम पाते है कि आज वादन शैली मे पहले की तुलना में बहुत अन्तर है। कारण यह है कि आज कलाकार को सुनने के लिए अपार श्रोता है जिनकी अभिरूचियों का ध्यान कलाकार को रखना पडता है। अत कलाकार भी युगानुकूल अपना दृष्टिकोण बदलता है। शास्त्रीय संगीत को बोधगम्य बनाने के लिए कभी-कभी सरलीकरण की प्रवृत्ति तथा चमत्कारिकता अपनानी पडती है। इसी कारण आज संक्षेपीकरण भी हो गया है। पहले तो केवल आलाप ही घण्टों बजाने की प्रथा थी परन्तु आज ऐसा नहीं है।

आज कल हर कलाकार अपनी सत्ता को बनाने के लिए रागों का निर्माण कर रहा है। इस प्रक्रिया मे कुछ तो अच्छे सारगर्भित राग बन रहे है परन्तु प्रतियोगिता के इस दौर में कुछ राग केवल कुछ रागों को मिलाकर ही नये नाम देकर श्रोताओं के समक्ष आ रहे हैं। वादन में नयापन लाने के लिए वादक कर्नाटकी रागों को उत्तरभारत में बजाने लगे हैं। इस प्रकार इन प्रयोगों से कुछ तो अच्छी चीजें आ रही हैं, कुछ केवल संख्या में बढोत्तरी कर रही हैं। जो भी हो यह सभी प्रयोग भारतीय संगीत को प्रवाहमान बनाए रखने में सहायक हैं। इस अध्याय के अन्त में कुछ बन्दिशों का संकलन भी किया गया है। हर बन्दिश अपने में कुछ विशिष्टता लिए हुए है।

सितारवादन के प्राचीन शैली में आधुनिक समय के कलाकारो की वादन–शैली और परम्परागत शैली में क्या आधुनिक प्रभाव हुआ है यही इस शोधप्रबन्ध के निष्कर्ष के रूप में सामने आया है।

*** *** ***

ग्रन्थ-सूची

०१ उत्तर भारतीय सगीत का सक्षिप्त इतिहास : प० विष्णु नारायण भातखण्डे, सगीत कार्यालय, हाथरस

०२ कानून-ए-सितार . मु० सफदर हुसैन खॉ, प्रकाशक – नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

०३. खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार : आचार्य वृहस्पति एवं श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (प्र०स० १६७६)

०४ तन्त्रीनाद · डॉ० लालमणि मिश्र, साहित्य रत्नालय, कानपुर.

०५ भारतीय सगीत के तन्त्रीवाद्य · डॉ० प्रकाश महाडिक, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी.

०६. निबन्ध सगीत डॉ० लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस.

०७. नाद-विनोद : पन्नालाल गोस्वामी, नारायणदास जगलीमल, दिल्ली (१८५६).

०८ नाट्यशास्त्र · भरत मुनी कृत, सम्पादक – डॉ० रविशंकर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय.

०६ पखावज और तबला के घराने एव परम्पराऍ – शोध प्रबन्ध : डॉ० आबान ए० मिस्त्री.

१०. भारतीय इतिहास में संगीत : भगवत शरण शर्मा.

११. भारतीय सगीत का इतिहास : उमेश जोशी

१२. भारतीय संगीत – एक वैज्ञानिक विश्लेषण : डॉ० स्वतन्त्र शर्मा, टी०एन० भार्गव एण्ड सन्स.

१३. भारतीय संगीत वाद्य · डॉ० लालमणि मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली.

१४. भारतीय संगीत शास्त्र : तुलसीराम देवांगन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल.

१५. भरत का सगीत सिद्धान्त : डॉ० केसी देव वृहस्पति, संगीत कार्यालय, हाथरस.

१६. भारतीय सगीत कोष विमल कान्त रायचौधरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (१६६८).

१७. मआदनुल मूसीकी . मु० करम इमाम खॉ, हिन्दुस्तानी प्रेस, लखनऊ.

१८. मुसलमान और भारतीय संगीत : आचार्य वृहस्पति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

१६. वृहद्देशी . मतग मुनि, सम्पादक - बालकृष्ण गर्ग, प्रकाशन - सगीत कार्यालय, हाथरस.

२०. सितार में प्रयुक्त होने वाली रचनाओं (गतों) का विश्लेषणात्मक अध्ययन - शोध प्रबन्ध : सुश्री सन्ध्या अरोडा.

२१. स्वर और रागों के विकास में वाद्यो का योगदान : जे० इन्द्राणी रहमान.

२२. सगीत के घरानों की चर्चा : डॉ० सुशील कु० चौबे, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ.

२३ सगीत मजूषा : के०एम० मित्तल, मित्तल पब्लिकेशन्स, दिल्ली.

२४. सगीत विशारद : ‘वसन्त’, सगीत कार्यालय, हाथरस.

२५. सितार मार्ग . श्रीपद बन्द्योपाध्याय, वाणी मन्दिर, दिल्ली.

२६. सगीत चिन्तामणि : आचार्य वृहस्पति, सगीत कार्यालय, हाथरस.

२७. सगीत के जीवन पृष्ठ : सुरेशव्रत राय.

२८. संगीत बोध · शरत्चन्द्र श्रीधर परांजपे, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ भोपाल.

२६. संगीत में तिहाइयॉ : भगवत्शरण शर्मा, के०बी० एण्ड सी०एल अलीगढ.

३०. सगीतज्ञों के सस्मरण : उ० विलायत खॉ.

३१. संगीत रत्नाकर : शारंग देव, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृ सचिवालय, मुम्बई.

३२. संगीत पारिजात : पं० अहोबल, प्रकाशन संगीत कार्यालय, हाथ

३३. हमारा आधुनिक संगीत : डॉ० सुशील कुमार चौबे.

1. Classical Musical Instruments - Dr Suneera Kasliwal, Publised by Rupa & Co
2. Indian Musical Traditions - Vaman Rao H Deshpande, Published by Sangam Books Limited
3. Music Instruments of India - V C Deva, Firma KLM Private Limited
4. Musical Instruments of India - S Krishnaswamy, Publication Division, Ministry of Information & Broadcasting, Govt of India, New Delhi
5. My Music My Life - Pt Ravi Shankar, Vikas Publishing House, Delhi
6. My Guru My Father - Amjad Ali Khan, Anand Press & Publications, Calcutta (1973)
7. Senia Gharana Its Contribution to Indian Classical Music - Sunita Dhar
8. Sitar & Sarod in the 18th and 19th Centuries - Allyn Miner, Motilal Banarasidass Publishers, Delhi
9. Sitar and Its Techniques - Pt Debu Chaudhuri, Published by Avon Book Co , Delhi
10. The Story of Indian Music Its Growth and Synthesis - O Goswami, Asia Publishing House, Bombay (1957)
11. The Music of India - Atia Begum
12. The String Instruments of India - Sharmistha Ghosh, Eastern Book Linkers, Delhi (1988)
13. Ustad Allauddin Khan and His Music - Jotin Bhattacharya, B S Shah Prakashan, Ahmedabad (1979)

पत्रिकाएँ

०१ 'सगीत' वाद्य वादन अक – सगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएँ

०२ अखिल भारतीय गान्धर्व मण्डल, मिरज द्वारा प्रकाशित 'सगीत कला विहार' की मासिक पत्रिकाएँ

०३. सगीत सदन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'सगीतिका' की विभिन्न मासिक पत्रिकाएँ.